

ब्रह्मकर्ता का परिचय

श्री देवसेन नाम के अनेक दिगम्बर जैन आचार्य हो गए हैं। यहाँ उन श्री देवसेन आचार्य का परिचय दिया जाता है, जिन्होंने सं० ६६० में दर्शनसार की रचना की है।

श्री देवसेन आचार्य ने भपनी गुरु परम्परा और गण-गच्छादि का कोई उल्लेख नहीं किया, किन्तु मात्र इतना ही सूचित किया है कि 'धारा नगरी में रहते हुए श्री पाश्वनाथ मंदिर में सं० ६६० में, माघ सुदी दशमी के दिन दर्शनसार की रचना की गई है।'

इन श्री देवसेन आचार्य की दर्शनसार के अतिरिक्त आलापपद्धति, नयचक्र, तत्त्वसार और आराधनासार आदि कृतियाँ मानी जाती हैं। पर अभी यह निर्णय नहीं हो सका है कि ये सब कृतियाँ प्रस्तुत श्री देवसेन के द्वारा ही रची गई हैं या इनमें से किसी अन्य के कर्ता अन्य कोई श्री देवसेन आचार्य हैं। यदि आलापपद्धति इन्हीं श्री देवसेन की रचना है तो इनका समय विक्रम की १० वीं शताब्दी सुनिश्चित है।

इलोकवातिक पृ० २७६ पर एक नयचक्र का उल्लेख है परन्तु वह नयचक्र किस आचार्य का था, यह ज्ञात नहीं होता है। एक नयचक्र मार्च १९४६ में कल्याण पावर प्रिंटिंग प्रेस, शोलापुर से प्रकाशित हुआ है जिसकी रचना संस्कृत भाषा के गद्य-गद्य रूप में है। इसके कर्ता भी श्री देवसेन आचार्य हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि ये कौन से श्री देवसेन आचार्य थे।

कुछ भी हो, आलापपद्धति के कर्ता श्री देवसेन आचार्य नय विषयक शास्त्रों के पारगामी थे और उन्हीं के आधार पर आलाप-पद्धति की रचना हुई है।

प्रस्तावना

इस ग्रन्थ का नाम यद्यपि आलापपद्धति (दोलचाल की रीति) है तथापि इसका अपरताम 'द्रव्यानुयोग प्रवेशिका' है। इसमें द्रव्य, गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रमाण और नय आदि का कथन है। द्रव्यानुयोग की स्वाध्याय से पूर्व आलापपद्धति का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना द्रव्यानुयोग में प्रवेश तथा उसका यथार्थ बोध, नहीं हो सकता है।

मूल नय दो हैं—निश्चयनय और व्यवहारनय, जैसा कि इसी ग्रन्थ की गाथा ४ में कहा है—

'णिष्ठद्वयवद्वारण्या मूलमभेद्या णायाण सव्वाणं ।'

भेद प्रतिभेदों की अपेक्षा न रखकर द्रव्यानुयोग में प्रायः निश्चय व व्यवहार ऐसे दो नयों का उल्लेख पाया जाता है। उपचरित-असद्भूत व्यवहार नय की हृष्टि से एक जीव दूसरे जीव को मारता है, सुखी दुखी करता है फिन्तु अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की हृष्टि से अपने कर्म ही जीव को सुखी-दुखी करते हैं या मारते हैं। समयसार कलश १६८ में कहा भी है—
'सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।'

अथवा इम जगत में जीवों के मरण, जीवन, दुःख, सुख, सबे नदैव नियम से (निश्चय से) अपने कर्मोदय से होता है। यह कथन यद्यपि अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की हृष्टि से है तथापि उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की अपेक्षा से इसको निश्चय कहा गया है।

असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से सद्भूत व्यवहारनय को निश्चय कहा गया है—

वचहारस्स दु आदा पुगलकम्मं करेऽगेयविहं ।

तं चेव पुणो वेयइ पुगलकम्मं अणेयविहं ॥८४॥

णिष्ठद्वयण्यस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।

वेदयदि पुणो तं चेव जाणं अत्ता दु अस्ताणं ॥८५॥ [समय०]

आर्थ—व्यवहारनय का यह मत है कि आत्मा अनेक प्रकार के पुदगल-कर्मों को करता है और भोगता है। निश्चयनय का यह मत है कि आत्मा कर्मोदय व अनुदय सं हीमे वाले, अपने भावों को ही करता है तथा भोगता है।

निश्चयनय का विषय ग्रभेद है, अतः निश्चयनय की हृष्टि में कर्ता-कर्म का भेद संभव नहीं है। सद्भूत-व्यवहारनय का विषय भेद है। अतः कर्ता-कर्म का भेद सद्भूत-व्यवहारनय की हृष्टि से सम्भव है। आत्मा पुदगल-कर्मों को करता व भोगता है—यह असद्भूत-व्यवहारनय का कथन है, क्योंकि पुदगल-कर्म और आत्मा इन दो द्रव्यों का सम्बन्ध वतलाया गया है। अतः यहाँ पर असद्भूत-व्यवहारनय की अपेक्षा से सद्भूत-व्यवहारनय के कथन को निश्चयनय का कथन कहा गया है।

शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चयनय को व्यवहार कहा गया है—

‘द्रव्यकर्मोण्यचेतनानि भावकर्माणि च चेतनानि तथापि शुद्ध-निश्चयापेक्षया अचेतनान्येव। यतः कारणादशुद्धनिश्चयोपि शुद्ध-निश्चयापेक्षया व्यवहार एव।’ [समयसार गाथा ११५ टीका]

यद्यपि सामान्य से निश्चय व व्यवहार शब्दों का प्रयोग हुआ है तथापि निश्चय शब्द से कहाँ पर किस नय से प्रयोजन है और व्यवहार शब्द से किस नय से प्रयोजन है, इसका ज्ञान हुए बिना द्रव्यानुयोग का आर्थ भाव नहीं भास सकता है। अतः द्रव्यानुयोग में प्रवेश करने से पूर्व इस ग्रन्थ का ग्राह्ययन अत्यन्त अवश्यक है।

इस आर्थ ग्रन्थ के ज्ञान बिना ग्राधुनिक साहित्य में गुण व पर्याय आदि के विषय में अनेक कथन आर्थ-विरुद्ध हैं। उनमें से कुछ का यहाँ पर दिग्दर्शन कराया जाता है—

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ ४ पर लिखा है—‘जिस शक्ति के कारण से द्रव्य की अवस्था निरत्सर बदलती रहती है उसको द्रव्यत्वगुण कहते हैं।’ आलापद्वति ग्रन्थ में श्री देवसेन आचार्य ने लिखा है—

‘द्रव्यस्थभावो द्रव्यत्वम्, निजनिजप्रदेशसमूहेरखण्डबृत्या स्वभाव-

विभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुविति द्रव्यम् ॥१६॥'

अर्थ— जो अपने-अपने प्रदेश-समूह के द्वारा अखण्डपने से अपनी स्वभाव व विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा, हो चुका है, वह द्रव्य है और उसका जो भाव वह द्रव्यत्वगुण है। अर्थात् वस्तु के सामान्यपने को द्रव्यत्व कहते हैं, क्योंकि वह सामान्य ही विशेषों (पर्यायों) को प्राप्त होता है।

वही पर अगुरुलघुगुण का लक्षण लिखा है—‘जिस शक्ति के कारण से द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता है, एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता है और द्रव्य में रहने वाले अनन्तगुण विस्तरकर अलग-अलग नहीं हो जाते हैं उस शक्ति को अगुरुलघुगुण कहते हैं।’ आलादरयति में अगुरुलघुगुण का स्वरूप इस प्रकार कहा है—‘अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम् सूक्ष्मा अवागोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगम-प्रमाण्यादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः ॥१६॥’ अर्थात्—अगुरुलघुभाव अगुरुलघुत्व है। जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, प्रति समय परिणमन-शील है और आगम प्रयाण से जाना जाता है, वह अगुरुलघुगुण है।

अर्थपर्याय व व्यंजनपर्याय का लक्षण इस प्रकार किया जाता है—

‘प्रदेशत्व गुण के सिवाय बाकी सम्पूर्ण गुणों के विकार को अर्थपर्याय कहते हैं। द्रव्य के प्रदेशत्वगुण के विकार (विशेष कार्य) को व्यंजनपर्याय कहते हैं।’ [लघु जीन सिद्धान्त प्रवेशिका]

किन्तु सिद्धान्त-चक्रवर्तीं श्री वसुनन्दि आचार्य वसुनन्दिश्रावकाचार में लिखते हैं—

सुहुमा अवायविसया स्त्रणस्त्रिगणो अत्यपञ्जया दिष्टा ।

वंजणपञ्जाया पुण थूला गिरगोयरा चिरविवत्था ॥२५॥

अर्थ— अर्थपर्याय सूक्ष्म है, ज्ञान का विषय है, शब्दों से नहीं कही जा सकती और स्त्रण-स्त्रियों में नाश होती रहती है। किन्तु व्यंजन पर्याय स्थूल है, गड़गोचर है और चिरस्थायी है।

इसी प्रकार अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रदेशत्व आदि गुणों के लक्षणों में भी आर्थग्रन्थ-विरुद्ध कथन पाया जाता है ।

यह ग्रन्थ प्रथम गुच्छक में बनारस से, श्री भागिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई से, मधुरा से व मातेपुत्रे श्रादि से प्रकाशित हुआ है । प्रायः सभी प्रकाशित ग्रन्थों में किसी न किसी सूत्र का मूल पाठ बहुत अशुद्ध है । अतः इस ग्रन्थ के मूल-सूत्रों के पाठ अजमेर की प्रति सं० ४३६ व ४४०, दूंदी की प्रति, दिल्ली के पंचायती मन्दिर की प्रति सं० ३१/१०४, बैदवाद्या मन्दिर की प्रति, सेठ के कूचे के मन्दिर की प्रति तथा नया मन्दिर की प्रति सं० आ १४(क), आ १४(ख), आ १४(ग), आ १४(घ), आ १४(ड) से मिलान करके शुद्ध किये गये हैं । इनमें से दूंदी को प्राति में विशेष टिप्पण हैं । अजमेर की प्रति में ५-५ सूत्रों पर टिप्पण हैं । इन टिप्पणों से मूल पाठ के शुद्ध करने में तथा अनुवाद करने में बहुत सहायता मिली है ।

आचार्य श्री शिवसागर जी का संघ जब दूंदी पहुंचा तो उस संघ के मुनि श्री अजितसागर जी ने वहाँ के शास्त्र भण्डार को देखा । उनकी हस्ति में टिप्पण सहित आलापपढ़ति की एक प्रति आई । इस प्रति की प्राप्ति में मुनि श्री अजितसागर जी विशेष निमित्त हैं, अतः भी उनका विशेष रूप से आभारी हूँ ।

श्री सेठ भागचन्द्र जी सोनी के सहयोग से अजमेर से दो प्रतियां तथा मुन्ही श्री सुमेरचन्द्र जी के सहयोग से दिल्ली से आठ प्रतियां प्राप्त हुई हैं । इन प्रतियों से मिलान में ला० अर्हदास जी तथा बा० ऋषभदास जी का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है । इस ग्रन्थ के अर्थ करने में श्री पं० बालचन्द्र जी, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली; श्री पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य, सागर तथा श्री पं० जीवंधर जी, इन्दौर का पूर्ण सहयोग रहा है । ग्रन्थकर्ता का परिचय श्री पं० परमानन्द जी, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली से प्राप्त हुआ है ।

श्री श्रीपाल जी, ला० इन्द्रसेन जी, सेठ बद्रीप्रसाद जी तथा भाई नेमचन्द्र आदि ने द्रव्य देकर प्रकाशन में सहयोग दिया है ।

उपरोक्त सभी महानुभावों की सहायता व सहयोग के प्रति मैं हार्दिक
भाभार व्यक्त करता हूँ ।

इस ग्रन्थ के अनुवाद व टीका का कार्य यद्यपि सन् १९६७ ई० में पूर्ण
हो चुका था किन्तु प्रेस की व्यवस्था न हो पाने के कारण इसका प्रकाशन न
हो सका । गत वर्ष सन् १९६८ ई० में भाद्रपद भास के दशलक्षण पर्व में
मेरठ सदर रहना हुआ । तब श्री रत्नलाल जैन एम. कॉम. (सुपुत्र ला०
महावीरप्रसाद जैन मोटर वाले) ने मुद्रण का भार ले लिया । उनके तथा
प्रेस के सम्बद्ध कर्मचारियों के सहयोग के फलस्वरूप इसका मुद्रण हो गया ।
मैं उक्त श्री रत्नलाल आदि का भी नहुल आशारी हूँ ।

मैं मन्द बुद्धि हूँ, यदि कहीं पर अनुवाद भादि में कोई अशुद्धि रह गई
हो तो विद्वान् उसको शुद्ध करने की और मुझको क्षमा करने की कृपा करें ।

रत्नचन्द जैन, मुख्तार



विषय-सूची

सूचि संख्या	विषय	मूल-पृष्ठ भाषा-पृष्ठ
(ग्रन्थ १) मंगलाचरण पूर्वक विषय की प्रतिक्रिया		
		१ ३६
	मंगल, निमित्त, हेतु, परिणाम, नाम, कर्ता का कथन	३६
१	आलापपद्धति का अर्थ	१ ४०
३	आलापपद्धति का प्रयोजन	१ ४१
५-७	द्रव्यों के नाम तथा द्रव्य का लक्षण लोक, अलोक के विभाग का कारण	२ ४१-४२ ४१
गुरुणाशिकार		
		२-४ ४३-५१
८	लक्षण के नामान्तर	४३
९	सामान्य गुणों के नाम व कथन	२ ४३
११	विशेष गुणों के नाम व कथन	३ ४६
.	शान, दर्शन, सुख व वीर्य के लक्षण तथा शान, दर्शन में अन्तर	४७
१४	चेतन, अचेतन, मूर्त, अमूर्त सामान्य गुण भी हैं प्रौर विशेष भी हैं	४ ५१
पर्याय-शिकार		
		४-७ ५१-७२
१५	अर्थ पर्याय व व्यंजन पर्याय	४ ५१
१७	स्वभाव अर्थपर्याय—अगुरुलघुगुण के विकार का विशेष कथन	५ ५३
१८	जीव की विभावार्थं पर्याय	५ ५८
१९	जीव की विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय	५ ६०
२०	जीव की विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय	६ ६१
२१	जीव की स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय	६ ६१
२२	जीव की स्वभाव-गुण-व्यंजन पर्याय	६ ६२

२३	पुदगल की विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय	६	६३
२४	पुदगल की विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय	६	६३
२५	पुदगल की स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय, परमाणु का कथन	६	६४
२६	पुदगल की स्वभाव-गुण-व्यंजन पर्याय व परमाणु के गुणों का कथन	६	६५
(गाथा १)	पर्याये प्रतिक्षण उत्पन्न होती और विनशती रहती हैं ७ द्रव्याधिक नय से द्रव्य नित्य है, पर्यायाधिक नय से द्रव्य अनित्य है	७	६६
(गाथा २)	धर्मादि चार द्रव्यों में मात्र अर्थं पर्याये होती हैं किन्तु जीव, पुदगल में व्यंजन पर्याय भी होती है ७ क्रिया-निमित्तक उत्पाद व निष्ठिक द्रव्य में उत्पाद	७	६६
			७०
			७१

स्वभाव-अधिकार

७-८२ ७२-८१

२७	द्रव्य का लक्षण, गुण व पर्याय का लक्षण; द्रव्य के तीनों लक्षणों में अन्तर नहीं है	७	७२
२८	सामान्य व विशेष स्वभाव व उनका स्वरूप स्वभाव व गुण में अन्तर	७	७३
२९	जीव व पुदगल में २१ स्वभाव की सिद्धि जीव में अचेतनत्व व मूर्त्तत्व की सिद्धि तथा पुदगल में चेतनत्व व अमूर्तत्व की सिद्धि	६	७४
३०	धर्मादि द्रव्यों में १६ स्वभाव	६	७६
३१	काल में १५ स्वभाव	६	८०
(गाथा ३)	जीव आदि द्रव्यों में स्वभावों का कथन	६	८१

प्रमाण-अधिकार

१० ८१-८२

८३	प्रमाण व नय से २१ स्वभाव जाने जाते हैं	१०	८१
----	--	----	----

३४-३८ प्रमाण का लक्षण व भेद व उनका विषय;
केवलज्ञान के विषय पर विशेष विचार;
जेयों के परिणाम अनुसार ज्ञान में परिणामन १० ८२-८२

तथा अधिकार १०-१७ ६२-१३६

३६	नय का लक्षण	१०	६२
४०	} नय के भेद तथा निश्चय नय, व्यवहार नय का	१०	६३
(गाथा ४)	} लक्षण व भेद	१०	६३
४१	द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक; नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत तयों का विशेष कथन	११	६४
४१	अन्य प्रकार से नय के ६ भेद तथा इनके स्वरूप का विशेष कथन	११	६४
	द्रव्यार्थिक नय		६४
	पर्यायार्थिक नय		६४
	नैगम नय		६५
	संग्रह नय		६६
	व्यवहार नय		६६
	ऋजुसूत्र नय		६७-६८
	शब्द नय		६८-१००
	समभिरूढ़ नय		१००-१०१
	एवंभूत नय		१०२
४२-४४	उपनय का लक्षण तथा भेद	११	१०२-१०४
	व्यवहार शब्द का अर्थ		१०३
	सदभूतव्यवहार नय		१०३
	असदभूतव्यवहार नय		१०३
	उच्चारित-असदभूत-व्यवहार नय		१०४
४७	कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	११	१०५

४५	उत्पाद-व्यय को गौण करके सत्ता को ग्रहण करने वाला शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	११	१०५
४६	भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	१२	१०६
४७	कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	१२	१०७
४८	उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	१२	१०७
४९	भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	१२	१०८
५०	अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिक नय	१२	१०९
५१	स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय	१२	१०९
५२	परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय	१२	११०
५३	परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय	१२	१११
५४	अनादि-नित्य पर्यायार्थिक नय	१३	११२
५५	सादिनित्य पर्यायार्थिक नय क्षायिकभाव सादि-नित्य है	१३	११३
५६	अनित्य-शुद्ध पर्यायार्थिक नय	१३	११५
५७	नित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय	१३	११५
५८	नित्य-शुद्ध पर्यायार्थिक नय	१३	११६
५९	अनित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय	१३	११७
६०—६७	भूत-भावि-वतंसान नीमन नय	१३—१४	११८—१२२
६८—७०	सामान्य-विशेष संग्रह नय	१४	१२२—१२३
७१—७२	दो प्रकार व्यवहार नय	१५	१२४
७३—७५	दो प्रकार ऋजुसूत्र नय	१५	१२६
७६—७८	शब्द, समभिरूढ़, एवं भूत नय	१५	१२८—१३०
८२	शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३१
८३	अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३१
८४	स्वजात्यसद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३२
८६	विजात्यसद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३३
८७	स्वजातिविजात्यसद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३४
८८	उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३५

८९	स्वजाति-उपचरित-असदभूत-व्यवहार नय	१६	१३७
९०	विजाति-उपचरित-असदभूत-व्यवहार नय	१७	१३८
९१	स्वजाति-विजाति-उपचरित-असदभूत-व्यवहारनय	१७	१३९
	गुरुण-व्युत्पत्ति-श्रधिकार	१७-१८	१४०-१४८
९२-९३	गुरुण और पर्याय का लक्षण	१७	१४०
९४	अस्तित्व स्वभाव का लक्षण	१७	१४१
९५	बस्तु स्वभाव का लक्षण सामान्य के भेद विशेष के भेद पर्याय का लक्षण	१७	१४१
९६-९७	द्रव्य का लक्षण	१७	१४२
९८	प्रमेय स्वभाव का लक्षण वर्तमान पर्याय ही प्रमेय है	१७	१४३
९९(गा. ५)	अगुरुलघु गुरुण का लक्षण	१८	१४४
१००	प्रदेश का लक्षण	१८	१४५
१०१ (गा. ६)	चंतन्य का लक्षण	१८	१४६
१०२	अचेतन-स्वभाव	१८	१४६
१०३	मूर्ति जीव मूर्ति है	१८	१४७
१०४	अमूर्ति	१८	१४८
	पर्याय की व्युत्पत्ति	१६	१४८-१४६
१०५	पर्याय का व्युत्पत्ति-अवयं	१६	१४८
	स्वभाव-व्युत्पत्ति श्रधिकार	१६-२१	१४६-१५७
१०६	अस्ति-स्वभाव	१६	१४६
१०७	नास्ति-स्वभाव	१६	१४६
१०८	नित्य स्वभाव	१६	१५०

१०६	अनित्य-स्वभाव	१६	१५०
११०-१११	एक-स्वभाव; अनेक-स्वभाव	१६	१५०
११२-११३	भैद व अभैद स्वभाव	१६-२०	१५१
११४-११५	भव्य और अभव्य स्वभाव	२०	१५२-१५३
(गाथा ७)	द्रव्य एक दूसरे में प्रवेश करते हुए भी दूसरे द्रव्य रूप नहीं होते	२०	१५३
११६	पारिणामिक भाव	२०	१५४
११७	स्वभाव गुण नहीं होते	२०	१५४
११८-१२०	गुण स्वभाव होते हैं और द्रव्य भी होते हैं	२१	१५५
१२१	विभाव	२१	१५५
१२२	शुद्ध और अशुद्ध भाव	२१	१५५
१२३	उपचरित-स्वभाव	२१	१५६
१२४	सिद्ध भगवान् उपचार से सर्वज्ञ हैं	२१	१५६
	एकान्त पक्ष में दोष	२१-२५	१५७-१६८
(गाथा ८)	एकान्त दुर्योग है	२१	१५७
१२७	एकान्त से, सर्वथा सत् सानने पर संकर आदि दोष उत्पन्न हो जायेंगे	२२	१५८
	संकर आदि दोषों का कथन	२२	१५८
१२८-१३१	एकान्त से, सर्वथा असत्, नित्य, अनित्य, एकरूप, अनेकरूप में मानने में दोष	२२-२३	१५९-१६१
(गाथा ९)	विदेष द्विना सामान्य और सामान्य रहित विदेष खर-विषाणवत् है		१६०
१३२-१३६	भैद, अभैद, भव्य, अभव्य	२३	१६१-१६३
१३७	एकान्त से, सर्वथा स्वभाव नय का पक्ष किने में संसार का अभाव	२३	१६३
१३८	एकान्त से, सर्वथा चिभाव के पक्ष में भोक्ष का अभाव	२४	१६४
१३९	सर्वथा चैतन्य मानने पर सब जीवों के शुद्ध ज्ञानचेतना का प्रसरण आ जायगा	२४	१६४

१४०	सर्वथा शब्द किसका वाची है	२४	१६४
१४१	सर्वथा अचेतन के पक्ष में सकल अभ्यन्तर का अभाव	२४	१६५
१४२	जीव को सर्वथा मूर्ति पक्ष में मोक्ष का अभाव	२४	१६५
१४३	जीव को सर्वथा अभूति के पक्ष में संसार का अभाव	२४	१६५
१४४-१४५	सर्वथा एकप्रदेश तथा सर्वथा अनेकप्रदेश मानने में दोष	२४	१६६
१४६-१४७	सर्वथा शुद्ध तथा अशुद्ध मानने में दोष	२५	१६६-१६७
१४८	उपचरित के एकान्त पक्ष में आत्मज्ञता का अभाव	२५	१६७
१४९	अनुउपचरित के एकान्त पक्ष में सर्वज्ञता का अभाव	२५	१६७

नय योजना २५-२७ १६८-१७९

(गाथा १०)	नानास्वभाव वाले द्रव्य को प्रमाण से जानकर, सापेक्ष गिरिधि के लिये नयों से युक्त करना चाहिये	२५	१६८
१५०-१५७	नयों द्वारा अस्ति, नास्ति, नित्य, अनित्य, एक, अनेक, भेद, अभेद स्वभावों की सिद्धि	२५-२६	१६८-१७०
१५८	भव्य द अभ्यन्तर स्वभाव पारिणामिक हैं	२६	१७१
१६०	कर्म, नोकर्म भी चेतन-स्वभाव वाले हैं	२६	१७१
१६२	जीव भी असद्भूत-व्यवहार नय से अचेतन है	२६	१७३
१६४	जीव भी असद्भूत-व्यवहार नय से मूर्ति है	२६	१७३
१६६	पुद्गल उपचार से अभूति है	२६	१७४
१६८	धर्म आदि द्रव्यों के भी एकप्रदेश स्वभाव	२६	१७५
१७०	पुद्गल परमाणु के उपचार से नानाप्रदेशत्व है	२७	१७६
१७१	कालाणु के उपचरित स्वभाव नहीं है	२७	१७७

१७२	पुद्गल के, उपचार से अमूर्त-स्वभाव है	२७	१७७
१७३-१७५	स्वभाव, विभाव, शुद्ध-स्वभाव, अशुद्ध स्वभाव, ये स्वभाव शुद्ध व अशुद्ध नये हैं।	२७	१७८
१७६	उपचरित स्वभाव असद्भूत व्यवहारनय से है	२७	१७९
(गाथा ११)	जैसा वस्तु-स्वरूप है ज्ञान वैसा ही जानता है	२७	१७९
प्रमाण का कथन		२८	१७६-१८०
१७७-१७८	प्रमाण का लक्षण व भेद	२८	१७६
१७९-१८०	मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान सविकल्प, केवलज्ञान निविकल्प	२८	१८०
नय का लक्षण व भेद		२८	१८१
१८१	नय के चार लक्षण	२८	१८१
१८२	सविकल्प व निविकल्प नय	२८	१८१
निष्ठोप की व्युत्पत्ति		२८-२९	१८२-१८४
१८३	निष्ठोप की व्युत्पत्ति तथा भेद	२८	१८२
	नाम निष्ठोप		१८२
	स्थापना निष्ठोप		१८३
	द्रव्य निष्ठोप		१८३
	भाव निष्ठोप		१८४
नयों के भेदों की व्युत्पत्ति		२९-३४	१८४-१९८
१८४-१८५	द्रव्याधिक नय, शुद्ध-द्रव्याधिक नय की व्युत्पत्ति	२९	१८४
१८६-१८८	अशुद्ध-द्रव्याधिक नय, अन्वयद्रव्याधिक नय, स्वद्रव्यादिग्राहक नय, परद्रव्यादिग्राहक नय की व्युत्पत्ति	२९	१८५
१८०	परमभावग्राहक-द्रव्याधिक नय	३०	१८६

१६१-१६३	पर्यायाधिक नय, अनादिनित्य-पर्यायाधिक नय, सादिनित्य-पर्यायाधिक नय की व्युत्पत्ति	३०	१८६
१६४-१६५	शुद्ध-पर्यायाधिक नय अशुद्ध पर्यायाधिक नय की व्युत्पत्ति	३०	१८७
१६६-२०२	नैगम ग्रादि सात नयों की व्युत्पत्ति नैगम ग्रादि नयों का विषय उत्तरोत्तर सूक्ष्म है, इसके दृष्टान्त	३०	१८७
२०४	निश्चय नय का विषय	३१	१८०
२०५	व्यवहार नय का विषय	३१	१८१
२०६, २०८	सद्भूत-व्यवहार नय का विषय	३१, ३२	१८१, १८२
२०७	असद्भूत-व्यवहार नय का विषय	३१	१८२
२०९, २१०	उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय का विषय द्रव्य में द्रव्य का उपचार गुण में गुण का उपचार	३२	१८२, १८३
	पर्याय में पर्याय का उपचार		१८३
	द्रव्य में गुण का उपचार		१८३
	द्रव्य में पर्याय का उपचार		१८४
	गुण में द्रव्य का उपचार		१८४
	गुण में पर्याय का उपचार		१८४
	पर्याय में द्रव्य का उपचार		१८४
	पर्याय में गुण का उपचार		१८४
२१२	प्रयोजन व निमित्त के वश उपचार होता है		१८५
२१३	अविनाभाव सम्बन्ध, संहलेष सम्बन्ध, परिणामपरिणामि सम्बन्ध, शद्वाशद्वेय सम्बन्ध, ज्ञानज्ञेय सम्बन्ध, चारित्र- कर्त्ता सम्बन्ध के वश से उपचार होता है		१८६
	आध्यात्म नय	३४-३५	१८८-२०८
२१६	निश्चय व व्यवहार नय का विषय	३४	१८८
२१८	शुद्ध-निश्चय नय का विषय निरूपाधिक द्रव्य व गुण का अभेद है किन्तु बंध व मोक्ष इस का विषय नहीं हैं	३४	१८९

सिद्धमण्टमण्णविय—

मणुवममपुत्थ-सोक्षमण्णवज्जं ।

केवल-पहोह-गिज्जिय—

दुण्णय-तिमिरं जिणं णमह ॥

[शाचार्य श्री बीरसेन]



दुनिकारन्यानोक—

विरोधध्वंसनौषधिः ।

स्थात्कारजीविता जोयाज्—

जैनी सिद्धान्तपद्धतिः ॥

[श्रीमद्यूतचन्द्रसूरि]

णमो अरहुंताणं ।

णमो सिद्धाणं ।

णमो ग्राइरियाणं ।

णमो उवज्ञायाणं ।

णमो लोए सब्ब-साहूणं ॥

श्रीमद्देवसेनाचार्यविरचिता

आलापपद्धतिः

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च ।

पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ॥१॥

टिप्पणी—गुणानां=द्रव्यगुणानां । वीरं=विशेषेण ‘इ’ मोह-
लद्धीं राति ददातीति यः सः वीरस्तं भूतभावित्यान्ततीर्थं करसमूहं,
पक्षे वर्द्धमानम् ।

आलापपद्धतिर्वचनरचनाऽनुक्तमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते ॥२॥

टिप्पणी—आलापपद्धतिः=वचनपद्धतिः । वचनरचना=
व्याख्या । नयचक्रस्य=सम्यग्घानं प्रमाणं तदवयवा नयाः, नयानां
चक्रं समूहस्तस्य । प्राकृतमयं नयशास्त्रं विलोक्य ।

सा च किमर्थम् ? ॥२॥

टिप्पणी—सा=आलापपद्धतिः ।

द्रव्यलक्षणसिद्धयर्थम् स्वभावसिद्धयर्थम् ॥३॥

टिप्पणी—लक्षणं=गुणः । स्वभावसिद्धयर्थं=आत्मस्वभाव-
सिद्धयर्थम् ।

द्रव्याणि कानि ? ॥४॥

जीवपुद्गलघमधिर्गाकाशकालहत्याणि ॥५॥

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥६॥

उत्पादव्ययप्रौच्ययुक्तं सत् ॥७॥

॥ इति द्रव्याधिकारः ॥

लक्षणानि कानि ? ॥८॥

अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रभेयत्वं, अगुरुलघुत्वं,
प्रदेशत्वम्, चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वं, अमूर्तत्वं, द्रव्याणां
दश सामान्यगुणाः ॥६॥

टिप्पणी—अस्तिन्वं = अस्ति इत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्गुप्तत्वं, स्व-
चतुष्टयापेक्षया निरचयेन, प्रदेशभेदो न यत्र स निरचयः, स्वर्णे
पीतत्वं यथा; तद्विपरीतो व्यवहारः यथा रंजितवस्त्रम् । वस्तुनोभावः
वस्तुत्वं, सामान्यविशेषात्मकं वस्तु । द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वं, निजनिज-
प्रदेशसमूहैरस्त्रणडकूया स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति, द्रोष्यति,
अदुद्रवदिति द्रव्यम्; सत् द्रव्यलक्षणम्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान्
व्याप्तोतीति सत् । प्रभेयस्य भावः प्रभेयत्वं, प्रमाणेन स्वपरहृष्टं परि-
छेदं प्रभेयम् । अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम्; सूक्ष्मा अवाङ्गोचराः
प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः । प्रदेश-
स्य भावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गलपरमाणुनाचष्टब्धम् ।
चेतनस्य भावः चेतनत्वं, चेतन्यं अनुभवनम् । अचेतनस्य भावोऽचेतन-
त्वं, अचेतन्यम् अननुभवनम् । मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादित्वम् ।
अमूर्तस्य भावो अमूर्तत्वं रूपादिरहितत्वम् । यत् सर्वत्र प्राप्यते तत्
सामान्यम् । इत्युक्ते चर्चां करोति करिचन् चेतनत्वं मूर्तत्वं एतद्गुणाद्यं
जीवपुद्गलाभ्यामन्यत्र न, तत्र सामान्यं कथं ? तप्रोक्तरं—भो ! यदा
एक एव जीवः एक एव पुद्गलस्तदा भवत्प्रश्नस्ताहग् विघ एव,
परन्तु जीवस्यानन्तता पुद्गलाणवोऽप्यपरिमितास्ततो दूषणो न ।

प्रत्येकमष्टौ सर्वेषाम् ॥ १० ॥

टिप्पणी— सर्वेषां—सर्वेषां द्रव्याणां । एकैकद्रव्ये अष्टौ अष्टौ गुणा भवन्ति । जीवद्रव्ये अचेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति । पुद्गलद्रव्ये चेतनत्वममूर्तत्वं च नास्ति । एवं द्विद्वयुणवर्जिता अष्टौ अष्टौ गुणाः प्रत्येकद्रव्ये भवन्ति ।

ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि, स्पर्शरसगन्धवरणाः, गतिहेतुत्वं, स्थितिहेतुत्वं, अवगाहनहेतुत्वं, वर्तनाहेतुत्वं, चेतनत्वं, अचेतनत्वं, मूर्तत्वं, अमूर्तत्वं, द्रव्याणां षोडश विशेषगुणाः ॥ ११ ॥

टिप्पणी—विशेषगुणो ज्ञानं सामान्यगुणो दर्शनं आत्मसम्बन्धिनः । स्पर्शरसगन्धवरणाः पुद्गलसम्बन्धिनः । जीवं विना पञ्चद्रव्याणां अचेतनत्वम् । पुद्गलद्रव्यस्य मूर्तत्वम् । पुद्गलं विना पञ्चद्रव्याणां अमूर्तत्वम् ।

प्रत्येकं जीवपुद्गलयोः षट् ॥ १२ ॥^१

टिप्पणी—ज्ञानदर्शनसुखवीर्यचेतनत्वमूर्तत्वानि षट् जीवस्य । स्पर्शरसगन्धवरणाचेतनत्वमूर्तत्वानि षट् पुद्गलस्य ।

इतरेषां प्रत्येकं त्रयो गुणाः ॥ १३ ॥^२

१. 'वीर्य' इति पाठान्तरम् । २. 'वण' इति पाठान्तरम् । ३. 'षोडशविशेषगुणेषु जीवपुद्गलयोः षटिति । जीवस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि चेतनत्वममूर्तत्वमिति षट् । पुद्गलस्य स्पर्शरसगन्धवरणमूर्तत्वमचेतनत्वमिति षट् ।' ऐसा ज्ञात होता है कि मुद्रित पुस्तकों में जो यह पाठ है वह टिप्पणी का पाठ मूलपाठ में ले लिया गया है । ४. 'इतरेषां धर्माधिमकिशकालानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः । धर्मद्रव्ये गतिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमेते त्रयो गुणाः । अधर्मद्रव्ये स्थितिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति । अकाशद्रव्ये अवगाहनहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति । कालद्रव्ये वर्तनाहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति विशेषगुणाः ।' मुद्रित पुस्तकों में यह पाठ है । ऐसा ज्ञात होता है कि टिप्पणी का पाठ मूलपाठ में ले लिया गया ।

टिष्पण—इतरेषां—घर्मादीनां घर्मीघर्माकाशकालानाम् । घर्मस्य गतिहेतुत्वाचेतनत्वामूर्तत्वानि त्रीणि । आघर्मस्य स्थितिहेतुत्वाचेतनत्वामूर्तत्वानि त्रीणि । आकाशस्य अवगाहनहेतुत्वाचेतनत्वामूर्तत्वानि त्रीणि । कालस्य वर्तनाहेतुत्वाचेतनत्वामूर्तत्वानि त्रीणि ।

अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्यगुणां विजात्यपेक्षया त एव विद्येषं गुणाः ॥१४॥

टिष्पण—अन्तस्थाः चत्वारो गुणाः—चेतनत्वं अचेतनत्वं मूर्तत्वं अमूर्तत्वं चेति । चेतनत्वाद्यश्चत्वारः सामान्यगुणाः विशेषाः कथं संभवन्ति ? तत्रोत्तरं—स्वजात्या समानाः विजात्या त एव विशेषाः, अत्र न दोषः । तत्र पुनरपि पृच्छति करिचत्, भो ! अम स्वजाति-विजात्योरेव ज्ञानं, कथं तदर्थं ज्ञानं ? तत्रोत्तरं—भो ! सा स्वजातिः एकं लक्षणं त्रिकाले तदेव, या अनन्तजीवद्रव्यस्य (नां) सत्ता परस्परं चेतन्यलक्षणेन स्वजातिस्तथैव रूपरसगन्धस्पर्शैः परमाणवोपि । जीव-द्रव्यस्यापेक्षयान्यद्रव्यं विजातीयम् । तत्र पुनरप्याशङ्कां करोति करिचत्, भो ! जीवस्य ज्ञानदर्शनद्रव्यमप्युक्तं तथा चेतनत्वं च, अत्र को विशेषः ? तत्रोच्यते चेतनत्वं सामान्यलक्षणं, तत् ज्ञानदर्शनात्मकम् । चेतना सर्कज्ज प्राप्यते यस्मात् ज्ञानचेतना दर्शनचेतना सहितः संसारीजीवः तथा सिद्धोपि वर्तते, ततः चेतनस्वभावस्य कुत्रापि नाशो न, तस्मात् चेतनत्वं सामान्यम् । एवं ज्ञानदर्शनसुखबीर्योः (षि) सम्यक् स्वभावे एव तस्मादेतानि लक्षणानि पृथक् पृथक् उक्तमनि, पुनरुक्तदोषो नात्र । स्वजात्यपेक्षया—द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया ।

॥ त गुणविकारः ॥

गुणविकारः पर्यायस्ते द्वेषा अर्थव्यंजनपर्यायभेदात् ॥१५॥
अर्थपर्यायस्ते द्वेषा स्वभावविभावपर्यायभेदात् ॥१६॥

टिष्पण—स्वभावपर्यायाः सर्वद्रव्येषु भवन्ति, विभावपर्याया जीवपुदगलयोश्च भवन्ति ।

अगुरुलघुविकाराः स्वभावार्थपर्यायास्ते द्वादशधा षड्वृद्धिरूपाः षड्ढानिरूपाः; अनन्तभागवृद्धिः, असंख्यातभागवृद्धिः, संख्यातभागवृद्धिः, संख्यातगुणवृद्धिः, असंख्यातगुणवृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिः, इति षड्वृद्धिः; तथा अनन्तभागहानिः, असंख्यातभागहानिः, संख्यातभागहानिः, संख्यातगुणहानिः, असंख्यातगुणहानिः अनन्तगुणहानिः, इति षड्हानिः । एवं षट्वृद्धिषड्ढानिरूपा ज्ञेयाः ॥१७॥^१

विभावार्थपर्यायाः षड्विधाः मिथ्यात्व-कषाय-राग-द्वेष-मुण्ड-पापस्ताऽऽव्यवसायाः ॥१८॥^२

॥ इत्यर्थपर्यायाः ॥

[व्यंजनपर्यायास्तेद्वेधा स्वभावविभावपर्ययभेदात्]

विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाश्चतुर्विधा नरनारकादिपर्यायाः अथवा चतुरशीतिलक्षा योनयः ॥१९॥

टिष्पण—विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः = जीवपुदगलयोर्विभावपर्याया भवन्ति । द्रव्यस्यव्यञ्जनपर्यायाः द्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः, विभावाश्च ते व्यञ्जनपर्यायाः । अथवा विभाव विभावस्वभावपरिणामं यच्च तद्द्रव्यं च तस्य व्यञ्जनपर्यायाः । स्वभावादन्यथाभवनं विभावः । यच्च तद्द्रव्यं च तस्य व्यञ्जनानि लक्षणानि चिह्नानि वा, तेषां पर्यायाः परिणामनानि विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः ।

१. सूत्र नं० १७ दिल्ली की प्रति ३१।१०४ के अनुसार है । २. सूत्र नं० १८ बूँदी की प्रति के अनुसार है ।

विभावगुणव्यञ्जनपर्याया मत्यादयः ॥२०॥

टिप्पणी—“स्थूलोव्यञ्जनपर्यायो वाग्मयो नश्वरः रिथः । सूक्तमः प्रतिक्षणाध्वंसीपर्यायश्चार्थगोचरः ।”

मत्यादयः—मति श्रुत अवधि कुमति कुश्रुत कुश्रवधि मनःपर्यय ज्ञानानि, चक्षरचक्षुरवधिदशनानि ।

स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाश्चरम-

शरीरात् किञ्चिन्न्यूनसिद्धपर्यायः ॥२१॥

टिप्पणी—त्रैलोकप्रज्ञासौ उक्त—

“दीहृत् वाहूलं चरित्वावे जस्स जारिसं ठाणं । तत्तोतिभागदीणं ओगाहण सब्बसिद्धाणं ।”

तनारायामविस्तारै प्राणिनां पूब जन्मनि तत् त्रिभागोनसंस्थानं जाते सिद्धत्वं पर्याये । गतसिवथमूषाया आकारेणोपलक्षिताः अभूर्तिनः विराजन्ते केवलज्ञानमूर्तयः ।

स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याया अनन्तचतुष्टयरूपा जीवस्य ॥२२॥

पुद्गलस्य तु द्वयणुकादयो विभावद्रव्यञ्जनपर्यायाः ॥२३॥

रसरसान्तरगन्धगन्धान्तरादि विभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः ॥२४॥

अविभागिपुद्गलपरमाणुः स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः ॥२५॥

वर्णगंधरसैककाविरुद्धस्पर्शद्वयं स्वभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः ॥२६॥

टिप्पणी—उक्तं च आचारसारे—

अगुणेच पुद्गलोऽभेदावयवः प्रचयशक्तिः ।

कायेच रक्तघ्नेदोत्थश्चतुरस्त्वतीन्द्रियः ॥ १३ ॥

विभ्रदेकं रसं गन्धं वर्णं शीतचतुष्टये ।

स्पर्शं चावाषकौ स्पर्शविकदा सर्वदेहशः ॥ १४ ॥

[अध्याय ३]

१. ‘चरमशरीराकारात्’ ऐसा पाठ दूर्दी प्रति में है ।

अभेदः = भेत्तुभशक्यः । प्रचयशक्तिः = स्कन्धरूपेण परिणमनशक्तेः । स्कन्धभेदोत्थः = पृथक् भावजनितः । चतुरसः = चतुष्कोणः । शीतचतुष्टये स्पर्शे = शीतोष्णस्तिनग्वरूपचतुःप्रकारे । अबावकौ = परस्पराविरोधकौ शीतस्तिनग्वौ शीतरूपौ उष्णस्तिनग्वौ उष्णरूपौ । एकदा = एकसमये । शीतोष्णयोरेकं स्तिनग्वरूपयोरेकं । उक्तं च महापुराणे :—

अणवः कार्यलिङ्गाः स्युः द्विस्पर्शः परिमण्डलाः ।

एकवर्णरसा नित्याः स्युरनित्याइत्य पर्यायैः ॥ २४/१४८ ॥

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणाम् ।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥ १ ॥

धर्मधर्मनभः काला अर्थपर्यायिगोचराः ।

व्यंजनेन तु सम्बद्धौ द्वावन्यौ जीवपुद्गलौ ॥ २ ॥

टिथ्पण—अनाद्यनिधने = आद्यन्तरहिते । उन्मज्जन्ति = प्रादुर्भवति । निमज्जन्ति = विनश्यन्ति ।

॥ इति पर्यायाधिकारः ॥

गुणपर्ययवद्रव्यम् ॥ २७ ॥

स्वभावः कथ्यन्ते—अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः, नित्यस्वभावः, अनित्यस्वभावः, एकस्वभावः, अनेकस्वभावः, भेदस्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः, परमस्वभावः, एते द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः; चेतनस्वभावः, अचेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, अमूर्तस्वभावः; एकप्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः, विभावस्वभावः, शुद्धस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभावः, एते द्रव्याणां दशविशेषस्वभावाः ॥ २८ ॥

टिष्ठण—स्वभावः—द्रव्याणां स्वरूपाणि । तत्कालपर्यायाक्रान्तं वस्तु भावो विधीयते । भो गुणाधिकारस्तु प्रोक्त एव पुनः स्वभावाधिकारः पृथक् निरूपयते तत्र को भेदः ? तत्रोत्तरं यो गुणः स गुणिन्येव प्राप्यते । कुतः ? गुणगुणिनोरभेदश्च । स्वभावो गुणोप गुणिन्यपि प्राप्यते । कुतः ? गुणोगुणो स्वस्वपरिणामि परिणामति । या परिणामिः सैव स्वभावः, अयं विशेषः । तस्मात् स्वभावस्वरूपं पृथक् लिख्यते ॥ अस्तिस्वभावः—स्वभावलाभादन्युतत्वादग्निदाहवदस्तिस्वभावः । नास्तिस्वभावः—परस्वरूपेणाभावान्नास्तिस्वभावः । नित्यस्वभावः—निजनिजनानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलभान्नित्यस्वभावः । अनित्यस्वभावः—तस्यापि अनेकार्याग्रपरिणामित्वादनित्यस्वभावः । एकस्वभावः—स्वभावानामेकाधारत्वादेकस्वभावः । अनेकस्वभावः—एकस्यापि अनेकस्वभावोपलभात् अनेकस्वभावः । भेदस्वभावः—गुणगुण्यादि संज्ञाभेदादभेदस्वभावः । अभेदस्वभावः—गुणगुण्यादेकस्वभावात् अभेदस्वभावः । भव्यस्वभावः—भाविकाले स्वरूपाकारभवनात् भव्यस्वभावः । अभव्यस्वभावः—कालत्रयेषि परस्वरूपाकारभवनात् अभव्यस्वभावः । [‘भवितु’ परिणामितु योग्यत्वं तु भव्यत्वं तेन विशिष्टत्वाद् भव्यः । तद्विपरीतेनाभव्याः]—नयचक्र गाथा ६३ टिष्ठण । ‘द्रव्यस्य सर्वदा अभूतपर्यायैः भाव्यमिति भव्यः, द्रव्यस्य सर्वदा भूतपर्यायैरभाव्यमिति अभव्यः’—पञ्चास्तिकाय गाथा ३७ टीका । ‘भव्यस्यैकतेन परपरिणत्या संकरादि दोष सम्भवः, अभव्यस्यापि तथा शून्यताप्रसंगः स्वरूपेणाप्यभवनात्’—नयचक्र पु० ४० ।] परमस्वभावः—परिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः । चेतनस्वभावः—असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः । अचेतनस्वभावः—जीवस्यापि असद्भूतव्यवहारेण अचेतनस्वभावः । मूर्त्स्वभावः—जीवस्यापि असद्भूतव्यवहारेण मूर्त्स्वभावः । अमूर्तस्वभावः—स्पर्शरसगंधवर्णं रहितः अमूर्तस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः—अखंडापेक्ष्या एकप्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः—भेदापेक्ष्या अनेकप्रदेशस्वभावः, विभावस्वभावः—स्वभावादन्यथा भवनं विभाव-

स्वभावः । शुद्धस्वभावः—शुद्धं केवलभावं । अशुद्धस्वभावः—तस्मात् (शुद्धात्) विपरीतमशुद्धं । उपचरितस्वभावः—स्वभावस्यान्यत्रोपचा रादुपचरितस्वभावः, यथा सिंहोमाणवकः, स द्वेषा कर्मजस्वाभाविक भेदात्, यथा लीवस्य भूत्तत्वमन्तेतत्वं, यथा सिद्धानां परज्ञता परदर्शकत्वं च ।

‘जीवपुद्गलयोरेकविशतिः ॥२६॥

चेतनस्वभावः मूर्तस्वभावः विभावस्वभावः अशुद्धस्वभावः उपचरितस्वभावः^१ एतेविना घर्मादि [घर्मधर्मकाशानां] त्रयाणां षोडश स्वभावाः सन्ति ॥३०॥

टिप्पणी—ते के १ अस्तिस्वभावः नास्तिस्वभावः नित्यस्वभावः अनित्यस्वभावः एकस्वभावः अनेकस्वभावः भेदस्वभावः अभेदस्वभावः परमस्वभावः एकप्रदेशस्वभावः अनेकप्रदेशस्वभावः अमूर्तस्वभावः अचेतनस्वभावः शुद्धस्वभावः भव्यस्वभावः अभव्यस्वभावः ।

तत्र बहुप्रदेशां (शत्वं) विना कालस्य पञ्चदश स्वभावाः ॥३१॥^२

टिप्पणी—तत्र=षोडशस्वभावमध्ये । बहुप्रदेशां विना=अनेकप्रदेशस्वभावं विना ।

एकविशतिभावाः स्युर्जीविपुद्गलयोर्मताः ।

घर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥३॥

टिप्पणी—मताः=इष्टाः ।

॥ इति स्वभावाधिकारः ॥

१. ‘इति जीवः’ यह पाठ दिल्ली की प्रति नं० ३१।१०४ में है ।

२. यह पाठ दिल्ली की प्रति नं० ३१।१०४ के अनुसार है । अन्य प्रतियों में ‘एकप्रदेश स्वभावः’ पाठ है जो अशुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि आगे भेदकल्पना निरपेक्षा से एकप्रदेशस्वभाव कहा गया है ।

३. इसके पश्चात् कुछ प्रतियों में ‘एकप्रदेशस्वभावः’ इतना अधिक पाठ है ।

ते कुतो ज्ञेयाः ? ॥३२॥

टिष्पण—ते=भावः ।

प्रमाणनयविवक्षातः ॥३३॥

सम्यज्ञानं प्रमाणम् ॥३४॥^१

तद्द्वेषा प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥३५॥

टिष्पण—प्रत्यक्षं प्रमाणं केवलीसिद्धोजिनश्च । इतरः=परोक्ष-प्रमाणम्, अनुमान-उपमान-शब्दप्रमाणानि परोक्षप्रमाणम् । यदि-निद्रियज्ञानं तदेव परोक्षप्रमाणं ।

अवधिमनःपर्यावेकदेशप्रत्यक्षी ॥३६॥

केवलं सकलप्रत्यक्षं ॥३७॥

मतिश्रुते परोक्षे ॥३८॥

॥ प्रमाणमुक्तं ॥

तदवयवा नयाः ॥३९॥

टिष्पण—तदवयवाः=प्रमाणस्य अंशाः । प्रमाणंशास्तावंतो वावन्तो नयाः ।

नयभेदा उच्यन्ते ॥४०॥

गिर्ज्यववहारणया मूलभेद्या एवाण सञ्चारं ।

गिर्ज्यसाहणहेतु द्रव्यपञ्जतियाः^२ मुणह ॥४१॥

छाया—निश्चयव्यवहारनयौ मूलभेदौ नयानां सर्वेषाम् ।

निश्चयसाधनहेतु द्रव्यपर्यायार्थिकौ मन्यव्यम् ॥४२॥

टिष्पण—निश्चयनयाः=द्रव्यस्थिताः । व्यवहारनयाः=पर्यायस्थितः ।

१. 'तत्र प्रमाणं सम्यज्ञानं' यह पाठ दिल्ली प्रति ३११०४ में है ।

२. 'गिर्ज्यसाहणहेतु' इति प्राठान्तरं । ३. 'पञ्जतेद्रव्यतियं' इति प्राठान्तरं ।

द्रव्यार्थिकः, पर्यार्थिकः, नैगमः, संग्रहः, व्यवहारः,
ऋजुसूत्रः, शब्दः, समभिरूढः, एवंभूत इति नवनयाः
स्मृताः ॥४१॥

टिप्पणी—द्रव्यमेवर्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः। पर्याय एवार्थः
प्रयोजनमस्येति पर्यार्थिकः। नैकं गच्छतीति निगमः, निगमोविकल्प-
साप्रभवो नैगमः। अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृहातीति सद्ग्रहः।
सद्ग्रहेण गृहितार्थस्य भेदरूपतया वस्तु व्यवहित इति व्यवहारः।
ऋजु प्रांजलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः। शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्यय-
द्वारेण सिद्धशब्दः शब्दनयः। परस्परेणाभिरूढः समभिरूढः, शब्द-
भेदेऽपि अर्थभेदोनास्ति, यथा शकः इन्द्रः पुरन्दर इत्याद्यः समभि-
रूढः। एवं क्रियाप्रधानत्वेन भूयत इत्येवंभूतः।

उपनयास्त्वं कथ्यन्ते ॥४२॥

नयानां समीपा उपनयाः ॥४३॥

टिप्पणी—नयाङ्गं गृहीत्वा वस्तुनोऽनेकविकल्पत्वेन कथनमुपनयः।
सद्भूतव्यवहारः असद्भूतव्यवहारः उपचरितासद्भूत-
व्यवहारश्चेत्युपनयास्त्रेषाः ॥४४॥

इदानीमेतेषां भेदा उच्यन्ते ॥४५॥

टिप्पणी—एतेषां = नयानां उपनयानां च ।

द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ॥४६॥

१. कर्मोषाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिकः, यथा संसारीजीवः
सिद्धसद्गुणात्मा ॥४७॥

२. उत्पादव्ययगोणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा
द्रव्यं नित्यम् ॥४८॥

टिप्पणी—गौणत्वेन = अप्रधानत्वेन । सत्ता = धौत्यः ॥

३. भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निजगुण-
पर्यायस्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम् ॥४६॥

टिप्पणी—निजगुणादत्र निजपर्यायादत्र निजस्वभावादत्र तेषां
समाहारस्तस्मात् ।

४. कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा क्रोधादिकर्मज-
भाव आत्मा ॥५०॥

टिप्पणी—क्रोधादिकर्मजनितः स्वभावः ।

५. उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथैकस्मिन् समये
द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् ॥५१॥

६. भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथात्मनो दर्शन-
ज्ञानादयो गुणाः ॥५२॥

७. अन्वयसापेक्षो द्रव्यार्थिको यथा गुणपर्यायस्वभावं
द्रव्यम् ॥५३॥

८. स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा स्वद्रव्यादिचतुर्ष्ट-
यापेक्षया द्रव्यमस्ति ॥५४॥

टिप्पणी—आदिशब्देन स्वस्त्रेत्रस्वकालस्वभावा प्राह्णाः ।

९. परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा परद्रव्यादिचतुर्ष्ट-
यापेक्षया द्रव्यं नास्ति ॥५५॥

टिप्पणी—सुवर्णं हि रजतादिरूपतया नास्ति रजतस्त्रेण रजत-
कालेन रजतपर्यायेण च नास्ति ।

१०. परमभावग्राहकद्रव्यार्थिको यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा,
अत्रानेक स्वभावानां मध्ये ज्ञानस्त्वयः परमस्वभावो गृहीतः ॥५६॥

॥ इति द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ॥

अथ पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः ॥५७॥

१. अनादिनित्यपर्यायार्थिको यथा षुद्गलपर्यायो नित्यो
भेदादिः ॥५८॥

टिप्पणी—अनादिनित्यपर्यायार्थिको मेरु पुरस्सरः नित्यः पुष्टगल-
पर्यायो यथा । साहित्यमें स्वयंभुवा ।

२. सादिनित्यपर्यायार्थिको 'यथा सिद्धपर्यायो' नित्यः ॥५९॥

३. सत्तागौणत्वेनोत्पादब्ययग्राहकस्वभावोऽनित्यशुद्धपर्य-
यार्थिको यथा समयं समयं प्रति पर्याया विनाशिनः ॥६०॥

टिप्पणी—गौणत्वेन=अप्रधानत्वेन ।

४. सत्तासापेक्षस्वभावोऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा एक-
स्मिन् समये त्रयात्मकः पर्यायः ॥६१॥

टिप्पणी—त्रयात्मकः=पूर्वपर्यायस्य विनाशः उत्तर पर्यायस्योत्पादः
द्वयत्वेन ध्रुवत्वम् ।

५. कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावोऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा
सिद्धपर्यायसहशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः ॥६२॥

६. कर्मोपाधि सापेक्षस्वभावोऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा
संसारिणामुत्पत्तिमरणे स्तः ॥६३॥

॥ इति पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः ॥

तैगमस्त्रेधा भूतभाविवर्तमानकालभेदात् ॥६४॥

अतीते वर्तमानारोपणं यत्र, स भूततैगमो यथा अद्य

१. 'जीव एव क्षायिकभावेन साद्यनिवनः ।'— पञ्चास्तिकाय भाषा ५३
टीका । २. 'सिद्धजीवपर्यायो' इति पाठान्तरं । ३. अर्हन् पर्यायः ।

दीपोत्सवदिने श्री वर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः ॥६५॥

टिष्ठण—अतीते=अतीतकाले । आरोपणं=संस्थापनं ।

भाविनि भूतवत्कथनं यत्र स भाविनैगमो यथा अर्हन् सिद्ध एव ॥६६॥

टिष्ठण—भाविनि भविष्यति पदार्थे । भूतवत्=भूतेन तुल्यं । अर्हन्=इन्द्रादिकृतामनन्यसंभाविनीं गर्भावतरणं जन्मा भिषेक निष्कर्मण के बलश्चानोत्पत्ति निवारणादभिघानपञ्चमहाकल्याणरूपां अर्हणां पूजां अर्हतियोग्यो भवतीति अर्हन् । सिद्धः=सिद्धिः स्वात्मोपलक्षिष्ठः संजाता अस्येति सिद्धः, किंचिदूनचरमशुरोराकारेणगत सिद्धक मूषा-गर्भाकारवत् छायाप्रतिमावत् पुरुषाकारः सिद्धः । अंजनसिद्ध शादुका-सिद्ध गुटिकासिद्ध खडगसिद्ध मायासिद्धादि लोकिक विलक्षणः के बलश्चानायनंतरगुणव्यक्तिलक्षणः सिद्धः । यः अर्हन् स सिद्धप्रवेति भविष्यति पदार्थे भूतवत्कथनं भाविनैगमः ।

कर्तुं मारब्धभीष्मिष्टन्नमनिष्टन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते यत्र स वर्तमाननैगमो यथा श्रोदनः पच्यते ॥६७॥

॥ इति नैगमस्त्रेष्वा ॥^१

संग्रहो द्वेष्वाः ॥६८॥

सामान्यसङ्ग्रहो यथा सर्वाणि द्रव्याणि परस्परम-विरोधीनि ॥६९॥

विशेषसङ्ग्रहो यथा सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः ॥७०॥

॥ इति सङ्ग्रहो द्विष्वा ॥

१. केचिदृषोढा—अतीतवर्तमान, वर्तमानातीत, अनागतवर्तमाना, वर्तमानानागता, अनागतातीत, अतीतानागत । देखो दिल्ली की प्रति नं० ३१/१०४ ।

व्यवहारोऽपि द्वैषा ॥७१/१॥

सामान्यसङ्ग्रहभेदको व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवा-
जीवाः ॥७१/२॥

विशेषसङ्ग्रहभेदको व्यवहारो यथा जीवाः संसारिणो
मुक्ताश्च ॥७२॥

॥ इति व्यवहारो द्वैषा ।

ऋजुसूत्रोऽपि द्विविधः ॥७३॥

सूक्ष्मजुं सूत्रो यथा एकसमयावस्थायी पर्यायः ॥७४॥

स्थूलजुं सूत्रो यथा मनुष्यादिपर्यायास्तदायुः प्रमाणकालं
तिष्ठन्ति ॥७५॥

॥ इति ऋजुसूत्रो द्वैषा ॥

शब्दसमभिरूढं वंभूता नयाः प्रत्येकमेकैकान् नयाः ॥७६॥

शब्दनयो यथा दाराः भार्या कलञ्चं जलं आपाः ॥७७॥

टिल्पणा—यत्र लिंग-संख्या-साधनानां व्यभिचारे सति दोषो
मास्ति स शब्दनयः । [नया मन्त्रिर दिल्ली की प्रति नं० आ. १४ (स)]

समभिरूढनयो यथा गौः पशुः ॥७८॥

एवं भूतनयो यथा इन्दतीति इन्द्रः ॥७९॥

॥ चक्षता अच्छात्विज्ञतिर्नयभेदाः ॥

उपनयभेदा उच्यन्ते ॥८०॥

सद्भूतव्यवहारो द्विधा ॥८१॥

शुद्धसद्भूतव्यवहारो यथा शुद्धगुणशुद्धगुणिनोः शुद्ध-
पर्यायशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम् ॥८२॥

टिष्ठण—शुद्धः=कर्मेणिति निरपेक्षः । यथा गुणगुणिनोः=ज्ञान-
जीवयोः । पर्यायपर्यायिणोः=सिद्धपर्यायसिद्धजीवयोः ।

अशुद्धसद्भूतव्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाऽशुद्धगुणिनोरशुद्ध-
पर्यायाशुद्धपर्यायिणोर्भेद कथनम् ॥८३॥

॥ इति सद्भूतव्यवहारे द्विधा ॥

असद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ॥८४॥

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथन-
मित्यादि ॥८५॥

विजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा मूर्तं मतिज्ञानं यतो मूर्तं
द्रव्येण जनितम् ॥८६॥

स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा ज्ञेये जीवेऽजीवे
ज्ञानमिति कथनं ज्ञानस्य विषयात् ॥८७॥

॥ इत्यसद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ॥

उपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ॥८८॥

स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा पुनर्दारादि
मम ॥८९॥

१. 'दाराद्वाहं मम वा' इति पाठांतरं [बूँदी की प्रति में] ।

विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा वस्त्राभरणहेन-
रलादि मम ॥६०॥

स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देशराज्य-
दुग्धादि मम ॥६१॥

॥ इत्युपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेषाः ॥

गुणानां व्युत्पत्त्यविकारः

सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः ॥६२॥

टिप्पणी—अन्वयिनो गुणाः । व्यतिरेकिणः परिणामाः पर्यायाः ।

गुण्यते पृथक् क्रियते द्रव्यं द्रव्याद्यस्ते गुणाः ॥६३॥

टिप्पणी—द्रव्यं=द्रव्यान्तरं ।

अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सदृष्टित्वम् ॥६४॥

वस्तुलो भावो वस्तुत्वम्, सामान्यविशेषात्मकं वस्तु ॥६५॥

द्रव्यस्यभावो द्रव्यत्वम् निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्या
स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुदूवदिति
द्रव्यम् ॥६६॥

टिप्पणी—द्रवति=प्राप्नोति ।

सद्द्रव्यलक्षणम्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान्
व्याप्तोतीति सत्; उत्पादव्ययघोष्ययुक्तं सत् ॥६७॥

प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वम्, प्रमाणेन स्वपररूपं परिच्छेदं
प्रमेयम् ॥६८॥

टिप्पणी—परिच्छेदं=ज्ञातुं योग्यम् । प्रमाणं=स्वपरस्वरूपं व्यव-

सायि यत् ज्ञानं तत् प्रमाणं, विशेषेण अवस्थति निश्चनोतीति स्वप्न व्यवसायि ।

अगुरुलघोभविऽगुरुलघुत्वम् सूक्ष्मा अवागोचराः प्रतिक्षणं कर्तमाना आगमप्रमाण्यादस्युपगम्या अगुरुलघुमुणाः ॥६६॥

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्त्यते ।

आज्ञासिद्धं तु लद्गाहां नात्यशादादिनो जिनाः ॥५०॥

टिष्ठण—अनुभानादिभिः सिद्धं । जिनाः=अनेकविषमभवगद्दन-व्ययनप्राप्णहेतून् कर्मारातीन् शत्रून् जयन्ति च्छयं नयन्तीति जिनाः ।

प्रदेशस्यभावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गलपरमाणु-नावष्टब्धम् ॥१००॥

टिष्ठण—अवष्टब्धम्=व्याप्तं ।

चेतनस्य भावश्चेतनत्वम् चेतन्यमनुभवनम् ॥१०१॥

टिष्ठण—अनुभवनम्=अनुभूतिर्जीवाजीवादपदार्थानां चेतनमात्रम् ।

चेतन्यमनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च ।

क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम् ॥६॥

टिष्ठण—अनुभूतिः=द्रव्यस्वरूप चितनं । क्रियारूपमेव=कर्तव्य-स्वरूपमेव । अन्विता=सहिता ।

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचेतन्यमनुभवनम् ॥१०२॥

मूर्तस्यभावो मूर्तत्वं रूपादिमत्त्वम् ॥१०३॥

टिष्ठण—रूपादिमत्त्वम्=रूपरसगच्छस्पर्शवत्वं ।

अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहितत्वम् ॥१०४॥

॥ इति भुखानां व्युत्पत्तिः ॥

पर्यायस्वव्युत्पत्तिः

स्वभावविभावरूपतया याति पर्येति परिरणमतीति
पर्यायः ॥ १०५. ॥

टिप्पणी—पर्यायः—अय् गतौ अयनं आयः, परिसमन्तात् आयः
पर्यायः ।
॥ इति पर्यायस्य व्युत्पत्तिः ॥

स्वभाव व्युत्पत्त्यधिकारः

स्वभावलाभादच्युत्त्वादस्तिस्वभावः ॥ १०६ ॥

टिप्पणी—स्वभावः—स्वस्य स्वेत वा आत्मनो भवनं स्वभावः ।
लाभात्=व्याप्तेः ।

परस्वरूपेणाभावान्नास्तिस्वभावः ॥ १०७ ॥

टिप्पणी—अभावात्=अभवनात् ।

निज-निज- नानापययिषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलभा-
न्नित्यस्वभावः ॥ १०८ ॥

टिप्पणी—उपलभात्=प्राप्तिः ।

तस्याप्यनेकपर्यायपरिणामित्वादनित्यस्वभावः ॥ १०९ ॥

टिप्पणी—तस्य द्रव्यस्य ।

स्वभावानामेकाधारत्वादेकस्वभावः ॥ ११० ॥

एकस्याप्यनेकस्वभावोपलभादनेकस्वभावः ॥ १११ ॥

गुणगुण्यादिसज्जादिभेदाद् भेदस्वभावः ॥ ११२ ॥

टिप्पणी—संज्ञादि=संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनानि । गुणगुणीति
संज्ञानाम् । गुणा अनेके, गुणीत्वेक इति संख्या भेदः । सदूद्रव्यलक्षणं,

द्रव्याश्रया निरुणा गुणाः इति लक्षणभेदः । द्रव्येण लोकमानं क्रियते, गुणेन द्रव्यं ज्ञायते, इति प्रयोजन भेदः । यथा जीवद्रव्यस्य जीव इति संज्ञा । ज्ञानगुणस्य ज्ञानमिति संज्ञा । चतुर्भिराणैः जीवति जीविष्यति अजीवद्विति जीवद्रव्यलक्षणां । ज्ञायते पदार्थं अनेनेति ज्ञानमिति ज्ञानगुणलक्षणां । जीवद्रव्यस्य बंधमोक्षादिपर्यायैरविनश्वर-रूपेणपरिणामनं प्रयोजनं । ज्ञानगुणस्य पुनः पदार्थपरिच्छ्रित्तिसात्रभेदं प्रयोजनं इति संक्षेपेण ।

गुणगुण्याद्ये कस्वभावादभेदस्वभावः ॥११३॥

भाविकाले परस्वरूपाकारभवनादभव्यस्वभावः ॥११४॥

कालऋयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनादभव्यस्वभावः ॥११५॥

उत्तरङ्ग—

अण्णेण्णं पविसंता दिता उग्गासमण्णामण्णास्स ।

मेलंता वि य णिच्चवं सगसगभावं रा विजहंति ॥७॥^१

पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः ॥११६॥

टिळण—परिणामे स्वस्यभावे भवः पारिणामिकः ।

॥ इति सामान्यस्वभावानां व्युत्पत्तिः ॥



प्रदेशादिगुणानां व्युत्पत्तिश्चेतनादि विशेषस्वभावानां च व्युत्पत्तिनिगदिता ॥११७॥

धर्मपिक्षया स्वभावा गुणा न भवन्ति ॥११८॥

टिळण—धर्मपेक्षया = स्वभावपेक्षया ।

१. 'भाविकाले स्वस्वभाव भवनाद् भव्य स्वभावः ।' — नय चक्र संस्कृत पृ० ६२ । २. पंचास्तिकाय गाचा ७ ।

स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षया परस्परं गुणाः स्वभावा भवन्ति

॥११६॥

टिष्पण—चतुष्टयः—स्वद्रव्यं स्वक्षेत्रं स्वकालः स्वभावः ।

द्रव्याण्यपि भवन्ति ॥१२०॥

स्वभावादन्यथाभवनं विभावः ॥१२१॥

शुद्धं केवलभावमशुद्धं तस्यापि विपरीतम् ॥१२२॥

टिष्पण—तस्य=शुद्धत्वा ।

स्वभावस्याप्यन्यत्रोपचारादुपचरितस्वभावः ॥१२३॥

टिष्पण—उपचरितस्वभावः—यथा सिंहो मारणवकः (मारणवके मार्जारः) ।

स द्वेषा कर्मजस्वाभाविक-भेदात् । यथा जीवस्य मूर्त्तत्वमचेतनत्वं । यथा सिद्धात्मनां परज्ञता परदर्शकत्वं च ॥१२४॥

एवमितरेषां द्रव्यारणामुपचारो यथा सम्भवो ज्ञेयः ॥१२५॥

टिष्पण—इतरेषां=पुदूगलादि पञ्चद्रव्याणां ।

॥ इति विशेषस्वभावानां व्युत्पत्तिः ॥



दुर्णयैकान्तमारुद्धा भावानां स्वार्थिका हि ते ।

स्वार्थिकारचै विपर्यस्ताः सकलस्तु नया यतः ॥८॥

टिष्पण—दुर्दृष्टो नयो दुर्णयः । बौद्धादिभिः अंगीकृतः तस्यैकांतस्तं कर्मतापन्नं । दुर्नयैकांताद्विपरीताः नयस्यांगीकारे । तेनैव प्रकारेण ।

१. 'भावा न' इति पाठांतरं (बूद्धी की प्रति तथा सस्कृत नय चक्र) ।

२. 'स्वात्मिकारच' इति पाठांतरं (दिल्ली प्रति नं० ३११०४) ।

तत्कथं ? ॥१२६॥

तथाहि—सर्वथैकान्तेन सदूरुपस्य न नियतार्थव्यवस्था संकरादिदोषत्वात् ॥१२७॥

टिप्पणी—तथाहि=पूर्वादृधं विवृशोति । नियतार्थव्यवस्था=नियमितपदार्थव्यवस्था । सदूरुपस्य=सदूरुपस्य अंगीकारात् । संकरादिदोषः=संकर व्यतिकर विरोध वैयविकरण्य अनवस्था संशय अप्रतिपत्ति अभाव इत्यष्टौ संकरादि दोषाः । सर्ववस्तुनां एकवस्तु भवनं संकरः ॥१॥ यस्य वस्तुनः केनापि प्रकारेण स्थितिर्न भवति स भवनं संकरः ॥२॥ यज्जडस्य चेतनो भवति चेतनस्य जडो भवति स व्यतिकरः ॥३॥ ज्ञानेकं वस्तुनाम् एकं वस्तुनि विषमतया स्थितिः तद् वैयविकरण्यः ॥४॥ एकस्मात् द्वितीयो, द्वितीयात् तृतीयस्तस्माच्चतुर्थः एवं जडस्य चैतन्यं चैतन्याज्जडस्तदनवस्थादूषणं ॥५॥ यज्जडस्य चैतन्यसुच्यते च पुनः चैतन्यस्य जडउच्यतेऽयं संशयः ॥६॥ यस्यैकं चैतन्यसुच्यते च पुनः चैतन्यस्य निश्चयो न भवति तदप्रतिस्मिन्नपि काले जडस्य चैतन्यस्य निश्चयो न भवति तदप्रतिपत्तिदूषणं ॥७॥ सर्वथा वस्तुनो नाशएव भवति स अभावोदोषः ग्रोच्यते ॥८॥

तथासदूरुपस्य सकलशून्यताप्रसंगात् ॥१२८॥

टिप्पणी—असदूरुपस्य=असदूरुपनयस्थांगीकारे ।

नित्यस्यैकरूपत्वादेकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः । अर्थ-क्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१२९॥

अनित्यपक्षेषि निरन्वयत्वात् अर्थक्रियाकारित्वाभावः । अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१३०॥

टिप्पणी—निरन्वयत्वात्=निर्द्रव्यत्वात् ।

एकस्वरूपस्यैकान्तेन विशेषाभावः सर्वथैकरूपत्वात्,
विशेषा भावे सामान्यस्याप्यभावः ॥१३१॥

टिप्पणी—विशेषः—शिवक छत्रक स्थाश कोश कुशल घटादि विशेषः।

निविशेषं हि सामान्यं भवेत् खरविषारणवत् ।

सामान्यरहित्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि ॥६॥ इति ज्ञेयः ।

अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधारा-
धेयाभावाच्च ॥१३२॥

भेदपक्षेऽपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाकारि-
त्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१३३॥

अभेदपक्षेऽपि सर्वेषामेकत्वम्, सर्वेषामेकत्वेऽर्थक्रियाकारि-
त्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१३४॥

टिप्पणी—सर्वेषाम्=द्रव्याणां ।

भव्यस्यैकान्तेन पारिगामिकत्वात् द्रव्यस्य द्रव्यान्तरत्व
प्रसङ्गात्, सङ्कुरादिदोषसम्भवात् ॥१३५॥

टिप्पणी—सङ्कुरादि = सङ्कुरव्यतिकरविरोधवैयक्तिकरण्यानवस्था
संशयाप्रतिपत्त्यभावाइचेति ॥ [सूत्र १२७ के टिप्पणी में विशेष
व्याख्यान है ।]

सर्वथाऽभव्यस्यैकान्तेऽपि तथा शून्यताप्रसङ्गात् स्वरूपेणा-
प्यभवनात् ॥१३६॥

टिप्पणी—अभव्यस्यपक्षस्यांगीकारे सति ।

स्वभावस्वरूपस्यैकान्तेन संसाराभावः ॥१३७॥

विभावपक्षेऽपि मोक्षस्थाप्यभावः ॥१३८॥

सर्वथाचैतन्यमेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिः
स्यात्, तथा सति ध्यानं ध्येयं ज्ञानं ज्ञेयं गुहःशिष्याद्याभावः
॥१३९॥

टिप्पणि—सर्वेषां=सर्वजीवानां।

सर्वथाशब्दः सर्वप्रकारवाची, अथवा सर्वकालवाची, अथवा
नियमवाची वा, अनेकान्तसापेक्षी वा ? यदि सर्वप्रकारवाची
सर्वेकालवाची अनेकान्तवाची वा, सर्वादिगणे पठनात् सर्व-
शब्द, एवं विवरश्चेत्तहि सिद्धं नः समीहितम् । अथवा नियम-
वाची चेत्तहि सकलाथनां तब प्रतीतिः कथं स्यात् ? नित्यः
अनित्यः एकः अनेकः भेदः अभेदः कथं प्रतीतिः स्यात् निय-
मितपक्षत्वात् ?॥१४०॥

टिप्पणि—नः=अस्माकं ।

तथाऽचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात् ॥१४१॥

मूर्त्तस्यैकान्तेनात्मनो न मोक्षस्थावाप्तिः स्यात् ॥१४२॥

सर्वथाऽमूर्त्तस्यापि तथात्मनः संसारविलोपःस्यात् ॥१४३॥

एकप्रदेशस्यैकान्तेनाखण्डपरिपूर्णस्यात्मनोऽनेककार्यकारित्वं
एव हानिः स्यात् ॥१४४॥

टिप्पणि—एकप्रदेशस्य=एकप्रदेशस्य पञ्चस्यांगीकारे ।

सर्वथाऽनेकप्रदेशत्वेऽपि तथा तस्यानर्थकार्यकारित्वं स्व-
स्वभावशून्यताप्रसङ्गात् ॥१४५॥

१. 'मोक्षस्थाव्यप्तिः' इत्यवि पाठः (त्रूदी की प्रति) ।

टिष्ठण—तस्य = श्रात्मनः ।

शुद्धस्थैकान्तेनात्मनो न कर्ममलकलङ्घावलेपः सर्वथा
निरञ्जनत्वात् ॥ १४६ ॥

सर्वथाऽशुद्धैकान्तेऽपि तथात्मनो न कदापि शुद्धस्वभाव-
प्रसङ्गः तन्मयत्वात् ॥ १४७ ॥

टिष्ठण—तन्मयत्वात् = अशुद्धस्वभावमयत्वात् ।

उपचरितैकान्तपक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति नियमित-
पक्षत्वात् ॥ १४८ ॥

तथात्मनोऽनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधः स्यात्
॥ १४९ ॥

टिष्ठण—मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोषचारः ग्रहतर्त्ते ।
॥ एवं एकान्तपक्षे दोषाः ॥

नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः ।

तच्च सापेक्षसिद्धयर्थं स्यान्नयमित्तिं कुरु ॥ १० ॥

टिष्ठण—तत् = द्रव्यं ।

स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्तिस्वभावः ॥ १५० ॥

परद्रव्यादिग्राहकेण नास्तिस्वभावः ॥ १५१ ॥

उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकेण नित्यस्वभावः ॥ १५२ ॥

केनचित् पर्यायार्थिकेनानित्यस्वभावः ॥ १५३ ॥

भेदकल्पनानिरपेक्षेणैकस्वभावः ॥ १५४ ॥

अन्वयद्रव्यार्थिकेनैकस्याव्यनेकद्रव्यस्वभावत्वम् ॥ १५५ ॥

१. ‘स्यान्नयमित्तिं’ इत्यपि पाठः [दिल्ली प्रति नं० ३११०४] ।

टिष्ठण—अन्वयः—बालबृद्धावस्थायां अर्थं देवदत्तोऽयं देवदत्तः ।

सदभूतव्यवहारेण गुणगुण्यादिभिर्भेदस्वभावः ॥ १५६ ॥

भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगुण्यादिभिरभेदस्वभावः ॥ १५७ ॥

परमभावग्राहकेण भव्याभव्यपारिणामिकस्वभावः ॥ १५८ ॥

टिष्ठण—परमभावग्राहकेण=परमभावग्राहकनयेन ।

शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहकेण चेतनस्वभावो जीवस्य ॥ १५९ ॥

असदभूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः

॥ १६० ॥

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरपेतनस्वभावः ॥ १६१ ॥

जीवस्याप्यसदभूतव्यवहारेण चेतनस्वभावः ॥ १६२ ॥

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोमूर्त्स्वभावः ॥ १६३ ॥

जीवस्याप्यसदभूतव्यवहारेण मूर्त्स्वभावः ॥ १६४ ॥

परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त्स्वभावः
॥ १६५ ॥

टिष्ठण—इतरेषाम्=जीवघर्माघर्माकाशकालानाम् ।

पुद्गलस्योपचारादेवास्त्यमूर्त्तिवम् ॥ १६६ ॥^१

परमभावग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेशस्वभावत्वम्
॥ १६७ ॥

भेदकल्पनानिरपेक्षेणोतरेषां चाखण्डत्वादेकप्रदेशात्वम्
॥ १६८ ॥

टिष्ठण—इतरेषाम्=घर्माघर्माकाशजीवानां ।

१. यह सूत्र माणिकचन्द दि० जैन ग्रन्थमाला उथा नातेपुते से प्रकाशित प्रतियों के अनुसार है ।

भेदकल्पनासापेक्षेण चतुरणमिपि नानाप्रदेशस्वभावत्वम्

॥१६६॥

पुद्गलारोहपचारतो नानाप्रदेशत्वम्; न च कालारणोः
स्तिरधर्मस्वत्वाभावात् क्रृजुत्वाच्च ॥१७०॥

अरणीरभूतैकालस्यैकविशतिसभो भावो न स्यात् ॥१७१॥

परोक्षप्रमाणापेक्षयाऽसद्भूतव्यवहारेणाप्युपचारेणामूर्तत्वं
पुद्गलस्य ॥१७२॥^१

शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकेन स्वभावविभावत्वम् ॥१७३॥

टिष्ठण—विभावत्वम्=जीवपुद्गलयोः विभावत्वम् ।

शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभावः ॥१७४॥

अशुद्धद्रव्यार्थिकेनाशुद्धस्वभावः ॥१७५॥

असद्भूतव्यवहारेण उपचरितस्वभावः ॥१७६॥

द्रव्यारां तु यथा रूपं तत्त्वोकेऽपि व्यवस्थितम् ।

तथा ज्ञानेन संज्ञातं नयोऽपि हि तथाविधः ॥११॥

॥ इति नययोजनिका ॥

१. 'क्रृजुत्वाच्च' यह पाठ नयामन्दिर दिल्ली की प्रति नं० आ १४ (ड) तथा अजमेर व वैदवाड़ा मन्दिर दिल्ली की प्रतियों के अनुसार है ।

२. इस सूत्र में 'कालस्य' यह पाठ माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला तथा नातेपुते से प्रकाशित प्रतियों के अनुसार है ।

३. इस सूत्र का यह पाठ माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला तथा नातेपुते से प्रकाशित प्रतियों के अनुसार है । श्री क्षु० सिद्धसागर जी द्वारा संपादित नयचक्र में सूत्र १७१ व १७२ नहीं हैं ।

सकलवस्तु ग्राहकं प्रमाणं, प्रमीयते परिच्छिद्यते वस्तु-
तत्त्वं येन ज्ञानेन तत्प्रमाणम् ॥ १७७ ॥

टिप्पणी—परिच्छिद्यते=निश्चयते । तत्त्वं=स्वरूपं ।

तद्वेषा सविकल्पेतरभेदात् ॥ १७८ ॥

सविकल्पं मानसं तच्चतुर्विधम् मतिश्रुतावधिमनःपर्यय-
रूपम् ॥ १७९ ॥

निविकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानम् ॥ १८० ॥

॥ इति प्रमाण स्य व्युत्पत्तिः ॥

— * — * —

प्रमाणेन वस्तुसंगृहीतार्थकांशो नयः, श्रुतविकल्पो वा,
ज्ञातुरभिप्राप्तो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्याकृत्य एकस्मिन्स्व-
भावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः ॥ १८१ ॥

स द्वेषा सविकल्पनिर्विकल्पभेदात् ॥ १८२ ॥

॥ इति नयस्य व्युत्पत्तिः ॥

— * — * —

प्रमाणनययोर्निक्षेपणं आरोपणं निक्षेपः स नामस्थापना-
दिभेदेन चतुर्विधः ॥ १८३ ॥

टिप्पणी—नामस्थापनादिभेदेन=नामस्थापनाद्रव्यभावभेदेन ।
नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्यासरिति सूत्रणात् । अतदूरुणे वस्तुनि
संब्यवहारार्थं पुरुषाकाराण्डियुज्यमानं संज्ञाकर्म नभोच्यते । काष्ठ-
पुस्तचित्रकर्माङ्गनिक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना । गुणेः
द्रोष्यते गुणान् द्रोष्यतीति वा द्रव्यं । वर्तमानं तत्पर्ययोपलक्षितं
द्रव्यं भावः । तथा भावजीवः, स्थापनोजीवो, द्रव्य-जीवो, भाव-
जीवः । इति चतुर्वर्षा जीवशब्दार्थो नयस्थते । तथा चोक्तं गात्रः—

खामजिणा जिणणाम्, ठवणजिणा पुण जिणं दपडिमाशो ।
दब्वंजिणा जिणजीवा भावजिणा समवसरणत्वा ॥
॥ इति निषेपस्य व्युत्पत्तिः ॥

द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः ॥ १८४ ॥

शुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धद्रव्यार्थिकः ॥ १८५ ॥

अशुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति अशुद्धद्रव्यार्थिकः
॥ १८६ ॥

सामान्यगुणादयोऽन्वयरूपेण द्रव्यमिति व्यवस्थापयतीति
अन्वयद्रव्यार्थिकः ॥ १८७ ॥

टिष्पण—स्वभावयुक्तमपि द्रव्यं, गुणयुक्तमपि द्रव्यं इत्युच्यते
पर्याययुक्तमपि द्रव्यं इत्युच्यते अतः कारणात् द्रव्यत्वाज्जातिः कुत्रापि-
नायाति, तथापि स्वभावविभावत्वेन अस्तिस्वभावः नास्तिस्वभावः
नित्यस्वभावेत्यादि अनेकस्वभावान् एकद्रव्यरूपेण प्राप्य भिन्नभिन्न-
नाम व्यवस्थापयति इति अन्वयद्रव्यार्थिकः । [यह टिष्पण अजमेर
की प्रति पृष्ठ १३१ पर है]

सामान्यं = जीवत्वादि । गुणः = ज्ञानादयः । [सूत्र १ यह टिष्पण
अजमेर प्रति ४४० के अनुसार है]

स्वद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति स्वद्रव्यादिग्राहकः
॥ १८८ ॥

परद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परद्रव्यादिग्राहकः
॥ १८९ ॥

परमभावग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभावग्राहकः

॥ १६० ॥

॥ इति द्रव्यार्थिकस्य अनुत्पत्तिः ॥

—•—•—•—

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः ॥ १६१ ॥

अनादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यानादिनित्य-
पर्यायार्थिकः ॥ १६२ ॥

टिप्पणी—अनादिनित्य पर्यायार्थिको यथा पुढ़गलपर्यायो नित्यो
मेर्वादिः ।

सादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्य-
पर्यायार्थिकः ॥ १६३ ॥

टिप्पणी—सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा सिद्धजीवपर्यायो नित्यः ।

शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः

॥ १६४ ॥

अशुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति अशुद्धपर्यायार्थिकः

॥ १६५ ॥

॥ इति पर्यायार्थिकस्य अनुत्पत्तिः ॥

—•—

नैकं गच्छतीति निगमः, निगमोविकल्पस्तत्रभवो नैगमः

॥ १६६ ॥

अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णतीति संग्रहः ॥ १६७ ॥

टिप्पणी—वस्तुजातं = वस्तुसमूहं ।

संग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तुव्यवहृयत इति
व्यवहारः ॥१६८॥

ऋजु प्रांजलं सूक्ष्यतीति ऋजुसूक्ष्मः ॥१६९॥

टिष्ठण—प्रांजलं=अवक्रं । सूक्ष्यति=गृहाति ।

शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः
शब्दनयः ॥२००॥

परस्परेणाभिरूढाः समभिरूढाः । शब्दभेदेऽप्यर्थभेदोनास्ति ।
यथा शक इन्द्रः पुरन्दर इत्यादयः समभिरूढाः ॥२०१॥

टिष्ठण—रूद्र्या—प्रसिद्धः ।

एवं क्रियाप्रधानत्वेन भूयत इत्येवं भूतः ॥२०२॥

टिष्ठण—एवमित्युक्ते कोऽर्थः ? क्रियाप्रधानत्वेनेति विशेषणम् ।
आमे चृक्षे चिटपे शास्त्रायां तत्प्रदेशके काये कण्ठे चरौति शकुनिर्यथा
क्रमो नैगमादीनाम् । नैगमादिनयानामुदाहरणरूपेणेयं आर्या ।

शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ ॥२०३॥

अभेदानुपचारितया वस्तुनिश्चीयत इति निश्चयः ॥२०४॥

भेदोपचारितया वस्तुव्यवहृयत इति व्यवहारः ॥२०५॥

टिष्ठण—भेदायचारतया=भिन्नत्वस्योपचारतया ।

गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदात् भेदकः सद्भूतव्यवहारः ॥२०६॥

अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणामसद्भूत-
व्यवहारः ॥२०७॥

टिष्ठण—अन्यत्र=पुद्गलादौ । धर्मस्य=स्वभावस्य । अन्यत्र=
जीवादौ ।

असद्भूतव्यवहार एवोपचारः, उपचारादप्युपचारं यः
करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः ॥२०८॥

गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः स्वभावस्वभाविनोः कारक-
कारकिणोर्भेदं सद्भूतव्यवहारस्यार्थः ॥२०९॥

टिप्पणी—उष्णस्वभावः, अग्निःस्वभावी । सूतपिंडस्य शक्तिविशेषः
कारकः । सूतपिंडस्तु कारकी ।

१. द्रव्ये द्रव्योपचारः, २. पर्याये पर्यायोपचारः,
३. गुणे गुणोपचारः, ४. द्रव्ये गुणोपचारः, ५. द्रव्ये पर्यायो-
पचारः, ६. गुणे द्रव्योपचारः, ७. गुणे पर्यायोपचारः,
८. पर्याये द्रव्योपचारः, ९. पर्याये गुणोपचार इति नवविधो-
पचारः असद्भूतव्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः ॥२१०॥

टिप्पणी—नवोपचारनयानामसद्भूतव्यवहारार्थानां स्वरूपविवरणां
लिख्यते । १. पुद्गले जीवोपचार, स पुद्गल एकेन्द्रिय जीवः, ईदृशो
यदा प्रोक्ष्यते तदा विजातिद्रव्यपुद्गले विजातिद्रव्यजीवस्यारोपणं
क्रियते स असद्भूतव्यवहारो ज्ञेयः अयं द्रव्ये द्रव्योपचारः । २. अस्मि-
त्रस्य प्रतिक्रियं वर्तते, यदेहशमुक्ष्यते तदा स्वजातिपर्याय प्रतिक्रिये
स्वजातिपर्यायप्रतिक्रियतपुरुषादिपर्यायारोपणं विचीयते, स्फाटिके-
उन्यपर्यायप्रतिक्रियवत्, सोऽसद्भूतव्यवहारो ज्ञेयः, अयं पर्याये
पर्यायोपचारः । ३. मूर्त्तमतिज्ञानं यदेहशमुक्ष्यते तदा विजाति गुण-
ज्ञाने विजातिगुणमूर्त्तस्यारोपणं क्रियते, सोऽसद्भूतव्यवहारो ज्ञेयः,
अयं गुणे गुणोपचारः । ४. ज्ञेयो जीवोऽजीवः यदेहशमुक्ष्यते तदा
जीवेऽजीवे ज्ञानोपचारः प्रोक्तः । तत्र स्वजातिद्रव्ये विजातिद्रव्ये च
स्वजातिविजातिगुणस्यारोपणं सोऽसद्भूतव्यवहारो ज्ञेयः, अयं द्रव्ये
गुणोपचारः । ५. परमाणुः बहुप्रदेशी, यदेहशं प्रोक्ष्यते, तदा स्वजाति

द्रव्यपरमाणुपुद्गले स्वजातिविभावपर्यायो बहुप्रदेशी तस्यारोपणं सोऽसद्भूतव्यवहारो ह्येयः, अयं द्रव्ये पर्यायोपचारः । ६. इवेतः प्रासादः, यदेदशमुच्यते तदा स्वजातिगुणं इवेते स्वजातिद्रव्यप्रासादस्यारोपणं क्रियते सोऽसद्भूतव्यवहारो ह्येयः, अयं गुणे द्रव्योपचारः । ७. ज्ञाने परिणामति सति ज्ञानं पर्यायान् गृह्णाति, यदेदशमुच्यते, तदा विजातिगुणे विजातिपर्यायारोपणं, सोऽयमसद्भूत व्यवहारो बोध्यः, अयं गुणे पर्यायोपचारः । ८. स्थूलं स्कंधं प्रेक्ष्य पुद्गलद्रव्यमिदं यदेदशमुच्यते, तदा स्वजातिविभाव पर्याये स्वजाति द्रव्यारोपणं, सोऽसद्भूत व्यवहारो ह्येयः, अर्यं पर्याये द्रव्योपचारः । ९. अस्यदेहो रूपवान्, यदेदशं प्रोच्यते, तदा स्वजातिपर्याये स्वजातिगुणारोपणं विहितं, सोऽयमसद्भूतव्यवहारः, अत्र पर्याये गुणोपचारः । इति नवघोपचारनयो व्याख्यातः ।^१

पर्यायेनदोयोपचारः—यदा जहानर्याये ज्ञातमिति कथनं । द्रव्ये गुणोपचारः—स्वतः जीवस्य कथनं । द्रव्ये पर्यायोपचारः—नरनारकादि पर्यायः । गुणे द्रव्योपचारः—ज्ञानगुणविषे ह्येयकथनं ।^२

उपचारः पृथग् नयो नास्तीति न पृथक् कृतः ॥२११॥

मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते ॥२१२॥

टिप्पणी—सिद्धो माणवकः, इत्यत्र मुख्यत्वेन सिद्धाभावः उपचारः । अत्र कोपि प्रश्नं करोति—उपचारनयः कथं भिजः उत्तः, व्यवहारस्यैवभेदोऽयं तस्माद् व्यवहार एव वक्तव्यः ? तप्रोत्तरं दीयते—उपचारकथनेन विना कस्यैककार्यस्य सिद्धिर्न भवति । पुनरुपचारस्तप्रविघीयते । यत्र मुख्यवस्तुनोभावो भवेत् च प्रयोजनं निमित्तमुपलभ्योपचार प्रवर्तनं क्रियते । सोऽयुपचारः सम्बन्धं विना न भवति । स सम्बन्धो यथा परिणामपरिणामिनोः ज्ञानह्येययोः, चारित्रं

१. दूर्दी व अजमेर की प्रति से ।

२. नया मंदिर, दिल्ली की प्रति नं० आ १४ (ख) ।

चर्यावतोः, अन्ययोरपि चहुतरयो सम्बन्धः सत्यासत्यार्थो भवति । एवमुपचरितासद्भूतव्यवहार प्रवर्तनं संपादयते । ततः उपचरित नयो खिळः श्रोकः ।

सोऽपि सम्बन्धोऽविनाभावः, संश्लेषः सम्बन्धः, परिणाम-परिणामिसम्बन्धः, श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्धः, ज्ञानज्ञेयसम्बन्धः, चारित्रचर्यासम्बन्धश्चेत्यादि सत्यार्थः असत्यार्थः सत्यासत्यार्थ-श्चेत्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयसत्यार्थः ॥२१३॥

अध्यात्मनयों का कथन—

पुनरप्यव्यात्मभाषया नया उच्यन्ते ॥२१४॥

तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च ॥२१५॥

तत्र निश्चयनयोऽभेदविषयो, व्यवहारो भेदविषयः ॥२१६॥

टिप्पणी—अभेद विषयो ज्ञेयः यस्य सः निश्चयनयः । भेदेन ज्ञातु योग्यः सो व्यवहारनयः ।

तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च ॥२१७॥

तत्र निरूपाधिकगुणगुण्यभेद विषयकः शुद्धनिश्चयो यथा केवलज्ञानादयो जीव इति ॥२१८॥

सोपाधिक विषयोऽशुद्धनिश्चयो यथा मतिज्ञानादयो जीव इति ॥२१९॥

टिप्पणी—उपाधिना कर्मजनितविकारेण सह वर्तत इति सोपाधिः ।

व्यवहारो द्विविधः सद्भूतव्यवहारोऽसद्भूतव्यवहारश्च ॥२२०॥

तत्रैकवस्तुविषयः सद्भूतव्यवहारः ॥२२१॥

टिप्पणी—यथा वृक्ष एक एव तस्मान्नाः शास्त्राभिज्ञाः; परन्तु वृक्ष एव तथा सद्भूतव्यवहारो गुणगुणिनोर्भेद कथनम् ।

भिन्नवस्तुविषयोऽसद्भूतव्यवहारः ॥२२२॥

टिप्पणी—एकस्थाने यथा एडकास्तिष्ठन्ति परन्तु पृथक् पृथक् तथा असद्भूतव्यवहारः ।

तत्र सद्भूतव्यवहारो द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात् ॥२२३॥

तत्र सोपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयः उपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः ॥२२४॥

टिप्पणी—अशुद्धगुणगुणिनोः भेदकथनमनुपचरितसद्भूतव्यवहारः ।

निरूपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयोऽनुपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्यकेवलज्ञानादयो गुणाः ॥२२५॥

टिप्पणी—शुद्धगुणगुणिनोः भेदकथनमनुपचरितसद्भूतव्यवहारः ।

असद्भूतव्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात् ॥२२६॥

तत्र संश्लेषरहितवस्तुसम्बन्धविषय उपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देवदत्तस्य धनमिति ॥२२७॥

संश्लेषसहितवस्तुसम्बन्धविषयोऽनुपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य शरीरमिति ॥२२८॥

॥ इति सुखबोधार्थमालापपद्धतिः श्रीमद्देवसेनविरचिता परिसमाप्ता ॥

तेतीस व्यंजनाए सचावीसं स्वरा तद्वा भणिया ।

चत्तारिय थोगवाहा चउसझी मूल वरणाउ ॥

ॐ श्लो

श्री आचार्य-देवसेन-विरचित

आलापपद्धतिः

मंगलाचरण पूर्वक प्रथकार की प्रतिष्ठा—

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च ।

पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(वीरं जिनेश्वर) विशेष रूप से मोक्ष लक्ष्मी को देने वाले वीर जिनेश्वर को अर्थात् श्री महावीर भगवान् को (नत्वा) नमस्कार करके (अहं) मैं देवसेनाचार्य (गुणानां) द्रव्यगुणों के (तथैव च) और उसी प्रकार से (स्वभावानां) स्वभावों के तथा (पर्यायाणां) पर्यायों के भी (विस्तरं) विस्तार को (विशेषेण) विशेष रूप से (वक्ष्ये) कहता है। अर्थात् गुण, स्वभाव और पर्यायों के स्वरूप विस्तारपूर्वक वरण्ति करता है।

विशेषार्थ—यह मंगलरूप श्लोक देशार्थक होने से मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता इन छह अधिकारों का सकारण प्ररूपण किया जाता है। कहा भी है—

मंगल-रिमित्त-हेतु परिमाणं णामं तद्य कत्तारं ।

वागरियं छ पिण्डिपञ्चां वक्त्वाणुजं सत्थमाइरियो ॥

मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता इन छह अधिकारों का व्याख्यान करने के पश्चात् आचार्य शास्त्र का व्याख्यान करे।

मंग-शब्दोऽयमुद्दिष्टः पुरुषार्थस्याभिघायकः ।

तल्लातीत्युच्यते सदूभिर्मङ्गलं मङ्गलार्थिभिः ॥^१

पापं मलमिति प्रोक्तमुपचार-समाश्रयात् ।

तद्वि गालयतीत्युक्तं मङ्गलं परिडत्तेजनैः ॥^२

यह मंग शब्द पुण्यरूप अर्थ का प्रतिपादन करने वाला भाना गया है, उक्त पुण्य को जो लाता है उसे मंगल के इच्छुक सत्पुरुष 'मंगल' कहते हैं ।

उपचार से पाप को भी मङ्ग लहा है । इसलिए जो उसका गालन अथवा नाश करता है उसे भी पण्डितजन 'मंगल' कहते हैं ।

मंगल, पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, शुभ, कल्याण, भद्र और सौर्य इत्यादि मंगल के पर्यायवाची नाम हैं ।^३

आदौ मध्येऽवसाने च मङ्गलं भाषितं बुधैः ।

तज्जिनेन्द्रगुणास्तोत्रं तदविष्णुप्रसिद्धये ॥^४

विद्वान् पुरुषो ने, प्रासम्भ किये गये किसी भी कार्य के आदि, मध्य और अन्त में मंगल करने का विचार किया है । वह मंगल निर्विघ्न कार्यसिद्धि के लिये जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का कीर्तन करता ही है ।

यदि यह कहा जाय कि जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का कीर्तन तथा नमस्कार व्यवहारनय का विषय है और शुभ परिणाम रूप होने से मात्र पुण्यबन्ध का ही कारण है, अतः मंगल नहीं करना चाहिये— तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि गौतम स्वामी ने व्यवहारनय का आश्रय लेकर 'कृति' आदि चौबीस अनुयोगद्वारों के आदि में 'एमो जिणाराण' इत्यादि रूप से मंगल किया है । यदि कहा जाय कि व्यवहारनय असत्य है— सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि उसमें व्यवहार का अनुसरण करने वाले शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है । अतः जो व्यवहारनय बहुत जीवों का अनुयाय करने वाला है

१. षष्ठल पु० १ पृ० ३३ । २. षष्ठल पु० १ पृ० ३४ । ३. षष्ठल पु० १ पृ० ३१ । ४ षष्ठल पु० १ पृ० ४१ ।

उसी का आश्रय करना चाहिये ऐसा अपने मन में निश्चय करके गौतम स्वविर ने चौबीस अनुयोगद्वारों के आदि में मंगल किया है ।^१

यदि कहा जाय कि पुण्य-कर्म के बांधने के इच्छुक देशब्रतियों को मंगल करना युक्त है, किन्तु कर्मों के क्षय के इच्छुक मुनियों को मंगल करना युक्त नहीं है— तो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्य-बंध के कारणों के प्रति उन दोनों (मुनि व श्रावक) में कोई विशेषता नहीं है । अर्थात् पुण्य-बंध के कारण भूत कर्मों को जैसे देशब्रती श्रावक करता है वैसे ही मुनि भी करता है, मुनि के लिये उनका एकान्त निषेध नहीं है । यदि ऐसा न माना जाय तो जिस प्रकार मुनियों को मंगल के परित्याग के लिये कहा जा रहा है उसी प्रकार उनके (मुनि के) पुण्य-बंध के कारण सराग-संयम का भी निषेध होगा । यदि कहा जाय कि मुनियों के सराग-संयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है तो होओ, सो भी बात नहीं है, क्योंकि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होने से उनके मुक्तिगमन के अभाव का भी प्रसंग प्राप्त होता है ।^२

यदि कहा जाय कि सराग-संयम गुण-धेरी निर्जरा का कारण है, क्योंकि उससे बंध की अपेक्षा कर्मों की निर्जरा असंख्यातगुणी होती है, अतः सराग-संयम में मुनियों की प्रवृत्ति का होना योग्य है, किन्तु अरहंत को नमस्कार रूप मंगलाचरण करना योग्य नहीं है— तो ऐसा भी निश्चय नहीं करना चाहिये, क्योंकि अरहंत नमस्कार भी तत्कालीन बंध की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्म-निर्जरा का कारण है । इसलिये सरागसंयम के समान अरहंत-गुण-कीर्तन व नमस्कार में भी मुनियों की प्रवृत्ति प्राप्त होती है । कहा भी है—

अरहंतण्मोक्कारं भावेण य जो करेदि पयडमदी ।

सो सब्बदुक्खमोक्खं पावह अचिरेण कालेण ॥

१. जयघवल पृ० १ पृ० ८ । २. जयघवल पृ० १ पृ० ८ ।

३. जयघवल पृ० १ पृ० ६ ।

जो विवेकी जीव भावपूर्वक अरहंत को नमस्कार करता है वह अति-
शीघ्र समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है ।

यदि कोई कहे कि शुभ उपयोग से कर्मों का नाश होता है, यह बात
असिद्ध है— सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि शुभ और शुद्ध इन दोनों परि-
रामों से कर्मों का क्षय न माना जाय तो फिर कर्मों का क्षय हो नहीं सकता ।^१

निमित्त का कथन—

छद्ववणवपयत्थे सुयणाणाइच्च-दिप्पतेषण ।

पससंतु भव्वजीवा इय सुध-रविणो हवे उद्यो^२ ॥

भव्य जीव श्रुतज्ञान रूपी सूर्य के दीप्त तेज से छह द्रव्य और नव-
पदार्थों को भली मांति जानें, इस निमित्त से श्रुतज्ञान रूपी सूर्य का उदय
हुआ है अर्थात् आलापपद्धति नामा मन्त्र की रचना हुई है ।

हेतु (फल) का कथन:— अशान का विनाश, सम्यज्ञान की उत्पत्ति,
देव-मनुष्यादि के द्वारा निरन्तर पूजा का होना और प्रत्येक समय में असंख्यात-
गुणित श्रेष्ठीरूप से कर्मों की निर्जरा का होना साक्षात्प्रत्यक्ष फल है ।

जियमोहिंघणजलणो अणणाणतमंघ्यारदिग्णयरथो ।

कम्भमलकलुसपुसश्चो जिणवयणमिदोवही सुहयो^३ ॥

यह जिनागम जीव के भोहरूपी हन्तन को भस्म करने के लिये अग्नि के
समान है, अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है,
कर्म-मल अर्थात् द्रव्य-कर्म और कर्मकलुष अर्थात् भाव कर्म को मार्जन करने
वाला समुद्र के समान है और परम सुभग है ।

शब्दात्पदप्रसिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति ।

अर्थात्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः ॥^४

शब्द से पद की सिद्धि होती है, पद की सिद्धि से उपर्युक्त श्रेय का निर्णय

१. ज्यघवल पु० १ पृ० ६ । २. घवल पु० १ पृ० ५५ । ३. घवल
पु० १ पृ० ५६ । ४. घवल पु० १ पृ० १० ।

होता है। अर्थ-निर्णय से तत्त्वज्ञान और तत्त्वज्ञान से परमकल्याण होता है।

इस कथन से उन लोगों के मत का स्वांडन हो जाता है जो शास्त्र को ज्ञान में लिमिट न मानकर यह कहते हैं कि शास्त्र से ज्ञान नहीं होता है।

परिमाण की व्याख्या—अधर, पद अद्वितीयी अपेक्षा परिमाण संख्यात है और तद्वाच्य विषय की अपेक्षा परिमाण अनन्त है।

नाम—इस शास्त्र का नाम आलापपद्धति है।

कर्ता—अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ता के भेद से कर्ता दो प्रकार का है। श्री १००८ महात्मा और तीर्थंकर अर्थकर्ता हैं। श्री १०८ गौतम गणधर द्रव्यशुत के कर्ता हैं। श्री गौतम स्वामी, लोहाचार्य और जम्बू स्वामी ये तीन अनुबद्ध केवली हुए। इनके पश्चात् परिपाठी क्रम से पांच श्रुतकेवली हुए। इसके पश्चात् ज्ञान हीन होता गया, किन्तु वह ज्ञान परम्परा से श्री १०८ देवसेन आचार्य को प्राप्त हुआ, जिन्होंने इस आलापपद्धति शास्त्र की रचना की है। इससे उस शब्द का अङ्ग होता है जो सर्वेषां यह मानते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं हो सकता है।

इस प्रकार मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता का व्याख्यान समाप्त हआ।

आलापपद्धतिर्वचनरचनाऽनुक्रमेणा

नयचक्रस्थोपरि उच्यते ॥१॥

शब्दार्थ—(आलाप) शब्दोच्चारण अर्थात् बोलचालः (पद्धति) रीति या ढंग। (नयचक्र) सम्यग्ज्ञान के अवयव रूप नय ताका समूह।

सूत्रार्थ—वचनों की रचना के क्रम के अनुसार प्राकृतमय नयचक्र नामक शास्त्र के आधार पर से आलापपद्धति को (मैं देवसेनाचार्य) कहता है।

भयदि इस आलापपद्धति शास्त्र की रचना प्राकृत-नयचक्र ग्रंथ के आधार पर हुई है।

सा च किमर्थम् ? ॥२॥

सूत्रार्थ—इस आलापपद्धति ग्रंथ की रचना किस लिये की गई है ?

द्रव्यलक्षणसिद्धचर्थम् स्वभावसिद्धचर्थम् ॥३॥

सूत्रार्थ—द्रव्य के लक्षण की सिद्धि के लिये और पदार्थों के स्वभाव की सिद्धि के लिये इस ग्रन्थ की रचना हुई है।

द्रव्यारण कानि ? ॥४॥

सूत्रार्थ—द्रव्य कौन हैं ?

जीवपुद्गलधर्मधिमकाशकालद्रव्याग्नि ॥५॥

सूत्रार्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये वह द्रव्य हैं।

जितेशार्थ—जीव द्रव्य जप्तयोगमयी अथवा चैतन्यमयी है। वह संसारी और मुक्त दो प्रकार का है। संसारी जीव वस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के हैं।

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण जिसमें पाये जावें वह पुद्गल द्रव्य है।

जो जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों को छलने में सहकारी कारण हो, जिसके बिना जीव और पुद्गल की गति नहीं हो सकती, वह धर्म द्रव्य है। जैसे, मछलियों के छलने में जल सहकारी कारण होता है—जहाँ तक जल होता है वहाँ तक मछलियों का गमन होता है। मछलियों में गमन की शक्ति होते हुए भी जल के अभाव में मछलियों का गमन नहीं होता है अर्थात् जल से आगे मछलियाँ पृष्ठी पर गमन नहीं कर सकती हैं। इसीलिये धर्म द्रव्य का लक्षण गतिहेतुत्व कहा गया है। जहाँ तक धर्म द्रव्य है, वहाँ तक ही लोकाकाश है। लोक और अलोक के विभाजन में धर्मद्रव्य कारण है। कहा भी है—

लोयालोयविभेदं गमणं ठारं च जाण देहूहि ।

जइ णहि तारं देहः किह लोयालोयववहारं ॥१३५॥

[नयनक]

जो जीव और पुद्गल को ठहरने में सहकारी कारण हो वह अधर्म द्रव्य है। जैसे, पथिक को ठहरने में आया सहकारी कारण है। इसके प्रदेश भी धर्म द्रव्य के समान हैं।

जो समस्त द्रव्यों को अवगाहन देवे वह आकाश द्रव्य है। क्षेत्र की अपेक्षा आकाश द्रव्य सब द्रव्यों से बड़ा है, सर्व-व्यापी है, इसलिए यह समस्त द्रव्यों को अवकाश देने में समर्थ है। अन्य द्रव्य भी परस्पर अवगाहन देते हैं, किन्तु सर्व-व्यापी नहीं होने से वे समस्त द्रव्यों को अवगाहन नहीं दे सकते, इसलिये अवगाहन-हेतुत्व आकाश द्रव्य का लक्षण कहा गया है।^१ वर्म-द्रव्य के अभाव के कारण अलोकाकाश में कोई द्रव्य नहीं जाता है। इसलिये वह किसी को अवगाहन नहीं देता है। फिर भी उसमें अवगाहन-दान की शक्ति है। इस प्रकार अलोकाकाश में भी अवगाहन-हेतुत्व लक्षण पटित हो जाता है। इससे, कार्य होने पर ही निमित्त कारण कहलाता है, इस सिद्धान्त का सम्भव हो जाता है। निमित्त अपने कारणपने की शक्ति से निमित्त कहलाता है।

जो द्रव्यों के वर्तन में सहकारी कारण हो वह कालद्रव्य है। काल के अभाव में पदार्थों का परिणामन नहीं होगा। परिणामन न हो तो द्रव्य व पर्याय भी न होगी। सर्व घून्य का प्रसंग आयेगा।^२

द्रव्य का लक्षण—

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥६॥

सूत्रार्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है।

उत्पादव्ययध्रीव्ययुक्तं सत् ॥७॥

सूत्रार्थ—जो उत्पाद, व्यय और ध्रीव्य से युक्त है वह सत् है।

विशेषार्थ—अन्तरंग और बहिरंग निमित्त के बश से जो नवीन अवस्था उत्पन्न होती है उसे उत्पाद कहते हैं। जैसे, मिट्टी के पिंड की घट पर्याय। पूर्व अवस्था के नाश को व्यय कहते हैं। जैसे, घट की उत्पत्ति होने पर पिण्ड आकृति का व्यय। अनादिकालीन पारिणामिक स्वभाव है, उसका व्यय और

१. सर्वर्थसिद्धि श० ५। २. ‘कालाभावे न भावानां परिणामस्त-दंतरात्। न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वभावः प्रसञ्चयते ॥’ (नियमसार गाथा ३२ की टीका में उद्धृत)। ३. तत्त्वार्थ सूत्र श० ५ सूत्र २६। ४. तत्त्वार्थ सूत्र श० ५ सूत्र ३०।

उत्पाद नहीं होता किन्तु 'श्रूतरूप से' स्थिर रहता है इसलिये उसे पूछ कहते हैं। जैसे, पिण्ड और घट अवस्था में मिट्टी का अन्वय बना रहता है। (सर्वार्थसिद्धि) ।

॥ इति द्रव्याधिकारः ॥

गुणाधिकार

गुणों का कथन प्रारम्भ होता है।
लक्षणानि कानि ? ॥८॥

सूत्रार्थ—द्रव्यों के लक्षण (गुण) कील-कीन से हैं?

विशेषार्थ—लक्षण, शक्ति, धौन, वस्त्राद, गुण और तिषेस ये सब एक 'गुण रूप' अर्थ के बाचक हैं।^१

"व्यतिकीर्णं वस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणम्" । अर्थात्—मिली हुई अनेक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु को पृथक् करने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं।

अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वं, चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वममूर्तत्वं, द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः ॥९॥

सूत्रार्थ—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्वममूर्तत्व ये द्रव्यों के दश सामान्य गुण हैं।

विशेषार्थ—प्राकृत-वय चक्र में भी कहा है—

दृढवाणं सहभूदा सामरणविसेसदो गुणा णेया ।

सञ्चेसि सामरणा दह भणिया सोनस विसेसा ॥११॥

अतिथत्तं वथ्युत्तं दव्यत्तं पमेयत्तं अगुरुलघुत्तं ।

देसत्तं चेदणिदरं मुत्तममुत्तं वियाणेह ॥१२॥

१. शक्तिलक्षणविशेषो धर्मो रूपं गुणा-स्वभावस्त्र । प्रकृतिः शीलं चाकृति-रेकार्थं वाचकाः शब्दः ॥ २. न्यायदीपिका ।

जो सदैव द्रव्यों के साथ रहें अर्थात् जो सहभू हों उन्हें गुण कहते हैं। अथवा, एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से पृथक् करे, उसे विशेष गुण कहते हैं।

(सूत्र ६२-६३)

उन गुणों के सामान्य तथा विशेष इस प्रकार दो भेद हैं। सामान्य गुण दश और विशेष गुण सोलह होते हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये दस सामान्य गुण जानने चाहियें। यद्यपि ग्रन्थकार स्वयं इन गुणों का स्वरूप आगे सूत्र ६४-१०४ में कहेंगे तथापि पाठकों की सुविद्धा के लिये उनका स्वरूप यहाँ पर भी दिया जाता है।

जिस द्रव्य को जो स्वभाव प्राप्त है, उस स्वभाव से च्युत न होना अस्तित्व गुण है।

(सूत्र १०६)

सामान्य-विशेषात्मक वस्तु होती है। उस वस्तु का जो भाव वह वस्तुत्व है।

(सूत्र ६५)

जो अपने प्रदेश-समूह के द्वारा अस्तित्वने से अपने स्वभाव के विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेण, हो चुका है, वह द्रव्य है। उस द्रव्य का जो भाव, वह द्रव्यत्व है। अथवा, वस्तु के सामान्यपने को द्रव्यत्व कहते हैं, क्योंकि वह सामान्य ही विशेषों को प्राप्त होता है।

(सूत्र ६६)

जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी भी प्रमाणण (ज्ञान) का विषय अवश्य होता है वह प्रमेयत्व गुण है।

(सूत्र ६८)

जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, प्रति समय परिणामन-कील है और आगम प्रमाण से जाना जाता है, वह अगुरुलघु गुण है। (सूत्र ६६)

संसार अवस्था में कर्म-परतन्त्र जीव में स्वाभाविक अगुरुलघु गुण का अभाव है।

१. 'अगुरुवलहृमतं एष जीवस्स साहावियमत्य चे ण, संसारावत्या ए कर्मपरतांतम्यं तस्साभाजा।' (धर्म पु० ६ पृ० ५८)

किन्तु कर्मोदय कृत अगुरुलघु से अत्यन्त निष्ठृत हो जाने पर स्वाभाविक अगुरुलघु गुण का आविभावि हो जाता है ।^१

जिस गुण के निमित्त से द्रव्य क्षेत्रपने को प्राप्त हो वह प्रदेशत्व गुण है । एक आविभागी पुद्गल परमाणु के द्वारा व्याप्त क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं ।

(सूत्र १००)

अनुभूति का नाम चेतना है । जिस शक्ति के निमित्त से स्व पर की अनुभूति अर्थात् प्रतिभासकता होती है वह चेतना गुण है । (सूत्र १०१)

जड़पने को अचेतन कहते हैं, अनुभवम् सो अचेतनता है । चेतना का अभाव सो अचेतनत्व है । (सूत्र १०२)

रूपादिमने को अर्थात् स्पर्श-रस-गन्ध और वर्णपने को मूर्त्तत्व कहते हैं ।

(सूत्र १०३)

स्पर्श-रस-गन्ध-वरणं इनसे रहित-पना अमूर्तत्व है । (सूत्र १०४)

ये गुण एक से अधिक द्रव्यों में पाये जाते हैं इसलिये ये सामान्य गुण हैं । चेतनत्व भी सर्व जीवों में पाया जाता है इसलिये सामान्य गुण है । मूर्त्तत्व भी सर्व पुद्गलों में पाया जाता है इसलिये सामान्य गुण है । जीव के अतिरिक्त अन्य पांच द्रव्य अचेतन हैं और जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य अमूर्तिक हैं, इसलिये अचेतनत्व और अमूर्तत्व भी सामान्य (साधारण) गुण हैं ।

प्रश्न—चेतनत्व और मूर्त्तत्व सामान्य गुण कैसे हैं ?

उत्तर—जीव और पुद्गल यदि एक एक होते तो शंका ठीक थी । किन्तु जीव भी अनन्त हैं और पुद्गल भी अनन्त हैं । अतः स्वजाति की अपेक्षा चेतनत्व व मूर्त्तत्व सामान्य गुण हैं ।

१. 'अनादिकर्मनोकर्मसम्बन्धानां कर्मोदयकृतमगुरुलघुत्वम्, तदत्यन्तविनिष्ठृतौ तु स्वाभाविकमाविभेदति ।' (रा० वा० ८/११)

२. चेदरणमचेदरणा तद्वा मुक्तममुक्तावि चरित्वे श्रिया ।

सामप्णे सजाईरणं ते वि विसेसा विजाईरणं ॥१६॥ [प्राकृत नयचक्र]

प्रत्येकमष्टौ सर्वेषाम् ॥१०॥

सूत्रार्थ—इन दस सामान्य गुणों में से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण हैं और दो-दो गुण नहीं हैं।

जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व और अमूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, माकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन चार द्रव्यों में चेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। इस प्रकार दो-दो गुणों को छोड़कर प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण होते हैं।

जीव में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रभेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

पुद्गल द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रभेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, माकाशद्रव्य, कालद्रव्य इन चार द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रभेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

अब द्रव्यों के विशेष गुणों को बतलाते हैं।

**ज्ञानदर्शनसुखदीर्घाणि स्पर्शरसगन्धवरणीः गतिहेतुत्वं
स्थितिहेतुत्वमवगाहहेतुत्वं वर्तनाहेतुत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं
मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां षोडश विशेषगुणाः ॥११॥**

सूत्रार्थ—ज्ञान, दर्शन, सुख, दीर्घ, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व ये द्रव्यों के सोलह विशेष गुण हैं।

विशेषार्थ—जिस शक्ति के द्वारा अत्मा पदार्थों को साकार जानता है, सो ज्ञान है।

भूतार्थ का प्रकाश करने वाला ज्ञान होता है। अथवा सद्भाव के निश्चय करने वाले धर्म को ज्ञान कहते हैं।¹

१. 'भूतार्थप्रकाशकं ज्ञानम् । अथवा सद्भावविनिश्चयोपलम्भकं ज्ञानम् ।' (अथवा पु० १ पृ० १४२ व १४३)

जाणाइ तिकालसहिए दब्बगुणे पञ्जर य वहूभैए ।
पच्चकखं च परेकखं अणेण गाणे ति शं वेंति ॥

॥२६६॥ [गो० जी०]

जिसके द्वारा जीव त्रिकाल-विषयक समस्त द्रव्य, उनके गुण और उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जाने सो ज्ञान है । वहि मुख चित्र प्रकाश को ज्ञान माना है ।^१

अन्तमुख चित्र (चैतन्य) दर्शन है ।^२ जो आलोकन करता है, वह आलोक था आत्मा है तथा वर्तन अर्थात् व्यापार सो वृत्ति है । आलोकन अर्थात् आत्मा की वृत्ति (व्यापार) सो आलोकन-वृत्ति या स्वसंवेदन है और वही दर्शन है । यहाँ पर 'दर्शन' शब्द से लक्ष्य का निर्देश किया है । अथवा प्रकाश-वृत्ति दर्शन है । 'प्रकाश' ज्ञान है । उस प्रकाश (ज्ञान) के लिए जो आत्मा का व्यापार सो प्रकाश-वृत्ति है और वही दर्शन है । विषय और विषयी के योग्य देश में होने की पूर्वविस्था दर्शन है ।^३

ॐ सामरणं ग्रहणं भावाणं गोव कट्टु आयारं ।

अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिदि भरणादे समये ॥४५२॥ गो.जी.

सामान्य विशेषात्मक वाह्य पदार्थों को अलग-अलग भेदरूप से ग्रहण नहीं करके जो सामान्य ग्रहण (आत्मग्रहण) अर्थात् स्वरूप (निजरूप) मात्र का अवभासन होता है उसको परमागम में दर्शन कहा है । अथवा, सामान्य अर्थात् आत्मा के ग्रहण को दर्शन कहते हैं ।^४

१. घबल पु० १ पृ० १४५ । २. घबल पु० १ पृ० १४५ । ३ 'आलोकत इत्यालोकनमात्मा, वर्तनं वृत्तिः, आलोकनस्य वृत्तिरालोकनवृत्तिः स्वसंवेदनं, तद्दर्शनमिति लक्ष्यनिर्देशः । प्रकाशवृत्तिर्वा दर्शनम् । प्रकाशो ज्ञानम्, तदर्थमात्मनो वृत्तिः प्रकाशवृत्तिस्तद्दर्शनम् । विषयविषयिसंपातात् पूर्वविस्था दर्शनमित्यर्थः ।' (घबल पु० १ पृ० १४८) । ४. "भावानां सामान्यविशेषात्मकवाह्यपदार्थानां भाकारं भेदग्रहणभकृत्वा यत् सामान्यग्रहणं स्वरूप-मात्रावभासनं तद्दर्शनमिति परमागमे भव्यते ॥" (जी० प्र० टी०); सामान्यग्रहणमात्मग्रहणं तद्दर्शनम् । (व० द० स०) ।

जो स्वाभाविक भावों के अवरण के दिनाश होने से आत्मीक शान्तरण अथवा आनन्द उत्पन्न होता है वह सुख है।^१ सुख का लक्षण अनाकुशलता है।^२ स्वभाव प्रतिष्ठात का अभाव सो सुख है।^३ मोहनीय कर्म के उदय से इच्छारूप आकुलता उत्पन्न होती है सो ही दुःख है। शोहनीय कर्म के नाश होने से आकुलता का भी अभाव हो जाता है और आत्मीक परम-शान्त उत्पन्न होता है, वही सूख है।^४

बीर्य का ग्रर्य शक्ति है।^५ बीर्य, बल और शुक्र ये सब एकार्थक शब्द है।^६ जीव की शक्ति को बीर्य कहते हैं। आत्मा में अनन्त बीर्य है किन्तु अतादि कात्र से उस अनन्त शक्ति को बीर्यन्तिराय कर्मे ने घात रखा है। उसके कथोगशम से कुछ बीर्य प्रकट होता है।

जो स्पर्श किया जाता है वह स्पर्श है और जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस है। जो सूंधा जाता है वह गन्ध है। जो देखा जाता है वह चर्ण है।^७ कोमल, कठोर, हल्का, भारी, ठंडा, गर्म, स्निग्ध, रुक्ष के भेद से स्पर्श आठ प्रकार का है। तीता, कड़ग्गा, खट्टा, मीठा, और कसौला के भेद से रस पाँच प्रकार का है। सुगन्ध और दुर्गन्ध के भेद से दो प्रकार की गन्ध है। काला, नीला, पीला, सफेद और लाल के भेद से चर्ण पाँच प्रकार का है। ये स्पर्श आदि के मूल भेद हैं। वैसे प्रत्येक के संस्थात असंस्थात और अनन्त भेद होते हैं।^८

जीव और पुद्गलों को गमन में सहकारी होना गति-हेतुत्व है।

जीव और पुद्गलों को ठहरने में सहकारी होना स्थिति-हेतुत्व है।

१. 'स्वभावप्रतिकूल्याभावहेतुकं सौख्यम्।' (पञ्चास्तिकाय गा० १६३ टीका)।
२. 'अनाकुलर्वैकलक्षणं सौख्यम्।' (प्रबन्धमसार गा० ५६ टीका)।
३. 'स्वभावप्रतिष्ठाताभाव-हेतुकं हि सौख्यम्।' (प्रबन्धमसार गा० ६१ टीका)
४. 'सौख्यं च मोहक्षयात्।' (पद्मनन्दि ना८; तत्त्वार्थ वृत्ति ६।४४)
५. 'बीर्यः शक्तिरित्यर्थः।' (घबल पु० १३ पृ० ३६०)।
६. 'बीर्यं बलं शुक्रमित्येकोर्थः।' (घबल पु० ६ पृ० ७८)।
७. सर्वार्थसिद्धि २/१०।
८. सर्वार्थसिद्धि ५/२३।

समस्त द्रव्यों को अवकाश देना अवगाहन-हेतुत्व है ।

समस्त द्रव्यों के वर्तन में सहकारी होना वर्तना-हेतुत्व है ।

चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व का स्वरूप सूत्र ६ की टीका में कहा जा चुका है । चेतनत्व सर्वे जीवों में पाया जाता है इसलिये इसको सामान्य गुणों में कहा है । किन्तु पुद्गल आदि द्रव्यों में नहीं पाया जाता इसलिये इसे विशेष गुणों में कहा है । अचेतनत्व पुद्गल आदि पौष्टि द्रव्यों में पाया जाता है इसलिये सामान्य गुणों में कहा है, किन्तु जीव द्रव्य में नहीं पाया जाता इसलिये विशेष मुण्डों में भी कहा है । मूर्तत्व सर्वे पुद्गल द्रव्यों में पाया जाया है इसलिये सूत्र ६ में सामान्य गुणों में कहा है, किन्तु जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में नहीं पाया जाता है इसलिये विशेष गुण कहा है : इसी प्रकार अमूर्तत्व गुण जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन द्रव्यों में पाया जाता है इसलिये सूत्र ६ में सामान्य गुण कहा है किन्तु पुद्गल द्रव्य में नहीं पाया जाता इसलिए विशेष गुण कहा है ।^१ (देखो सूत्र १४) । प्राकृत नयचक्र में इन विशेष गुणों का कथन निम्न प्रकार है :—

णाणं दंसणं सुह सत्ति रूबरसगंधफास गमणाठिरी ।

बट्टणगाहणहेउं मुत्तममुत्तं सु चेदणिदरं च ॥१३॥

अट्ठचदु णाणदंसणभेया सत्ति सुहस्त इह दो दो ।

बरणरस पञ्च गंधा दो फासा अदु णायव्वा ॥१४॥

आठ प्रकार का ज्ञान—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, भ्रवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, केवलज्ञान, कुभितिज्ञान, कुमृतज्ञान, विभंगज्ञान । चार प्रकार का दर्शन—चक्रुद्दशन, अचक्षुद्दशन, भ्रवधिदर्शन, केवलदर्शन ।

‘क्षायोपशमिकी शक्तिः क्षायिकी चेति शक्तेद्वौ भेदौ ।’

१. चेदणमचेदणा तद्व मुत्तममुत्तावि चरित्र ऐ भणिष्य । सामण्ड उच्चारित्वे दि विसेसा विजाईरण ।१६। [प्राकृत नयचक्र पृ० २५]

२. प्राकृत नयचक्र पृ० २४ ।

मर्याद्त्—शक्ति के दो भेद हैं—काथोपशमिकी शक्ति और कायिकी शक्ति ।

सुख दो प्रकार का—इन्द्रिय अनित और अतीन्द्रिय सुख ।^१

जीव और पुद्गल में पाये जाने वाले विशेष गुणों की संख्या :—

प्रत्येकं जीवं पुद्गलयोः षट् ॥१२॥

सूत्रार्थ—सोलह प्रकार के विशेष गुणों में से जीव और पुद्गल में छः-छः विशेष गुण पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—जीव द्रव्य में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये छः विशेष गुण पाये जाते हैं ।

पुद्गल द्रव्य में स्मृति, रस, गंध, वरण, मूर्तत्व, और अचेतनत्व ये छः गुण पाये जाते हैं ।

षष्ठीदिक चार द्रव्यों में पाये जाने वाले विशेष गुणों की संख्या :—

इतरेषां (षष्ठीधिमकाशकालानां) प्रत्येकं त्रयो गुणाः ॥१३॥

सूत्रार्थ—षष्ठीद्रव्य, अषष्ठीद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन चारों द्रव्यों में तीन तीन विशेष गुण पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—षष्ठीद्रव्य में गतिहेतुत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं ।

प्रथमं द्रव्य में स्थितिहेतुत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं ।

आकाश द्रव्य में अवगाहनहेतुत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं ।

कालद्रव्य में वर्तनाहेतुत्व, अमूर्तत्व तथा अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण हैं ।

आगे अचेतनत्व आदि चार गुणों को सामान्य गुणों तथा विशेष गुणों में कहा है, इस संक्षेप का परिहार करते हैं :—

१. 'इन्द्रियबमतीन्द्रियं चेति सुखस्य द्वौ भेदो ।' [पा० नयचक पृ० २४]

**अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्यगुणा
विजात्यपेक्षया त एव विशेषगुणाः ॥ १४॥**

सूत्रार्थ—अन्त के देहतत्त्व, अन्तेतत्त्व, दूर्तत्व और अन्तर्बंध ये चार गुण स्वजाति की अपेक्षा से सामान्य गुण तथा विजाति की अपेक्षा से विशेष गुण कहे जाते हैं।

सूत्र ६, १० व ११ की टीका में इसका विशेष कथन है।

॥ इस प्रकार गुणाधिकार समाप्त हुआ ॥

—*—*—*

पर्याय अधिकार

पर्याय का लक्षण और उसके भेद—

गुणविकाराः पर्यायास्ते द्वेष्ठा अर्थव्यञ्जनपर्यायभेदात् ॥ १५॥

सूत्रार्थ—गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं। वे पर्यायें दो प्रकार की हैं—(१) अर्थं पर्याय, (२) व्यञ्जन पर्याय।

विशेषार्थ—परिणाम अर्थात् परिणामन को विकार कहते हैं। कहा भी है—

‘परिणाम अह विचारं ताणं तं पञ्जयं दुविहं ॥’

[नवचक्र गाथा १७]

अर्थात् परिणाम या विकार को पर्याय कहते हैं और वे पर्यायें दो प्रकार की हैं।

**‘गुणद्वारेणान्वयरूपायाः एकत्वप्रतिपत्तेनिष्ठं वर्त कारणभूतं गुण-
पर्यायः ॥’** [पंचास्तिकाय गाथा १६ टीका]

अर्थात् गुणों के द्वारा अन्वयरूप एकता के ज्ञान का कारण जो पर्याय हो, वह गुणपर्याय है। जैसे, वर्णगुण की हरी पीली मादि पर्याय होती हैं, हरएक पर्याय में वर्णगुण की एकता का ज्ञान है, इससे यह गुण पर्याय है।

अर्थं पर्याय सूक्ष्म होती है, क्षण क्षण में नाश होने वाली तथा बचनों के अगोचर होती है।

व्यंजन पर्याय स्थूल होती है, चिरकाल तक रहती है, वचन के गोचर तथा छ्वायस्यों की हृष्टि का विषय भी होती है।

सुहमा अवायविसया खण्डिणो अत्यपञ्जया दिष्टा ।

व्यंजणपञ्जाया पुण थूला गिरगोचरा चिरविवत्था ॥२५॥

[वसुनन्दि श्रावकाचार]

अर्थ—पर्याय के दो भेद हैं—अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय। इनमें अर्थपर्याय सूक्ष्म है, ज्ञान का विषय है, शब्दों से नहीं कही जा सकती और क्षण क्षण में नाश होती रहती है। किन्तु व्यंजन पर्याय स्थूल है, शब्दगोचर है अथात् शब्दों द्वारा कही जा सकती है और विद्यायी है।

'तत्रार्थपर्यायाः सूक्ष्माः क्षणक्षयिणस्तथाऽवाग्मोचरा विषया भवन्ति । व्यंजनपर्यायाः पुनः स्थूलादिचरकालस्थायिनो वाग्मोचरा-इष्टाद्वास्थृष्टिचिष्याद्वच भवन्ति । समयवर्तिनोऽर्थपर्याया भवत्यते चिरकालस्थायिनो व्यंजनपर्याया भवत्यते इति कालकृतभेदः ।'

[पंचास्तिकाम गाया १६ टीका]

अर्थ—अर्थ पर्याय सूक्ष्म है, प्रतिक्षण नाश होने वाली है तथा वचन के अगोचर है। और व्यंजन पर्याय स्थूल होती है, चिरकाल तक रहने वाली, वचनगोचर व श्रल्पज्ञानी को हृष्टिगोचर भी होती है। अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्यायों में कालकृत भेद है क्योंकि समयवर्ती अर्थ पर्याय है और चिरकाल स्थायी व्यंजन पर्याय है।

ज्ञानार्णव में भी कहा है—

भूर्तो व्यंजनपर्यायो वाग्म्योऽनश्वरः स्थिरः ।

सूक्ष्मः प्रतिक्षणविष्वंसी पर्यायश्वार्थसंश्लिकः ॥६/४५॥

अर्थ—व्यंजनपर्याय मूर्तिक है, वचन के गोचर है, अनश्वर है, स्थिर है और अर्थपर्याय सूक्ष्म है, अणविष्वंसी है।

त्रिष्टुप-पर्यायों और गुण-पर्यायों दोनों ही अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय के भेद से दो-दो प्रकार की होती हैं। इन पर्यायों का कथन सूत्रकार स्वयं करेंगे।

अर्थ-पर्याय के भेद प्रतिभेदों का कथन किया जाता है—

अर्थपर्यायास्ते द्वेष्ठा स्वभावविभावपर्यायभेदात् ॥१६॥

सूत्रार्थ—अर्थपर्याय दो प्रकार की है—(१) स्वभावार्थपर्याय (२) विभावार्थपर्याय ।

विशेषार्थ—स्वभावपर्याय सर्वद्रव्यों में होती है किन्तु विभावपर्याय जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में ही होती है क्योंकि ये दो द्रव्य ही वंश अवस्था को प्राप्त होते हैं ।

सद्भावं सु विहावं दत्त्वाणं पञ्जारं जिगुरुद्धि ।

सद्वेसि च सहावं विभावं जीवपुद्गलाणं च ॥१८॥

दत्त्वगुणाण सहावा पञ्जारं तद्व विहावदो खेयं ।

जीवे जीवसहावा ते चि विहावा हु कर्मकदा ॥१९॥

पुगलदृच्छे जो पुण विभावो कालपेरिओ होदि ।

सो रिद्धरुक्खसहिदो चंचो खलु होइ तस्तेव ॥२०॥

[नयचक्र]

अर्थात्—जिनेन्द्र भगवान ने द्रव्यों की स्वभावपर्याय और विभावपर्याय कही हैं। सर्वद्रव्यों में स्वभाव पर्याय होती हैं, किन्तु जीव और पुद्गलों में विभावपर्यायें भी होती हैं। द्रव्य और गुणों में स्वभावपर्याय भी होती हैं और विभावपर्याय भी होती हैं। जीव में जीवत्वरूप स्वभावपर्यायें होती हैं और कर्मकृत विभावपर्यायें होती हैं। पुद्गल में विभावपर्यायें कालप्रेरित होती हैं जो स्तिष्ठ व रूक्षगुण के कारण वंशरूप होती हैं।

‘कर्मोपाधिविविज्ञय पञ्जाया ते सहावमिदि भणिदा ॥’

[नियमसार गाया १५]

अर्थात्—जो पर्यायें कर्मोपाधि से रहित हैं वे स्वभावपर्यायें हैं।

अर्थपर्याय का कथन—

अगुरुलघुविकाराः स्वभावार्थपर्यायास्ते द्वादशधा षड्वृद्धि-रूपाः षड्ढानिरूपाः; अनन्तभागवृद्धिः असंख्यातभागवृद्धिः;

संख्यातभागवृद्धिः, संख्यातगुणवृद्धिः, असंख्यातगुणवृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिः, इति षड्वृद्धिः; तथा अनन्तभागहानिः, असंख्यातभागहानिः, संख्यातभागहानिः, संख्यातगुणहानिः, असंख्यातगुणहानिः, अनन्तगुणहानिः, इति षड्हानिः। एवं षट्वृद्धिष्ठद्धानिरूपा ज्ञेयाः ॥१७॥

सूत्रार्थ—अगुरुलघुगुण का परिणामन स्वाभाविक अर्थपर्यायें हैं । वे पर्याय बारह प्रकार की हैं, छः वृद्धिरूप और छः हानिरूप । अनन्तभाग वृद्धि, असंख्यातभाग वृद्धि, संख्यातभाग वृद्धि, संख्यातगुण वृद्धि, असंख्यातगुण वृद्धि, अनन्तगुण वृद्धि, ये छः वृद्धिरूप पर्यायें हैं । अनन्तभाग हानि, असंख्यातभाग हानि, संख्यातभाग हानि, संख्यातगुण हानि, असंख्यातगुण हानि, अनन्तगुण हानि, ये छः हानिरूप पर्यायें हैं । इस प्रकार छः वृद्धिरूप और छः हानिरूप पर्यायें जाननी चाहियें ।

विशेषार्थ—प्रत्येक द्रव्य में आगमप्रभाण से सिद्ध अनन्त अविभाग-प्रतिच्छेद वाला अगुरुलघुगुण स्वीकार किया गया है । जिसका छः-स्थान-पतित वृद्धि और हानि के द्वारा वर्तन होता रहता है । अतः इन घर्मादि द्रव्यों का उत्पाद-व्यय स्वभाव से होता रहता है ।^१

प्राकृत नयचक्र में स्वभावपर्याय का कथन निम्न प्रकार किया गया है—

अगुरुलहुगा अरांता, समयं समयं समुच्भवा जे वि ।

दब्बाणं ते भण्णया, सहावगुणपञ्जया जाण ॥२३॥

अर्थात् अगुरुलघुगुण अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद वाला है, उस अगुरुलघु-गुण में प्रति समय पर्यायें उत्पन्न होती रहती हैं । अगुरुलघुगुण की पर्यायों

१. “स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्यादभ्युपगम्य-मानानां षट्स्थानपतितया वृद्धया हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो अप्यश्च ।” (सर्वार्थसिद्धि ५/७)

को शुद्ध द्रव्यों की स्वभाव पर्यायें जाननी चाहिये ।

प्रत्येक शुद्ध द्रव्य में अनन्त गुण होते हैं । उन अनन्त गुणों में एक अगुरुलघुगुण भी होता है जिसमें अनन्त अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं । उस अगुरुलघुगुण में ही नियत क्रम से अविभाग-प्रतिच्छेदों की ६ प्रकार की वृद्धि और ६ प्रकार की दृष्टि रूप इति राम अस्तित्व होता रहता है । यह प्रति-समय का परिणामन ही शुद्ध द्रव्यों की स्वभाव पर्यायें हैं ।

श्री पञ्चास्तिकाय गाथा १६ की टीका में श्री १०८ जयसेन आचार्य ने भी कहा है—

‘स्वभावगुणपर्याया अगुरुलघुकगुणषट्हानिवृद्धिरूपाः सर्वद्रव्य-साधारणाः ।’

‘अगुरुलघुगुण षट्हानि षट्हद्विंदि रूप सर्व द्रव्यों में साधारण स्वभाव गुण पर्याय है ।’ इस ही ग्रंथ में अगुरुलघुगुण का स्वरूप निम्न प्रकार बतलाया गया है—

सूक्ष्माद्वागोचरः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युपगम्या
अगुरुलघुगुणाः । सूक्ष्म जिनोदितंतस्वं, हेतुभिन्नैव हन्यते । आशासद्धं
तु तदप्राप्य, नान्यथावादिनो जिनाः ॥

अर्थ—जो सूक्ष्म, वर्तन के अगोचर और प्रति समय में परिणामनशील अगुरुलघु नाम के गुण हैं, उन्हें आगमप्रमाण से स्वीकार करना चाहिये । जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए जो सूक्ष्म तत्त्व हैं वे हेतुओं अर्थात् तर्क के द्वारा खण्डित नहीं हो सकते इसलिये जो सूक्ष्म तत्त्व हैं वे आशा (आगम) से सिद्ध हैं, अतः उनको प्रहण करना चाहिये, क्योंकि जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादी नहीं होते हैं । अर्थात् जिस प्रकार से कथन किया है उसी प्रकार से उन्होंने जाना है । अतः वैसा ही पदार्थ है ।

अत्यधि अगुरुलघुगुण सामान्य गुण है, सर्व द्रव्यों में पाया जाता है तथापि संसार अवस्था में कर्म पर-तत्त्व जीवों में उस स्वाभाविक अगुरुलघु-गुण का अभाव है । यदि कहा जाय कि स्वभाव का विनाश मानने पर जीव द्रव्य का विनाश प्राप्त होता है, क्योंकि लक्षण के विनाश होने पर लक्ष्य का

विनाश होता है, ऐसा व्याय है, सो भी बात नहीं है प्रथमि अगुरुलघुगुण के विनाश होने पर भी जीव का विनाश नहीं होता है, क्योंकि ज्ञान और दर्शन को छोड़कर अगुरुलघुत्व जीव का लक्षण नहीं है, चूंकि वह आकाश आदि अन्य द्रव्यों में भी पाया जाता है ।^१ अनादि काल से कर्म नोकर्म से वर्षे हुए जीवों के कर्मोदय-कृत अगुरुलघुत्व है किन्तु मुक्त जीवों के कर्म नोकर्म की अत्यन्त निवृत्ति हो जाने पर स्वाभाविक अगुरुलघुगुण का आविभवि होता है ।^२

धृष्टि व हानि में अनन्त का प्रमाण सम्मूर्ख जीव राशि, असंख्यात का प्रमाण असंख्यात लोक और संख्यात का प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात जानना चाहिये ।^३

मान लो अगुरुलघु गुण के अविभाग-प्रतिच्छेदों का प्रमाण १२००० है और संख्यात का प्रमाण २, असंख्यात का प्रमाण ४, अनन्त का प्रमाण ५ है । १२००० को ५ का भाग देने पर लक्ष २४०० प्राप्त होता है जो १२००० का अनन्तवाँ भाग है । इस अनन्तवें भाग रूप २४०० को १२००० में जोड़ने पर १४४०० अनन्त भाग वृद्धि प्राप्त होती है । १२००० को असंख्यात रूप ४ का भाग देने पर ३००० प्राप्त होता है जो असंख्यातवाँ भाग है उस असंख्यातवें भाग रूप ३००० को १२००० में जोड़ने पर (१२००० + ३०००)=१५००० प्राप्त होता है जो असंख्यातवें भाग वृद्धि रूप है । १२००० को संख्यात रूप ३ का भाग देने पर ४००० प्राप्त होता है जो संख्यातवाँ भाग है । इस संख्यातवें भाग रूप ४००० को १२००० में जोड़ने

१. 'संसारावत्थाए कम्मपरतंतम्य तस्साभावा ए च सहावविणासे जीवस्स विणासो, लक्षणविणासे लाक्षणविणासस्स एाइपत्तादो । ए च एणाण-दंसणे मुच्चा जीवस्स पगुरुलहुत' लक्षणं, तस्स आयासादीसु विउवलंभा ।' (ध्वल पृ० ६ पृ० ५८) । २. 'मुक्त जीवानां कथमिति चेत् ? अनादिकर्मनोकर्मसम्बन्धानां कर्मोदयकृतमगुरुलघुत्वम्, तदत्यन्त विनिवृत्ती तु स्वभाविकमायिर्भवति ।' (राजवार्तिक अ० ६ सूक्त ११ वर्तिक १२) ३. ध्वल पृ० १२ पृ० १५१-१५७ ।

पर १६००० प्राप्त होता है जो संख्यातवें भाग वृद्धि रूप है । १२००० को संख्यातरूप ३ से गुणा करने पर ३६००० संख्यातगुण वृद्धि प्राप्त होती है । १२००० को असंख्यात रूप ४ से गुणा करने पर ४८००० असंख्यातगुण वृद्धि प्राप्त होती है । १२००० को अनन्तरूप ५ से गुणा करने पर ६०००० अनन्तगुण वृद्धि प्राप्त होती है । ये छः वृद्धि हैं ।

१२००० को अनन्तरूप ५ का भाग देने पर २४०० प्राप्त होता है जो अनन्तवां भाग है । इस अनन्तवें भाग रूप २४०० को १२००० में से घटाने पर (१२०००—२४००) ९६०० प्राप्त होते हैं जो अनन्तवें भाग हानि रूप है । १२००० को असंख्यात रूप ४ का भाग देने पर ३००० प्राप्त होते हैं जो असंख्यातवें भाग है । इस असंख्यातवें भाग रूप ३००० को १२००० में से घटाने पर शेष ६००० रहते हैं जो असंख्यातवें भाग हानि रूप है । १२००० को संख्यात रूप ३ का भाग देने पर ४००० प्राप्त होते हैं । संख्यातवें भाग रूप ४००० को १२००० में से घटाने पर ८००० शेष रहते हैं जो संख्यातवें भाग हानि रूप है । १२००० को संख्यात रूप ३ से भाग देने पर ४००० लब्ध होता है । १२००० से घटकर मात्र ४००० रह जाना संख्यातगुण हानि है । १२००० को असंख्यात रूप ५ का भाग देने पर ३००० लब्ध होता है । १२००० से घटकर मात्र ३००० शेष रह जाना असंख्यातगुण हानि है । १२००० को अनन्तरूप ५ का भाग देने पर २४०० लब्ध आते हैं । मात्र २४०० रह जाना अनन्तगुण हानि है । इस प्रकार ये छः हानियां हैं ।

अंगुल के असंख्यातवें भाग बार अनन्तवें भाग वृद्धि होने पर एक बार असंख्यातवें भाग वृद्धि होती है । पुनः अंगुल के असंख्यातवें भाग बार अनन्तवें भाग वृद्धि होने पर एक बार असंख्यातवें भाग वृद्धि होती है । इस प्रकार अंगुल के असंख्यातवें भाग बार असंख्यातवें भाग वृद्धि होने पर एक बार संख्यातवें भाग वृद्धि होती है । पुनः पूर्वोक्त प्रकार अंगुल के असंख्यातवें भाग बार असंख्यातवें भाग वृद्धि होने पर एक बार संख्यातवें भाग वृद्धि होती है । इस प्रकार अंगुल के असंख्यातवें भाग बार संख्यातवें भाग वृद्धि होने पर एक बार संख्यातगुणी वृद्धि होती है । पूर्वोक्त प्रकार अंगुल के

असंख्यातवें भाग बार संख्यातगुणी वृद्धि होने पर एक बार असंख्यातगुण वृद्धि होती है। अंगुल के असंख्यातवें भाग बार असंख्यातगुण वृद्धि होने पर एक बार अनन्तगुण वृद्धि होती है। इस प्रकार छः वृद्धि होने पर छः हानियां होती हैं।

एक षट्स्थान पतित वृद्धि में, अनन्तगुण वृद्धि एक होती है। असंख्यात-गुण वृद्धि कांडक प्रमाण अर्थात् अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। संख्यातगुण वृद्धि कांडक $\times (\text{कांडक} + 1) = (\text{कांडक}^2 + \text{कांडक})$ प्रमाण होती है। संख्यात भाग वृद्धि $(\text{कांडक} + 1) (\text{कांडक}^2 + \text{कांडक}) = (\text{कांडक}^3 + 2 \text{ कांडक}^2 + \text{कांडक})$ प्रमाण होती है। असंख्यात भाग वृद्धि $(\text{कांडक} + 1) (\text{कांडक}^2 + 2 \text{ कांडक}^2 + \text{कांडक}) = (\text{कांडक}^4 + 3 \text{ कांडक}^3 + 3 \text{ कांडक}^2 + \text{कांडक})$ प्रमाण होती है। अनन्तभाग वृद्धि $(\text{कांडक} + 1) (\text{कांडक}^4 + 3 \text{ कांडक}^3 + 3 \text{ कांडक}^2 + \text{कांडक}) = (\text{कांडक}^5 + 4 \text{ कांडक}^4 + 6 \text{ कांडक}^3 + 4 \text{ कांडक}^2 + \text{कांडक})$ प्रमाण होती है।^१

इसी प्रकार एक षट्स्थान पतित हानि में अनन्तगुणहानि, असंख्यातगुण हानि, संख्यातगुण हानि, संख्यातभाग हानि, असंख्यातभाग हानि, अनन्त-भागहानि का प्रमाण जानना चाहिये।

अनन्तभाग वृद्धि की उर्वक (३) संज्ञा है, असंख्यातभाग वृद्धि की उत्तरक (४), संख्यातभाग वृद्धि की पंचांक (५), संख्यातगुण वृद्धि की षडंक (६), असंख्यातगुण वृद्धि की सप्तांक (७) और अनन्तगुण वृद्धि की षष्ठांक (८) संज्ञा जाननी चाहिये।^२

विभावार्थपर्यायः षड्विधाः मिथ्यात्व-कषाय-राग-द्वेष-पुण्य-पापरूपाऽव्यवसायाः ॥१८॥

सूत्रार्थ—विभावार्थपर्याय छः प्रकार की है (१) मिथ्यात्व (२) कषाय (३) राग (४) द्वेष (५) पुण्य और (६) पाप। ये छः अव्यवसाय विभाव अर्थ-पर्याय हैं।

विशेषार्थं— मिथ्यात्व कषाय आदि रूप जीव के परिणामों में कर्मोदय के कारण जो अति समय हानि या वृद्धि होती रहती है, वह विभाव ग्रथ-पर्याय है। यह हानि या वृद्धि अनन्तवें भाग आदि रूप षट्स्थान-गत ही होगी, क्योंकि कोई भी हानि या वृद्धि इन स्थानों से बाहर नहीं हो सकती, इन स्थानों के अन्तर्गत ही होती है। श्री जयसेन आचार्य ने भी जीव की अशुद्ध पर्याय का कथन करते हुए लिखा है—

‘अशुद्धार्थपर्याया जीवस्य षट्स्थानगतकषायहानिवृद्धि विशुद्धि-संकलेशरूपशुभाशुभलेश्यास्थानेषु ज्ञातव्याः ।’

[पंचास्तिकाय गाथा १६ टीका]

ग्रथं— कषायों की षट्स्थानगत हानि वृद्धि होने से विशुद्ध या संकलेश रूप शुभ अशुभ लेश्याओं के स्थानों में जीव की अशुद्ध (विभाव) ग्रथं पर्यायें जाननी चाहिये।

‘पुद्गलस्य विभावार्थपर्याया द्वयणुकादिस्कंधेषु वर्णान्तरादि-परिणामनरूपाः ।’ [पंचास्तिकाय गाथा १६ टीका]

ग्रथं— द्वि-प्रणुक आदिक स्कंधों में वर्णादि से अन्य वर्णादि होने रूप पुद्गल की विभाव ग्रथं पर्यायें हैं।

इस प्रकार जीव के लेश्यारूप परिणामों में और पुद्गल-स्कंधों के वर्णादि में जो प्रतिशङ्क परिणामन होता है वह विभावार्थं पर्याय है।

॥ इति ग्रथं पर्याय ॥

—————

[व्यञ्जनपर्यायास्तेद्वेषा स्वभावविभावपर्यायमेदात्]

ग्रथं— स्वभावव्यञ्जनपर्याय और विभावव्यञ्जनपर्याय के बेद से व्यञ्जन-पर्याय दो प्रकार की है।

विशेषार्थं— द्व्य-अंजनपर्याय और गुण-व्यञ्जनपर्याय में प्रत्येक स्वभाव

१. यह सूत्र यत्त्वमि किसी भी प्रति में नहीं है किन्तु प्रकरणानुसार वह सूत्र होता चाहिये।

और विभाव के भेद से दो दो प्रकार की है। संसारी जीव और पुद्गलस्कंध में ही विभाव पर्याय होती है।

जीव की विभाव-द्रव्य-व्यञ्जनपर्याय—

**विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाश्चतुविधा नरनारकादिपर्यायाः
अथवा चतुरशीतिलक्षा योनयः ॥ १६॥**

सूत्रार्थ—नर नारक आदि रूप चार प्रकार की अथवा चौरासी लाख योनि रूप जीव की विभाव-द्रव्य-व्यञ्जनपर्याय है।

विशेषार्थ—जीव और पुद्गलों में ही विभाव पर्यायें होती हैं। द्रव्य की व्यञ्जन पर्याय द्रव्य-व्यञ्जनपर्याय है। विभावरूप परिणत द्रव्य की व्यञ्जन-पर्याय विभाव-द्रव्य-व्यञ्जनपर्याय है। स्वभाव से अन्यथारूप होना विभाव है। द्रव्य के लक्षण या चिह्न को व्यञ्जन कहते हैं। परिणमन को पर्याय कहते हैं। नारक, तिर्यच, मनुष्य और देव, ये चारों जीव की द्रव्य पर्यायें हैं, क्योंकि ये जीव के किसी गुण की पर्यायें नहीं हैं। ये पर्यायें गति व आयु-कर्मोदय-जनित हैं और जीव स्वभाव का पराभव करके उत्पन्न होती हैं इसलिये विभाव पर्यायें हैं। श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने कहा भी है—

कर्मण एाम समक्ख्यं स भावमघ अध्यणो सहावेण।

अभिभूय शरं तिरियं शोरहयं वा सुरं कुणदि ॥ १६॥

[प्रबन्धनसार]

ग्रन्थ—नाम संज्ञा वाला कर्म अपने स्वभाव से जीव के स्वभाव का पराभव करके मनुष्य, तिर्यच, नारक अथवा देव पर्यायों को करता है।

‘जीवस्य भवांतरगतस्य शरीरनोकर्मपुद्गलेन सह मनुष्यदेवादि-पर्यायोत्पत्तिः चेतनजीवस्याचेतनपुद्गलद्रव्येण सह मेलापकादसमान-जातीयः द्रव्यपर्यायो भवते। एते समानजातीया असमानजातीयाश्च अनेकद्रव्यात्मिकैकरूपा द्रव्यपर्याया जीवपुद्गलयोरेव भवन्ति अशुद्धा एव भवन्ति। कर्मादिति चेत्? अनेकद्रव्याणां परस्परसंश्लेष्टरूपेण सम्बन्धात्।’

[पंचास्तिकाय गाया १६ टीका।

अर्थ—जीव जब दूसरी गति को जाता है तब नवीन शरीररूप नोकर्म पुद्गलों के साथ सम्बन्ध को प्राप्त करता है, उससे मनुष्य, वेच, तिर्यंच, नारक पर्यायों की उत्पत्ति होती है। चेतनरूप जीव के साथ अचेतनरूप पुद्गल के मिलने से जो मनुष्यादि पर्याय हुई यह असमानजाति द्रव्य-पर्याय है। ये समानजातीय तथा असमानजातीय अनेक द्रव्यों की एकरूप द्रव्य-पर्यायें पुद्गल और जीव में ही होती हैं। ये मशुद ही होती हैं, क्योंकि अनेक द्रव्यों के परस्पर संहलेष-सम्बन्ध से उत्पन्न होती हैं।

जीव की विभाव-गुण-व्यञ्जनपर्याय—

विभावगुणाद्व्यञ्जनपर्याया मत्यादयः ॥२०॥

सूत्रार्थ—मतिज्ञान आदिक जीव को विभाव-गुण-व्यञ्जनपर्याय है।

विशेषार्थ—स्वूल, वचनगोचर, नादावान और स्थिर पर्यायें व्यञ्जनपर्यायें हैं। सूक्ष्म और प्रतिक्षण नाश होने वाली पर्यायें अर्थपर्यायें हैं। कुमति, कुश्कुत, कुपवधि, मति, श्रुत, अवधि और भनःपर्याय—ये सात ज्ञान; चक्षु, ग्रन्थि और अवधि—ये तीन दर्शन; ये सब जीव की विभाव-गुण-व्यञ्जनपर्यायें हैं। इन सातों उपयोगों का जब्दन्य काल भी अन्तमुँहूर्त है, अतः ये व्यञ्जनपर्याय हैं। ये सातों उपयोग आवरणकर्म के क्षयोपशाम के अधीन हैं अतः ये विभाव-पर्याय हैं। ज्ञानगुण तथा दर्शनगुण की क्षयोपशामिक पर्यायें हैं, अतः गुण पर्याय हैं। इस प्रकार मतिज्ञान आदिक जीव की विभाव-गुण-व्यञ्जनपर्याय हैं।

जीव की स्वभाव-द्रव्य-व्यञ्जनपर्याय—

स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाद्वरमशरीरात् किञ्चिन्न्यूनसिद्ध-पर्यायः ॥२१॥

सूत्रार्थ—अन्तिम शरीर से कुछ कम जो सिद्ध पर्याय है, वह जीव की स्वभाव-द्रव्य-व्यञ्जनपर्याय है।

विशेषार्थ—तिसोव्यपश्चात्सी अधिकार ६ के सूत्र ६ व १० में सिद्धों की अवगाहना का कथन है। इन दो वाचाओं द्वारा दो भिन्न मर्तों का उल्लेख किया गया है। इनमें से गाया १० टिप्पण में उद्भूत की मई है चित्रका

अर्थ है—‘अन्तिम भव में जिसका जैसा आकार, दीर्घता और बहुल्य हो उससे तृतीय भाग से कम सब सिद्धों की अवगाहना होती है।’ अर्थात् पूर्वे जन्म में शरीर की जितनी लम्बाई-चौड़ाई होती है उसके तीसरे भाग से न्यून सिद्ध पर्याय की अवगाहना होती है। किन्तु गाया ६ में कहा है—‘लोक विनिश्चय ग्रन्थ में लोक विभाग में सब सिद्धों की अवगाहना का प्रमाण कुछ कम चरम शरीर के समान कहा है।’ इसका हठात्त इस प्रकार है—मोम रहित भूसा के (सांचे के) बीच के आकार की तरह अन्तिम शरीर से कुछ कम आकार वाले केवल ज्ञानमूर्ति अमूर्तिक सिद्ध भगवान् विराजते हैं।^१ यह सिद्ध पर्याय जीव की शुद्ध पर्याय है इसलिए स्वभाव-पर्याय है। किसी विवक्षित गुण की पर्याय नहीं है इसलिए द्वय-पर्याय है। सिद्ध पर्याय सादि-अनन्त पर्याय है इसलिए व्यंजन-पर्याय है। सिद्ध पर्याय की अवगाहना अन्तिम शरीर से कुछ न्यून है।

जीव की स्वभाव-गुण-व्यंजनपर्याय—

स्वभावगुणव्यंजनपर्याया अनन्तचतुष्टयरूपा जीवस्य ॥२२॥

सूत्रार्थ—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इन अनन्तचतुष्टयरूप जीव की स्वभाव-गुण-व्यंजनपर्याय है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरण कर्म के अत्यन्त क्षय से अनन्तज्ञान, दर्शनावरण कर्म के अत्यन्त क्षय से अनन्तदर्शन, मोहनीय कर्म के अत्यन्त क्षय से अनन्त सुख,^२ अन्तराय कर्म के अत्यन्त क्षय से अनन्तवीर्य, इस प्रकार चारष्ट्रिया कर्मों के क्षय से अनन्तचतुष्टयरूप जीव की स्वभाव-गुण-व्यंजनपर्याय उत्पन्न होती है। इन अनन्त चतुष्टय का कभी नाश नहीं होगा, अर्थात् चिरकाल

१. ‘लोयविसिष्ट्यगत्ये लोयविभागम्मि सञ्चसिद्धाण्डं। योगाहृणपरिमाणं भण्डिद किञ्चूण’ चरिमदेहसमो ५६॥ [तिं० ५०] । २. किञ्चिद्भूत चरम-शरीराकारेण गतसिक्षमूष्माभर्कारदत्त पुरुषाकारः । [वृद्धद्वयसंग्रह गाया ५१ टीका] ३. ‘सौस्थं च मोहक्षयात् ।’ [पद्मनन्दि पंचविंशति ८/६]; तत्सुखं मोहक्षयात् ।’ [तत्वार्थवृत्ति ६/४४] ।

स्थायी है, इसलिये वह व्यंजनपर्याय है। कर्मोपाधिरहित पर्याय है अतः स्वभावपर्याय है। ज्ञान, दर्शन, सुख और बीर्यं गुणों की पर्याय है अतः गुणपर्याय है। कहा भी है—

गणाणं दंसणं सुह वीरियं च जं उहयकम्मपरिहीणं ।

तं सुद्धं जाण तुमं जीवे गुणपञ्जय सब्वं ॥२६॥ [नवचक]

दोनों प्रकार के कर्मों से रहित शुद्ध जीव के ग्रन्ति ज्ञान-दर्शन-सुख-बीर्यं जीव की स्वभाव-गुण-पर्याय है।

पुद्गल की विभाव-द्रव्य-व्यंजनपर्याय—

पुद्गलस्य तु द्विघणुकादयो विभावद्रव्यव्यंजनपर्यायाः ॥२३॥

सूत्रार्थ—द्वि-घणुकादि स्कंध पुद्गल की विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय हैं।

विशेषार्थ—यहाँ पर 'तु' शब्द का अर्थ 'और' है। और पुद्गल की विभाव-द्रव्य-व्यंजनपर्यायें द्वि-घणुक आदि स्कंध हैं। शब्द, बन्ध, सूक्षमता, स्थूलता, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप, उद्योत आदि भी पुद्गल की विभाव-द्रव्य-व्यंजनपर्यायें हैं। कहा भी है—

सदो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया ।

उज्जोदादवसहिया पुद्गलदब्वस्स पञ्जःगा ॥१६॥

[वृहद्ब्रह्मसंग्रह]

अर्थ—शब्द, बन्ध, सूक्षम, स्थूल, संस्थान, भेद, तम (ग्रंथकार), छाया, उद्योत और आतप ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

'शब्दादन्येऽपि आगमोत्तलक्षणा आकुञ्चनप्रसारणदधिदुर्घा-दयो विभावव्यंजनपर्यायाः ज्ञातउया ।' [वृ० द३० सं० गाया १६ टीका]

अर्थात्—शब्द आदि के प्रतिरिक्ष शास्त्रोक्त अन्य भी, जैसे लिङ्गना, कंजना, दही, दूध आदि विभाव-द्रव्य-व्यंजनपर्यायें जावनी चाहियें।

पुद्गल की विभाव-गुण-व्यंजनपर्याय—

रसरसान्तरगन्धगन्धान्तरादिविभावगुणव्यंजनपर्यायाः ॥२४॥

सूत्रार्थ—द्वि-ग्रणक आदि स्कन्धों में एक वर्ण से दूसरे वर्णरूप, एक होने वाला चिरकाल-स्थायी-परिणामन पुदगल की विभाव-गुण-व्यञ्जन-पर्याय है।

विशेषार्थ—द्वि-ग्रणक आदि स्कन्ध पुदगल द्रव्य की अशुद्ध-पर्याय है। इस अशुद्ध पुदगल द्रव्य के गुणों में जो परिणामन होता है वह विभाव-गुण-पर्याय है। यदि वह परिणामन अणकायी है तो वह विभाव-गुण-पर्यायपर्याय है और यदि वह परिणामन चिरकाल स्थायी है तो वह विभाव-गुण-व्यञ्जन-पर्याय है। इसी बात को श्री जयसेन आचार्य ने पंचास्तिकाय गाया १६ की दीका में कहा है—

‘पुदगलस्य विभावार्थपर्याया द्वयग्रुकादिस्कचेषु वर्णान्तरादि-परिणामनरूपाः, विभावव्यञ्जनपर्यायाद्वच पुदगलस्य द्वयग्रुकादि-स्कन्धेऽवेव चिरकालस्थायिनो ज्ञातव्यः।’

पुदगल की स्वभाव-द्रव्य-व्यञ्जनपर्याय—

अविभागिपुदगलपरमाणुः स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः॥२५॥

सूत्रार्थ—अविभागी पुदगल परमाणु पुदगल की स्वभाव-द्रव्य-व्यञ्जन-पर्याय है।

विशेषार्थ—टिप्पणी में आचारसार तीसरी अध्याय की गाया १३ उद्घृत की है उसका यह अभिप्राय है कि—परमाणु पुदगल का ऐसा अवयव (टुकड़ा) है, जो भेदा नहीं जा सकता अर्थात् परमाणु के टुकड़े नहीं हो सकते, इसलिये पुदगल परमाणु अविभागी है। उस पुदगल परमाणु में स्तिर्य या रूप गुण के कारण परस्पर बंधने की क्षमता रहती है। परस्पर बंध होने का अवान है। अतः प्रत्यय क्षमता के कारण वह परमाणु भी चतुरस्त है अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई, सोटाई वाला है और इन्ड्रियों के द्वारा चहण नहीं किया जा सकता है।

‘अत्तवः परिमण्डला’^१ अर्थात् परमाणु गोल होता है। सबसे जघन्य प्रवाहाहना गोल होती है। जीव की भी रास्य व्यष्टि प्रवाहना वतुल-आकार अर्थात् गोल होती है।^२ श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने नियमसार में पुदगल परमाणु का कथन इस प्रकार किया है—

अत्तादि अत्तमज्ञं अत्तंतं गोव इंदिए गेऽर्जं ।

जं दृवं अविभागी तं परमाणुं विआणाहि ॥२६॥

अर्थ—जिसका आदि, मध्य और अन्त एक है और जिसको इन्द्रियों प्रहण नहीं कर सकतीं ऐसा जो अविभागी (विभाग रहित) पुदगल इव्य है उसे परमाणु समझो।

‘भेदावणु’ ॥५/२७॥^३ इस सूत्र द्वारा यह बतलाया गया है कि परमाणु स्कंध के भेद से उत्पन्न होता है, अतः अनादि काल से अब तक परमाणु की अवस्था में ही रहने वाला कोई भी परमाणु नहीं है।^४

अपदेसो परमाणु पदेसमेतो य सयमसदो जो ।

ऐद्वो वा लुक्खो वा दुपदेसादित्तमणुहृवदि ॥१६३॥ [प्रबन्धन०]

अर्थात् पुदगल परमाणु ग्रश्वेश है (बहुश्वेशी नहीं है), एक प्रदेशमात्र है, स्वयं अशब्द है, स्तिर्गव्या या रूपेणा के कारण द्विप्रदेशादि स्कंधरूप बंध अवस्था का अनुभव करता है।

सब्वेसिं स्वंधाणं जो अंतो तं वियाणु परमाणु ।

सो सरसदो असदो एकको अविभागी मुचिभवो ॥७७॥

[पञ्चास्तिकाय]

अर्थ—स्कंध पर्यायों का जो अन्तिम भेद है वह परमाणु है, वह परमाणु विभाग के अभाव के कारण अविभागी है, एक प्रदेशी होने से एक है। मूर्त-दम्भरूप से अविनाशी होने से नित्य है। रूपादि के परिणाम से उत्पन्न होने

१. महापुराण सर्ग २४ श्लोक १४८ । २. घबल पु० ११ पृ० ३३-३५, सूत्र २० की टीका । ३. मोक्ष-शास्त्र । ४. ‘न चानादि परमाणु नाम कविचिदस्ति ।’ राजवार्तिक ५/२४/१० ।

के कारण सूतिप्रभव है। शब्द परमाणु का गुण नहीं है किन्तु पुद्गल स्कंध रूप पर्याय है, अतः परमाणु अशब्द है।

एयपदेसो वि अराण् राणाखंघपदेसदो होदि ।

बहुदेसो उवयारा तेण च काञ्चो भण्टि सञ्चखु ॥२६॥

[चृहृद द्रव्य-संयह]

अर्थ—एकप्रदेशी भी परमाणु अनेक स्कन्धरूप बहुप्रदेशी हो सकता है, इस कारण सर्वज्ञदेव ने पुद्गल परमाणु को उपचार से काय कहा है।

परमाणु निरवयव भी है और सावयव भी है। द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करने पर दो परमाणुओं का क्यंचित् सर्वात्मना समागम होता है, क्योंकि परमाणु निरवयव होता है। यदि परमाणु के अवयव होते हैं ऐसा माना जाय तो परमाणु को अवयवी होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि अवयव के विभाग हारा अवयवों के संयोग का विनाश होने पर परमाणु का अभाव प्राप्त होता है, पर ऐसा है नहीं, क्योंकि परमाणु रूप कारण का अभाव होने से सब स्थूल कार्यों (स्कंधों) का भी अभाव प्राप्त होता है। परमाणु के कल्पितरूप अवयव होते हैं, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस तरह मानने पर अव्यवस्था प्राप्त होती है। इसलिए परमाणु को निरवयव होना चाहिए। निरवयव परमाणुओं से स्थूल कार्य की उत्पत्ति नहीं बनेगी, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि निरवयव परमाणुओं के सर्वात्मना समागम से स्थूल कार्य (स्कंध) की उत्पत्ति होने में कोई विरोध नहीं आता। पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर दो परमाणुओं का क्यंचित् एकदेशीन समागम होता है। परमाणु के अवयव नहीं होते, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यदि उसके उपरिम, अधस्तन, मध्यम और उपरिमोपरिम भाग न हों तो परमाणु का ही अभाव प्राप्त होता है। ये भाग कल्पितरूप होते हैं, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि परमाणु में ऊर्ध्वभाग, अधोभाग, मध्यमभाग तथा उपरिमोपरिमभाग कल्पना के विना भी उपलब्ध होते हैं। परमाणु के अवयव हैं इसलिये उनका सर्वत्र विभाग ही होना चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर तो सब वस्तुओं के अभाव का

प्रसंग प्राप्त होता है। जिनका भिन्न-भिन्न प्रभाणों से ग्रहण होता है और जो भिन्न-भिन्न दिशा वाले हैं वे एक हैं यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर हितेष आता है, अत्यवाँ है इत्याणु नहीं बना है यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अवयवों के समूहरूप ही परमाणु दिलाई देता है। अवयवों के संयोग का विनाश होना चाहिये यह भी कोई नियम नहीं है, क्योंकि अनादि संयोग के होने पर उसका विनाश नहीं होता।^१ इस प्रकार अविभागी पुद्गल-परमाणु द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन से निरवयव है और पर्यायार्थिक नय से सावयव है। पुद्गल परमाणु निरवयव ही है, ऐसा एकान्त नहीं है।

द्वि-शरणक आदि स्कंध कार्यों का उत्पादक होने से पुद्गल-परमाणु स्यात् कारण है, स्कंध-भेद से उत्पन्न होता है, अतः स्यात् कार्य है। परमाणु से छोटा कोई भेद नहीं है, अतः स्यात् अन्त्य है, प्रदेश-भेद न होने पर भी गुणादि-भेद होने के कारण परमाणु अन्त्य नहीं भी है। सूक्ष्म परिणामन होने से स्यात् सूक्ष्म है और स्थूल कार्य की उत्पत्ति की योग्यता रखने से स्यात् स्थूल भी है। द्रव्यता नहीं छोड़ता, अतः स्यात् नित्य है, स्कंधपर्याय को प्राप्त होता है और गुणों का विपरिणामन होने से स्यात् अनित्य है। अप्रदेशस्व की विवक्षा में एक रस, एक गंध, एक वर्ण और दो स्पर्श वाला है, अनेक प्रदेशी स्कंधरूप परिणामन की क्षति होने से अनेक रस आदि वाला भी है। स्कंधरूप कार्य-लिङ से अनुभेद होने के कारण स्यात् कार्य-लिङ है और प्रत्यक्ष-कान का विषय होने से कार्य-लिङ नहीं भी है।^२ इस प्रकार परमाणु के विषय में अनेकान्त है।

यदि यह कहा जाय कि परमाणु अनादिकाल से अर्णु रहता है सो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यदि परमाणु ग्रप्तने अणुत्व को नहीं छोड़ता तो उससे स्कंधरूप कार्य भी उत्पन्न नहीं हो सकता।^३ इससे यह स्पष्ट हो जाता

१. घबल पृ० १४ पृ० ५६-५७। २. तत्त्वार्थराजवाचिक भ० ५ सू० २५ वाचिक १६। ३. 'न हि तस्यानादिपारिणामिकाऽव्यवस्थस्य कार्यमस्ति, तत् स्वभावाविनिवृत्तेः।'^४ [स० रा० वा० ५/२५/८]

है कि स्कंध अवस्था में परमाणु अणुरूप से नहीं रहता है किन्तु अणुत्व को छोड़कर स्कंधत्व को प्राप्त हो जाता है।

पुद्गल परमाणु-अवस्था में संश्लेषसम्बन्ध से रहित है, अतः परमाणु अवस्था शुद्ध है, इसीलिये परमाणु स्वभाव-पर्याय है। परमाणु किसी गुण की पर्याय नहीं है अतः प्रत्यपर्याय हैं। परमाणु-रूप पर्याय चिरकालस्थायी भी है इसलिये परमाणु व्यंजन पर्याय है। अतः परमाणु को पुद्गल की स्वभाव-ब्रह्म-व्यंजन-पर्याय कहा गया है।

पुद्गल की स्वभाव-गुण-व्यंजन पर्याय—

वर्णगंधरसौकैकाविरुद्धस्पर्शद्वयं स्वभावगुणव्यंजनपर्यायाः ॥२६॥

सूत्रार्थ—पुद्गलपरमाणु में एक वर्ण, एक गंध, एक रस और परस्पर अविरुद्ध दो स्पर्श होते हैं। इन गुणों की जो चिरकाल स्थायी पर्यायें हैं वे स्वभाव-गुण-व्यंजन पर्यायें हैं।

विशेषार्थ—तीक्षा, चरपरा, कसायला, खट्टा, धीठा इन पांच रसों में से एक काल में एक रस रहता है। चुक्ल, पीत, रक्त, काला, नीमा इन पांच वर्णों में से एक वर्ण एक काल में रहता है। सुगन्ध, दुर्गन्ध इन दो प्रकार की गंध में से कोई एक गंध एक काल में रहती है। शीत व उष्ण स्पर्श में से कोई एक, तथा स्निग्ध व रूज स्पर्श में से कोई एक, इस प्रकार दो स्पर्श एक काल में परमाणु में रहते हैं। अर्थात् शीत-स्निग्ध, शीत-रूक्ष, उष्ण-स्निग्ध, उष्ण-रूक्ष—स्पर्श के इन चार युगलों में से कोई एक युगल एक काल में एक परमाणु में रहता है। शीत-उष्ण ये दोनों स्पर्श वा स्निग्ध-रूक्ष ये दोनों स्पर्श एक काल में एक परमाणु में नहीं रह सकते, क्योंकि ये परस्पर में विरुद्ध हैं।

एवरसवरणगंधं दो फासं सहकारणमसद् ।

खंधतरियं दब्वं परमाणुं तं वियाणाहि ॥२७॥ [पञ्चास्तिकार्थ]

अर्थ—जिसमें कोई एक रस, कोई एक वर्ण, कोई एक गंध वही स्पर्श

हों, जो शब्द का कारण हो, स्वयं शब्द रहित हो, जो स्वयं से जुड़ा हो, उस पुद्गल द्रव्य को परमाणु कहते हैं।

इस प्रकार पुद्गल द्रव्य की परमाणु रूप शुद्ध पर्याय में वर्ण, गंध व रस गुणों की एक एक पर्याय होती है तथा स्पर्शगुण की परस्पर अविरुद्ध दो पर्यायें होती हैं। वे स्वभाव गुण पर्यायें हैं। वे पर्यायें चिरकाल तक भी रहती हैं, अतः व्यंजनपर्यायें हैं। अर्थात् पुद्गल-परमाणु में वर्ण, गंध, रस व स्पर्शगुणों की चिरकाल तक रहने वाली पर्यायें, पुद्गल की स्वभाव-शुल-व्यंजन पर्यायें हैं।

॥ इति व्यंजन पर्याय ॥

अनाद्यनिष्ठने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणाम् ।

उत्पञ्चनिष्ठि निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥१॥

घर्मधिर्मनभः काला अर्थपर्यायगोचराः ।

व्यंजनेन तु सम्बद्धो द्वावन्यो जीव पुद्गलौ ॥२॥

अर्थ—अनादि-अनन्त द्रव्य में अपनी अपनी पर्यायें प्रतिक्षण उत्पन्न होती रहती हैं और विनष्टती रहती हैं जैसे जल में लहरें उत्पन्न होती रहती हैं और निनष्टती रहती हैं ॥१॥

घर्मद्रव्य, घर्मधिर्मनभ, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन चारों द्रव्यों में अर्थ पर्याय ही होती है किन्तु इनसे भिन्न जीव और पुद्गल इन दोनों द्रव्यों में व्यंजन पर्यायें भी होती हैं ॥२॥

विदेशार्थ गाया १—द्रव्यायिक नय के अवलम्बन से द्रव्य नित्य है—न उत्पन्न होता है और न विनष्ट होता है अर्थात् अनादि-अनिष्ठन है, सत् स्वभाव वाला है। कहा भी है—

‘उप्त्ती च विणासो द्रव्यस य एति अति सम्भावो ।’

[पञ्चास्तिकाय गाया ११]

‘द्रव्यस्य’... त्रिकालावस्थायिनोऽनादिनिष्ठनस्य न समुच्छेदसमुदयौ
युक्तौ । ... ततो द्रव्यार्थार्पणायामनुत्पादमनुच्छेदं सत्स्वभावमेव
द्रव्यं ।’ [श्री अमृतचन्द्र आचार्य की टीका]

‘अनादिनिष्ठनस्य द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकलयेनोत्पत्तिश्च विनाशो वा
नास्ति ।’ [श्री जयसेन आचार्य की टीका]

यद्यपि द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य त्रिकाल अवस्थायी अनादि-अनिष्ठन है, उत्पाद-व्यय से रहित है तथा पर्यार्थिक नय के अवलम्बन से उस अनादि-अनिष्ठन द्रव्य में प्रतिक्षण पर्याये उत्पन्न होती हैं, विनष्ट होती हैं, क्योंकि द्रव्य अनित्य है और उत्पाद-व्यय सहित है । कहा भी है—

उपजज्ञति विचर्ति य भावा णियमेण पञ्जवण्यस्स ।
दब्बद्वियस्स सञ्चर्वं सदा अगुण्पण्मविण्डु ॥

[जयधबल पृ० १ पृ० २४८]

अर्थ—पर्यार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्य नियम से उत्पन्न होते हैं और नाश को प्राप्त होते हैं तथा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वे सदा अविनष्ट और अनुत्पन्न स्वभाव वाले हैं ।

इस प्रकार दोनों नयों के अवलम्बन से वस्तुस्वरूप को सिद्धि हो सकती है, क्योंकि वस्तुस्वरूप अनेकान्तमयी है । इन दोनों नयों में से किसी एक नय का एकान्त पक्ष महण करने से संसारादि का अभाव हो जायगा । कहा भी है—

ण य दब्बद्वियपक्ष्ये संसारो णेव पञ्जवण्यस्स ।
सासथवियत्तिवाची जम्हा उच्छेदवादीया ॥

[जयधबल पृ० १ पृ० २४९]

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय के पक्ष में संसार नहीं बन सकता है । उसी प्रकार सर्वथा पर्यार्थिक नय के पक्ष में भी संसार नहीं बन सकता है, क्योंकि द्रव्यार्थिक नय नित्यव्यक्तिवादी है और पर्यार्थिक नय उच्छेदवादी है ।

विजेषार्थ गाया २—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और काल-
द्रव्य ये चारों द्रव्य सर्वदा शुद्ध हैं, क्योंकि कभी बंध को प्राप्त नहीं होते
अतः इन चारों द्रव्यों में अगुरुलघुगुण के कारण पतिक्षण एवं दृष्टिहानिलय
अर्थपर्याय होती रहती हैं, किन्तु बंध के सम्बन्ध से होने वाली क्रिया निमि-
त्तक पर्याये अथवा व्यंजनपर्याये नहीं होती हैं। जीव और पुद्गल ये दोनों
द्रव्य बंध को प्राप्त होने के कारण अशुद्ध होते हैं अतः इनमें क्रियानिमित्तक
तथा व्यंजन पर्याये भी होती हैं। कहा भी है—

परिणामजुदो जीओ गडगमणुवर्लभओ असंदेहो ।

तहु पुगलो य पाहणपहुइ-परिणामदंसणा णाउं ॥२६॥

बंजणपरिणाइचिरहा घम्मादीआ हवे अपरिणामा ।

अत्थ परिणाममासिय सब्बे परिणामिणो अत्था ॥२७॥

[वसुनन्दि श्रावकाचार]

अर्थ—जीव परिणामयुक्त है अर्थात् परिणामी है, क्योंकि उसका स्वर्ग,
नरक आदि गतिश्रों में निःसन्देह गमन वाया जाता है। इसी प्रकार पाषाण
मिठ्ठी आदि स्थूल पर्यायों के परिणामन देखे जाने से पुद्गल को परिणामी
जानना चाहिये। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य ये चारों द्रव्य
व्यंजनपर्याय के अभाव से यद्यपि अपरिणामी कहलाते हैं तथापि अर्थपर्याय
की अपेक्षा ये द्रव्य परिणामी हैं, क्योंकि अर्थपर्याय सभी द्रव्यों में होती है।

‘घर्मीदीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि तत्स्तेषामुत्पादो न
भवेत् । क्रियापूर्वको हि घटादानामुत्पादो हृष्टः । ...क्रियानिमित्तो-
त्पादा भावेऽप्येषां घर्मीदीनामन्यथोत्पादः कल्पयते । ...अनन्तानाम-
गुरुलघुगुणानामागमप्रमाण्यादभ्युपगम्यमानानां घटस्थानपतितया
वृद्धया हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावदेवतेषामुत्पादो व्यथश्च ।’

[सर्वथिंसिद्धि ५/७]

अर्थात्—क्योंकि घटादिक का क्रियापूर्वक ही उत्पाद होता है इसलिए

निषिक्य धर्मादि द्रव्यों का उत्पाद करने हो सकता है ? यद्यपि इन धर्मादिक द्रव्यों में क्रियानिमित्तक उत्पाद नहीं है तो भी इनमें अन्य प्रकार से उत्पाद माना गया है । प्रत्येक द्रव्य में आगम प्रमाण से अनन्त अविभाग-प्रतिश्लेष वाला अगुरुलघुगुण स्वीकार किया गया है जिसका वह स्थानपतित वृद्धि हानि के द्वारा बर्तन होता रहता है, अतः इन धर्मादि द्रव्यों का उत्पाद-व्यय स्वभाव से होता है ।

इस प्रकार धर्मादि चार द्रव्यों में स्वभाव अर्थपर्याय होती है किन्तु जीव और पुद्गल में अर्जनपर्याय भी होती हैं ।

॥ इति पर्यायाधिकार ॥

—*—

स्वभावाधिकार

प्रकारान्तर से द्रव्य का लक्षण —

गुणपर्ययवद्द्रव्यम् ॥२७॥'

शून्यार्थ—गुण-पर्याय वाला द्रव्य है ।

विशेषार्थ—पहिले सूत्र ६ व ७ में द्रव्य का लक्षण 'सद्' तथा 'उत्पाद-व्यय-घोष्य' कह चुके हैं फिर भी यहाँ प्रकारान्तर से द्रव्य का लक्षण कहा गया है । इव्य का गुण और पर्यायों से कथंचित् भेद है इसलिये सूत्र में 'मतुप्' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है । गुण अन्वयी होते हैं और पर्याय व्यतिरेकी होती है । कहा भी है—

गुण इदि दृव्यविहाराणं दृव्यविकारो हि पञ्जको भणिको ।

तेहि अरण्याणं दृव्यं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चन् ॥३

अर्थ—द्रव्य में भेद करने वाले घर्म को विशेष गुण और द्रव्य के विकार को पर्याय कहते हैं । द्रव्य इन दोनों से युक्त होता है । तथा वह अयुतसिद्ध और

१. यही सूत्र मोक्षशास्त्र अ० ५ में सूत्र ३८ है । २. सर्वर्थसिद्धि ५/३८ ।

नित्य होता है। अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय से अभिन्न होता है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से जुदा होता है वह विशेष गुण है। इस गुण के द्वारा द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि भेदक विशेष गुण न हो तो द्रव्य में सांकर्य हो जाय।^१

सूत्र ६, ७ व २७ के द्वारा द्रव्य का लक्षण तीन प्रकार कहा गया है। द्रव्य के इन तीन लक्षणों में से किसी एक लक्षण का कथन करने पर शेष दोनों लक्षण भी अर्थ से प्रहरण हो जाते हैं। जैसे नित्य-अनित्य स्वभाव वाले 'सत' कहने से नित्यरूप ध्रौव्य और अनित्यरूप उत्पाद-व्यय का अथवा नित्यरूप गुण का और अनित्यरूप पर्याय का प्रहरण हो जाता है।^२ इस प्रकार इन तीनों लक्षणों में कोई भेद या अन्तर नहीं है, मात्र विवक्षाभेद है।

द्रव्यों के सामान्य व विशेष स्वभावों का कथन—

स्वभावः कथ्यन्ते—अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः,
नित्यस्वभावः, अनित्यस्वभावः, एकस्वभावः, अनेकस्वभावः,
भेदस्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः,
परमस्वभावः एते द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः; **चेतन-**
स्वभावः, अचेतनस्वभावः, मूर्त्स्वभावः, अमूर्त्स्वभावः, एक-
प्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः, विभावस्वभावः, शुद्ध-
स्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभावः एते द्रव्याणां
दश विशेषस्वभावाः ॥२८॥

सूत्रार्थ—स्वभावों का कथन किया जाता है— १. अस्तिस्वभाव, २. नास्तिस्वभाव, ३. नित्यस्वभाव, ४. अनित्यस्वभाव, ५. एकस्वभाव, ६. अनेकस्वभाव, ७. भेदस्वभाव, ८. अभेदस्वभाव, ९. भव्यस्वभाव, १०. अभव्यस्वभाव, ११. परमस्वभाव—ये ग्यारह द्रव्यों के सामान्य स्वभाव हैं; १२. चेतनस्वभाव, १३. अचेतनस्वभाव, १४. मूर्त्स्वभाव, १५. अमूर्त्स्वभाव,

१. सर्वधिंसिद्धि ५/३८। २. पंचास्तिकाय गा० १० की टीका।

५. एकप्रदेशस्वभाव, ६. अनेकप्रदेशस्वभाव, ७. विभावस्वभाव, ८. शुद्धस्वभाव,
९. अशुद्धस्वभाव, १०. उपचरितस्वभाव—ये दश द्रव्यों के विशेष स्वभाव हैं।

विशेषार्थ—द्रव्यों के स्वरूप को स्वभाव कहते हैं। तत्काल पर्याय को प्राप्त वस्तु भाव कहलाती है। अथवा वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य को भाव कहते हैं।^१

प्रश्न—गुणाधिकार कहा जा चुका है फिर स्वभाव अधिकार को पृथक् कहा जा रहा है। इसमें क्या रहस्य है?

उत्तर—जो गुण हैं वह गुणी में ही प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—गुण गुणी में किस प्रकार प्राप्त होते हैं?

उत्तर—गुण गुणी में अभेद है इसलिये गुण गुणी में ही प्राप्त होते हैं। स्वभाव गुण में भी प्राप्त होते हैं और गुणी में भी प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—स्वभाव गुण और गुणी में किस प्रकार प्राप्त होते हैं?

उत्तर—गुण और गुणी अपनी अपनी पर्याय से परिणामन करते हैं। जो परिणामि अर्थात् पर्याय है वह ही स्वभाव है। गुण और स्वभाव में यह विशेषता है। इसलिये स्वभाव का स्वरूप पृथक् लिखा गया है।

१. जिस द्रव्य का जो स्वभाव है, उस अपने स्वभाव से कभी च्युत नहीं होना अस्तिस्वभाव है, जैसे अग्नि अपने दाह स्वभाव से कभी च्युत नहीं होती। [आलापपद्धति सूत्र १०६]

२. परस्वरूप नहीं होने के कारण ‘नास्तिस्वभाव’ है। [सूत्र १०७]

३. अपनी अपनी नाना पर्यायों में ‘यह वही है’ इस प्रकार द्रव्य का हमेशा सद्भाव पाया जाना ‘नित्यस्वभाव’ है। [सूत्र १०८]

४. उस द्रव्य का अनेक पर्याय रूप परिणाम होने से ‘अनित्यस्वभाव’ है।

[सूत्र १०६]

५. सम्पूर्ण स्वभावों का एक आधार होने से ‘एकस्वभाव’ है।

[सूत्र ११०]

१. घबल पु० १ पृ० १४।

६. एक ही द्रव्य के अनेक स्वभावों की उपलब्धि होने से 'अनेकस्वभाव' है। [सूत्र १११]

७. गुण गुणी आदि में संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा भेद होने से 'भेदस्वभाव' है। [सूत्र ११२]

८. गुण-गुणी आदि में प्रदेश भेद नहीं होने से अथवा एक स्वभाव होने से 'अभेदस्वभाव' है। [सूत्र ११३]

९. भाविकाल में आगे की (भावि) पर्यायों के होने योग्य है अथवा अपने स्वरूप से परिणामन करने योग्य है अतः 'भव्यस्वभाव' है। [सूत्र ११४]

१०. काल-क्रय में भी पीछे की (भूत) पर्यायाकार होने के अयोग्य है अथवा पर-द्रव्य स्वरूपाकार होने के अयोग्य है अतः 'अभव्यस्वभाव' है।

[सूत्र ११५]

११. परिणामिक भाव की प्रधानता से 'एरमस्वभाव' है। [सूत्र ११६]

ये भ्यारह, सामान्य स्वभाव हैं। विशेष दस स्वभावों में से १. चेतनस्वभाव, २. अचेतनस्वभाव, ३. मूर्तस्वभाव, ४. अमूर्तस्वभाव—इन चार स्वभावों को व्याख्या सूत्र ६ के विशेषार्थ में हो चुकी है। ये छह विशेष स्वभावों की व्याख्या निम्न प्रकार है—

५. अस्तप्पने की अपेक्षा 'एकप्रदेश' स्वभाव है।

६. भेदपने की अपेक्षा 'अनेक-प्रदेश' स्वभाव है।

७. स्वभाव से अन्यथा होना 'विभाव' स्वभाव है। [सूत्र १२१]

८. केवल्य कृथात् शुद्ध भाव को 'शुद्ध' स्वभाव कहते हैं। [सूत्र १२२]

९. शुद्ध स्वभाव से विपरीत 'अशुद्ध' स्वभाव है। [सूत्र १२२]

१०. स्वभाव का अन्यत्र उपचार करना 'उपचरित' स्वभाव है, जैसे माजरि (विलाव) को सिंह कहना। वह उपचरित स्वभाव दो प्रकार का है १. कर्मज, २. स्वाभाविक। जीव के मूर्तत्व और अचेतनत्व उपचरित-कर्मज-स्वभाव हैं। सिद्धों के सर्वज्ञता और सर्वदृशिता स्वाभाविक-उपचरित-स्वभाव है—क्योंकि अनुपचरित नय से जीव के अमूर्त व चेतन स्वभाव हैं और सिद्ध आत्मज्ञ हैं।

[सूत्र १२३-१२४]

जीव और पुद्गल के भावों की संख्या—

जीवपुद्गलयोरेकविशितिः ॥२६॥

सूत्रार्थ—जीव में और पुद्गल में उपर्युक्त इककीस इककीस (११ सामान्य और १० विशेष) स्वभाव पाये जाते हैं ॥३५॥

विशेषार्थ—जीव में इककीस भाव बतलाये गये हैं जिससे स्पष्ट हो जाता है कि जीव में अचेतन स्वभाव और मूर्त्तस्वभाव भी हैं। इसी प्रकार पुद्गल में भी इककीस स्वभाव कहे गये हैं जिससे स्पष्ट है कि पुद्गल में चेतन और अमूर्त्तस्वभाव भी हैं।

शंका—छह द्रव्यों में जीव चेतन स्वभाव वाला और दोष पाँच द्रव्य (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य) अचेतन स्वभाव वाले हैं। यदि जीव में भी अचेतन स्वभाव मान लिया जायगा तो जीव में और अन्य पाँच द्रव्यों में कोई अन्तर नहीं रहेगा ?

समाधान—जीव में अचेतनसर्व दो अपेक्षा से कहा गया है।

(१) जीव में अनन्त गुण हैं। उनमें से चेतन गुण तो चेतनरूप है, अन्य गुण चेतनरूप नहीं हैं, क्योंकि एक गुण में दूसरा गुण नहीं होता है।

'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥५/४७॥' [तत्त्वार्थ-सूत्र]

इस सूत्र में गुण का लक्षण बतलाते हुये जो 'निर्गुण' शब्द दिया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक गुण अन्य गुणों से रहित होता है। यदि चेतनगुण के अतिरिक्त अन्यगुणों को भी चेतनरूप मान लिया जाय तो संकर दोष आ जायगा अथवा चेतन के अतिरिक्त अन्यगुणों के अभाव का प्रसंग आ जायगा। इसलिये जीव में चेतनगुण के अतिरिक्त अन्य गुण चेतनरूप नहीं हैं अर्थात् अचेतन हैं। श्री १०८ अकलंक देव ने स्वरूप सम्बोधन में कहा भी है—

प्रमेयत्वादिभिर्भौरचिदात्मा चिदात्मकः ।

ज्ञानदर्शनतरस्मैल्लेतनाचेतनात्मकः ॥३॥

अर्थ—प्रमेयत्व आदि धर्मों की अपेक्षा आत्मा अचित् है और ज्ञान, दर्शन

की अपेक्षा से चिदात्मक है। अतएव प्रात्मा चेतनात्मक भी है और अचेतनात्मक भी है।

(२) जीव अनादिकाल से कभी से दैवा हुआ है। उन कमों ने जीव का चेतनगुण घात रखा है। कहा भी है—

का वि अउवा दीसधि पुगल-दव्वस्स परिसी सत्ती ।

केवल-णाणसहावो विणासिदो जाइ जीवस्स ॥२११॥

[स्वा० का० अ०]

अर्थ—पुद्गल द्रव्य की कोई ऐसी अपूर्व कर्त्ति है, जिससे जीव का केवलज्ञान-स्वभाव भी नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार जितने अंशों में चेतनगुण का घात हो रहा है, उतने अंशों में अचेतनभाव है। जीव के पांच स्वतत्त्व-भावों में से एक औदयिक भाव है, जिसके इक्कीस भेदों में से एक अज्ञान (अचेतन) भी भेद है। कहा भी है—

‘ओपशमिकज्ञायिकौ भावौ मिश्रद्वच जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-
परिणामिकौ च ॥१॥ गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्ध-
लेश्यादचतुर्चतुर्लयेकैकैकषड्भेदाः ॥६॥ [तत्त्वार्थ-सूत्र अध्याय २]

इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्र में भी अज्ञान (अचेतन) भी जीव का स्वतत्त्व भाव कहा गया है। वयोंकि जीव का यह अचेतन भाव द्रव्य कमों के सम्बन्ध से होता है और पौद्गलिक कर्म जीव से भिन्न द्रव्य हैं, इसलिये असद्गृह्णित अवहारनय की अपेक्षा से जीव में अचेतन भाव है।

‘जीवस्याद्यसद्भूतव्यवदारेणाचेतनस्वभावः’

[आलापपद्धति सूत्र १६२]

इसी प्रकार कर्मबन्ध के कारण जीव मूर्तरूप परिणामन कर रहा है।

‘स्पर्शरसगंघवर्णासद्भावस्वभावं मूर्ते । स्पर्शरसगंघवर्णाऽभाव-
स्वभावममूर्ते । … अमूर्तः स्वरूपेण जीवः पररूपावेशान्मूर्तोऽपि ।’

[पञ्चास्तिकाय गा० ६७ टीका]

अर्थ—स्पर्श, रस, गन्ध, वरण का सद्भाव जिसका स्वभाव है वह मूर्त है; स्पर्श, रस, गन्ध, वरण का अभाव जिसका स्वभाव है वह अमूर्त है। जीव स्वरूप से अमूर्त है किन्तु पररूप से अनुरक्त होने की अपेक्षा मूर्त भी है।

बंधं पडि एयत्तं लक्षणादो हृवद्द तस्य णाणात् ।

तम्हा असुत्तिभावोऽणेयंतो होइ जीवरस ॥ [सर्वार्थसिद्धि २/७]

अर्थ—आत्मा और कर्म बन्ध की अपेक्षा से एक हैं तो भी लक्षण की अपेक्षा वह भिन्न हैं। इसलिये जीव का अमूर्तिक भाव अनेकान्तरूप है। वह बंध की अपेक्षा से मूर्त है और स्वभाव अपेक्षा से मूर्त नहीं है।

**‘कर्म सम्बन्धवसेण पौदगलभावमुवग्यजीवद्व्याणं च पच्च-
कर्खेण परिच्छित्ति कुणाइ ओहिणाणं ।’ [जयध्वल पु० १ पृ० ४३]**

अर्थ—कर्म के सम्बन्ध से पुदगलभाव (मूर्तभाव) को प्राप्त हुये जीवों को जो प्रत्यक्ष रूप से जानता है उसे अविज्ञान कहते हैं।

जीव में यह मूर्त भाव पौदगलिक कर्मों के सम्बन्ध से आया है इसलिये जीव में यह भूर्तभाव असद्भूत-व्यवहारनय का विषय है। ‘जीवस्यात्य-
सद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः’ [आलापपद्धति सूत्र १६४]—अर्थात् असद्भूत-व्यवहारनय से जीव के भी मूर्तस्वभाव है। इसका विशेष कथन सूत्र १०३ की टीका में भी है।

पुदगल में चेतन स्वभाव कहने का कारण यह है कि पौदगलिक कर्म आत्म-परिणामों से अनुरंजित होने के कारण कथंचित् चेतन्य है किन्तु पुदगल द्रव्य स्वभाव की अपेक्षा अचेतन है। कहा भी है—

**‘पौरुषेयपरिणामात्मुरक्तिजत्वात् कर्मणः स्याच्चैतन्यम्, पुदगलद्रव्या-
देशाच्च स्याद्चेतनत्वमिति ।’ [राजवार्तिक ५/१६/२४]**

अर्थ—‘कर्म’ पुरुष के परिणामों से अनुरंजित होने के कारण कथंचित् चेतन हैं, पुदगलद्रव्य की हृष्टि से वह अचेतन हैं।

आत्मा पुदगल द्रव्य से भिन्न दूसरा द्रव्य है। क्योंकि आत्मपरिणामों से अनुरंजित होने के कारण पुदगल में चेतनभाव है अतः यह असद्भूत व्यवहार

नय का विषय है। कहा भी है—

‘असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः।’

[आलापपद्धति सूत्र १६०]

अर्थ—असद्भूतव्यवहारनय से कर्म नोकर्म के भी चेतनस्वभाव है। सूत्र १६० में भी पुद्गल के चेतनस्वभाव बतलाया गया है।

इसी प्रकार पुद्गल में अमूर्त्तभाव सिद्ध कर लेना चाहिये।

धर्मादि तीन द्रव्यों में स्वभावों की संख्या—

चेतनस्वभावः मूर्त्तस्वभावः विभावस्वभावः अशुद्धस्वभावः
उपचरितस्वभावः एतैविना धर्मादि [धर्मधिर्माकाशानाँ]
श्रयाणां षोडशस्वभावाः सन्ति ॥३०॥

सूत्रार्थ—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य तथा आकाशद्रव्य इन तीन द्रव्यों में उपर्युक्त २१ स्वभावों में से चेतनस्वभाव, मूर्त्तस्वभाव, विभावस्वभाव, उपचरित स्वभाव और अशुद्धस्वभाव ये पांच स्वभाव नहीं होते, शेष सोलह स्वभाव होते हैं। अर्थात् १. अस्तिस्वभाव, २. नास्तिस्वभाव, ३. नित्यस्वभाव, ४. अनित्यस्वभाव, ५. एकस्वभाव, ६. अनेकस्वभाव, ७. भेदस्वभाव, ८. अभेदस्वभाव, ९. परमस्वभाव, १०. एकप्रदेशस्वभाव, ११. अनेकप्रदेशस्वभाव, १२. अमूर्त्तस्वभाव, १३. अचेतनस्वभाव, १४. शुद्धस्वभाव, १५. भव्यस्वभाव, १६. अभव्यस्वभाव — ये १६ स्वभाव होते हैं।

विशेषार्थ—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और पुद्गलद्रव्य ये पांचों ही द्रव्य अचेतन स्वभाव वाले हैं, मात्र जीवद्रव्य चेतनस्वभावी है, किन्तु जीव के साथ बंध को प्राप्त हो जाने से पुद्गल में तो चेतनस्वभाव हो जाता है; शेष चार द्रव्य (धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य) जीव के साथ बंध को प्राप्त नहीं होते, इसलिये इन चारों द्रव्यों में चेतनस्वभाव का निषेध किया गया है।

मात्र पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है। शेष पांच द्रव्य (जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) अमूर्तिक हैं, किन्तु पुद्गल के साथ बंध को प्राप्त हो जाने

से जीव में मूर्तिक स्वभाव हो जाता है। शेष चार द्रव्य (धर्म, अधर्म, आकाश, काल) पुद्गल के साथ बंध को प्राप्त नहीं होते, इसलिए इनमें मूर्ति-स्वभाव का निषेध किया गया है।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य ये चारों द्रव्य बंध को प्राप्त नहीं होते इसलिये इनमें विभावस्वभाव, उपचरितस्वभाव और अशुद्धस्वभाव भी नहीं होते, क्योंकि अन्य द्रव्य के साथ बंध को प्राप्त होने पर ही द्रव्य अशुद्ध होता है, विभावरूप परिणामता है और कथंचित् उस अन्य द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करने से अन्यद्रव्य के स्वभाव का उपचार होता है। जीव और पुद्गल बंध को प्राप्त होते हैं, इसलिये उनमें विभावस्वभाव, उपचरित स्वभाव और अशुद्धस्वभाव का कथन किया गया है।

कालद्रव्य में स्वभावों की संख्या—

तत्र बहुप्रदेशत्वविना कालस्थ नन्दयसा स्वभावाः ॥३१॥

सूत्रार्थ—(इककीस स्वभावों में से पाँच स्वभावों का निषेध करके सूत्र ३० में शेष सौलह स्वभाव धर्मादिक तीन द्रव्यों में बतलाये गये थे) उन सौलह स्वभावों में से बहुप्रदेश-स्वभाव के बिना शेष पन्द्रह स्वभाव कालद्रव्य में पाये जाते हैं।

विशेषार्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं, इसीलिये इनको पंचास्तिकाय कहा गया है, किन्तु कालद्रव्य अर्थात् कालाण् एकप्रदेशी है, इसलिये उसको बहुप्रदेशी अर्थात् कायवान् नहीं कहा गया है।

‘अजीबकाय धर्मादर्थकाशपुद्गलाः ।’ ॥३१/१॥ | तत्वार्थसूत्र|

अर्थ—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य ये चारों अजीब भी हैं और कायवान् भी हैं।

जीव, पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य यद्यपि बहुप्रदेशी हैं तथापि अखण्ड की अपैक्षा से इनमें एकप्रदेशी-स्वभाव भी है।

यद्यपि पुद्गल परमाणु भी एकप्रदेशी है तथापि स्त्रिघ-रूक्ष गुण के कारण वह पुद्गल परमाणु बंध को प्राप्त होने पर बहुप्रदेशी हो जाता है,

इसलिये पुढ़गल परमाणु उपचार से बहुप्रदेशी है। कहा भी है—

“एयपदेसो वि अणु णाणाखंघपदेसदो होवि ।

बहुदेसो उवयारा तेण य काश्चो भरण्ति सञ्चरहु ॥२६॥

[द्रव्यसंग्रह]

अर्थ—एकप्रदेशी भी परमाणु अनेक स्कंघरूप बहुप्रदेशी हो सकता है। इस कारण सर्वज्ञदेव उपचार से पुढ़गल परमाणु को काय (बहुप्रदेशी) कहते हैं।

स्त्रिघ रूक्ष गुण न होने के कारण कालाणु बंध को प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये उपचार से भी बहुप्रदेशी नहीं है।

एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुढ़गलयोर्मताः ।

धर्मदीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥३१॥

अर्थ—जीव और पुढ़गल द्रव्यों में इक्कीस, धर्म, अधर्म और आकाश इन तीन द्रव्यों में सोलह तथा काल द्रव्य में पन्द्रह स्वभाव जानना चाहिये।

॥ इति स्वभावाधिकार ॥

प्रमाण अधिकार

ते कुतो ज्ञेयाः ? ॥३२॥

सूत्रार्थ—वे इक्कीस प्रकार के स्वभाव कैसे जाने जाते हैं, अर्थात् किसके द्वारा जाने जाते हैं ?

प्रमाणनयविवक्षातः ॥३३॥

सूत्रार्थ—प्रमाण और नय की विवक्षा के द्वारा उन इक्कीस स्वभावों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है।

विशेषार्थ—‘प्रमाणनयैरधिगमः ॥१६॥’ [त० स०] द्वारा भी कहा गया है कि प्रमाण व नय के द्वारा वस्तु का ज्ञान होता है।

प्रमाण का लक्षण—

सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम् ॥३४॥

सूत्रार्थ—सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

विशेषार्थ—संशय विपर्यय और अनव्यवसाय से रहित ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समीचीन ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

अन्युनमन्तिरिक्तं यथातश्च विना च विपरीतात् ।

निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

[रत्नकरण शावकाचार]

अर्थ—जो ज्ञान न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता रहित और सन्देह रहित, जैसा का तैसा जानता है, शास्त्र के ज्ञाता पुरुष उसको सम्यक्ज्ञान कहते हैं।

अनादि को सादि रूप जानना, अनन्त (अन्त रहित) को सान्त रूप जानना, अविद्यमान पर्याय को विद्यमान रूप से जानना, अभाव रूप पर्यायों को सद्भाव रूप से जानना, अनियत को नियत रूप जानना सम्यग्ज्ञान नहीं है, क्योंकि उसने यथार्थ नहीं जाना है।

प्रमाण के भेद—

तद्द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥३५॥

सूत्रार्थ—प्रत्यक्ष प्रमाण और इतर अर्थात् परोक्ष प्रमाण के भेद से वह प्रमाण दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—तत्त्वार्थ सूत्र में भी ‘तत्प्रमाणे ॥१/१०॥’ इस सूत्र द्वारा प्रमाण के दो भेद बतलाये हैं। इतर से अभिप्राय परोक्ष का है। अनुमान, उपभान, शब्द प्रमाण परोक्षप्रमाण हैं। जो इन्द्रिय ज्ञान है वह परोक्षप्रमाण है।

प्रति + अक्ष = प्रत्यक्ष। ‘अन्त्येति व्याप्तोति जानातीत्यच्च आत्मा, इस प्रकार अक्ष शब्द का अर्थ आत्मा है। केवल आत्मा के प्रति जो नियत है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। [सर्वार्थसिद्धि १/१२]

जो ज्ञान इन्द्रिय आदि और प्रकाश आदि की सहायता के बिना पदार्थों को स्पष्ट जानता है उसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। कहा भी है—

इन्द्रियानिन्द्रियापेत्तमुखमव्यभिचारि च ।

साकारमहरणं यत्स्यात्तप्रत्यक्षं प्रचक्ष्यते ॥१॥१७॥ [तत्त्वार्थसार]

अर्थ—इन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन) की अपेक्षा से रहित और व्यभिचार रहित जो पदार्थों का साकार ग्रहण है उसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहा गया है। सकल प्रत्यक्ष जो केवल ज्ञान वह सिद्ध च अरहंत भगवान् के ही होता है।

परोक्ष=परः + अक्ष । आत्मा से भिन्न इन्द्रियादि जो पर, उनकी सहायता की अपेक्षा रखने वाला ज्ञान उत्पन्न ज्ञान है। कहा गया है—

‘पराणीन्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाहुनिमित्तं प्रतीत्य तदावरणकर्मज्ञयोपशमापेत्तस्यात्मनो मतिश्रुतं उत्पद्यमानं परोक्ष-मित्याख्यायते ।’ [सर्वार्थसिद्धि १।११]

अर्थात्—मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के, इन्द्रिय और मन तथा प्रकाश और उपदेशादिक बाहुनिमित्तों की सहायता से, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान उत्पन्न होते हैं, यतः ये दोनों ज्ञान परोक्ष हैं।

‘पराणीन्द्रियाणि आलोकादिश्च, परेषामायत्तं ज्ञानं परोक्षम् ।’

[ध्वल पृ० १३ पृ० २१२]

अर्थ—पर का अर्थ इन्द्रियाँ और आलोकादि हैं, और पर अर्थात् इन इन्द्रियादि के अधीन जो ज्ञान होता है वह परोक्ष ज्ञान है।

समुपात्तानुपात्तस्य प्राधान्येन परस्य यत् ।

पदार्थोनां परिज्ञानं तत्परोक्षमुदाहृतम् ॥१६॥ [तत्त्वार्थसार]

अर्थ—अपने से भिन्न जो समुपात्त इन्द्रियाँदि और अनुपात्त प्रकाशादि (निमित्तों) की मुख्यता से जो पदार्थों का ज्ञान वह परोक्ष कहा जाता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद हैं, सकल प्रत्यक्ष और एकदेश प्रत्यक्ष। अब एक-देश-प्रत्यक्ष ज्ञान का कथन करते हैं—

अवधिमनःपर्ययावेकदेशप्रत्यक्षी ॥ ३६ ॥

अर्थ— अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान ये दोनों एकदेश प्रत्यक्ष हैं ।

विशेषार्थ— अवधि का अर्थ मर्यादा या सीमा है । जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए ज्ञान है वह अवधिज्ञान है । कहा भी है—

‘अवधिर्मर्यादा सीमेत्यर्थः । अवधिसहृचरितं ज्ञानमवधिः । अवधिर्द्वच सः ज्ञानं च तदवधिज्ञानम् । नातिव्याप्तिः रुद्धिबलाधान-वशेन क्वचिदेव ज्ञाने तस्यावधिशब्दस्य प्रवृत्तेः । किमद्दुँ तत्य ओहिसहो परुविदो ? ए; एदम्हादो हेद्विमसब्दवणाणाणि सावहियाणि उवरिमणाणं शिरवहियमिदि जाणावण्डुँ । ए गणपञ्जवणाणेण चियहिचारो; तस्स वि अवहिणाणादो अत्पविसयत्तेण हेद्विमत्तब्दभुव-गमादो । पश्चोगस्स पुण द्वाणविवज्जासो संजमसहगयत्तेण क्यवि-मेसपदुप्यायणाकलो त्ति ए कोच्छ दोसो ।’ [जयधबल पु० १ पृ० १७]

अर्थ— अवधि, मर्यादा और सीमा ये शब्द एकार्थवाची हैं । अवधि से सहृचरित ज्ञान भी अवधि कहलाता है । इस प्रकार अवधिरूप जो ज्ञान है वह अवधिज्ञान है । यदि कहा जाय कि अवधिज्ञान का लक्षण इस प्रकार करने पर मतिज्ञान अलक्षणों में यह लक्षण चला जाता है, इसलिये अतिव्याप्ति दोष प्राप्त होता है, सो ऐसा नहीं है, क्योंकि रुद्धि की मुख्यता से किसी एक ही ज्ञान में अवधि शब्द की प्रवृत्ति होती है । अवधिज्ञान से नीचे के सभी ज्ञान सावधि हैं और ऊपर का केवलज्ञान निरवधि है, इस बात का ज्ञान करने के लिये अवधिज्ञान में अवधि शब्द का प्रयोग किया है । यदि वहाँ जाय कि इस प्रकार का कथन करने पर मनःपर्ययज्ञान से व्यभिचार दोष आता है, सो भी बात नहीं है, क्योंकि मनःपर्ययज्ञान भी अवधिज्ञान से अत्पविषय वाला है, इसलिये विषय की अपेक्षा उसे अवधिज्ञान से नीचे का स्वीकार किया है । फिर भी संयम के साथ रहने के कारण मनःपर्ययज्ञान में जो विशेषता आती है उस विशेषता को दिखलाने के लिये मनःपर्ययज्ञान को अवधिज्ञान से नीचे न रखकर ऊपर रखा है, इसलिये कोई दोष नहीं है ।

वह अवधिज्ञान तीन प्रकार का है—देशावधि, परमावधि और सवविधि । अथवा दो प्रकार का है—भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय । अथवा अह प्रकार का है—हीयमान, वर्धमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी और अननुगामी ; अवधिज्ञान का विषय रूपी पदार्थ है । कहा भी है—

‘रूपिष्ववधेः ।’ [तत्त्वार्थसूत्र १/२७]

इसलिये अवधिज्ञान पुदगल द्रव्य और संसारी जीव को जानता है । कहा भी है—

‘परमाणुपञ्चांतासेसपोगलदब्बाणमसंखेल्लोगमेत्तखेत्तकालभावाणं कम्भसंबंधवसेण पोगलभावमुवग्यजीवदब्बाणं च पञ्चकखेण परिच्छिक्ति कुण्णइ ओहिणाणं ।’ [जयधबल पु० १ पू० ४३]

अर्थ— महास्कंध से लेकर परमाणु पर्यन्त समस्त पुदगल द्रव्यों को, असंख्यातलोकप्रमाण धेन को, असंख्यातलोकप्रमाण काल को और असंख्यातलोकप्रमाण भावों को तथा कर्म के सम्बन्ध से पुदगल भाव को प्राप्त हुए जीवों को जो प्रत्यक्ष रूप से जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं ।

गोमटसार जीवकाण्ड माथा ५६२ में ‘रूब्री जीवा’ शब्दों द्वारा संसारी को रूपी कहा है तथा २१ स्वभावों में जीव के मूर्त्स्वभाव कहा है इसलिए संसारी जीव अवधिज्ञान का विषय बन जाता है ।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और सिद्धजीव ये अवधिज्ञान के विषय नहीं हैं । [धबल पु० १५ पू० ७ व ३२]

शोरइयदेवतित्थयरोहिकखेत्तरसबाहिरं एदे ।

जाणंति सञ्चदो खलु सेसा देसेण जाणंति ॥

[धबल पु० १३ पू० २६५]

अर्थ— नारकी, देव और तीर्थकर का अवधिज्ञान सवज्ज्ञ से जानता है और शेष जीवों का अवधिज्ञान शरीर के एकदेश से जानता है ।

मनःपर्ययज्ञान— ‘परकीयमनोगतोऽर्थो मनः, मनसः पर्यायाः विशेषाः मनःपर्यायाः, तान जानातीति मनःपर्ययज्ञानम् । ... एदं वयम्

देसामासिर्थं । कुदो ? अचितियाणामद्वचितियाणं च अत्थाणमवग-
मादो । अथवा मणपञ्जवसरणा जेण रुढिभवा तेण चितिए वि
अचितिए वि अत्थे वद्गमाणणाणविसया त्ति घेत्तव्वा । ओहिणाणं च
एदं पि पञ्चकस्तं, अणिदियजत्तादो ।' [धबल पु० १३ पृ० २१२]

अर्थ—परकीय मन को प्राप्त हुए अर्थ का नाम मन है और मन की (मनोगत अर्थ की) पर्यायों अर्थात् विशेषों का नाम मनःपर्यय है । उन्हें जो जानता है वह मनःपर्यय ज्ञान है । यह वचन देशार्थक है, क्योंकि इसमें अचिन्तित और ग्रन्थचिन्तित अर्थों का भी ज्ञान होता है । अथवा 'मनःपर्यय' यह संज्ञा रूढिजन्य है, इसलिये चिन्तित और अचिन्तित दोनों प्रकार के अर्थ में विद्यमान ज्ञान को विषय करने वाली यह संज्ञा है, ऐसा यहां प्रहरण करना चाहिये । अवधिज्ञान के समान यह ज्ञान भी प्रत्यक्ष है, क्योंकि यह इन्द्रियों से नहीं उत्पन्न होता ।

'ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥११२३॥' [तत्त्वार्थसूत्र]

अर्थ—ऋजुमति और विपुलमति के भेद से मनःपर्यय ज्ञान दो प्रकार का है ।

ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान ऋजुमतोगत अर्थ को विषय करता है, ऋजु-
वचनगत अर्थ को विषय करता है और ऋजुकायगत अर्थ को विषय करता है [धबल पु० १३ पृ० ३२६ मू० ६२] । विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान ऋजुमनोगत
अर्थ को जानता है, अनृजुमनोगत अर्थ को जानता है, ऋजुवचनगत अर्थ को जानता है, अनृजुकायगत अर्थ को जानता है, ऋजुकायगत अर्थ को जानता है और अनृजुकायगत अर्थ को जानता है । [धबल पु० १३ सूत्र ७० पृ० ३४०]

ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानी काल की अपेक्षा जघन्य से दो तीन भव और उत्कर्ष से सात और आठ भवों को जानता है, क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य से आठ कोश भीतर की बात और उत्कर्ष से आठ योजन के भीतर की बात जानता है, बाहर की नहीं जानता । [धबल पु० १३ पृ० ३३८-३३९]

विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान काल की अपेक्षा जघन्य से सात आठ भवों
और उत्कर्ष से असंख्यात भवों को जानता है, क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य से आठ

योजन और उत्कर्ष से मानुषोत्तरशील अर्थात् ४५ लाख योजन के भीतर की बात को जानता है। [ध्वल पु० १३ पृ० ३४२-३४३]

केवलं सकलप्रत्यक्षं ॥३७॥

सूत्रार्थ—केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

विशेषार्थ—चार धाति कर्मों का क्षय होने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। कहा भी है—

'मोहन्याज्ञानदर्शनावरणान्तरायस्त्वयाच्च केवलम् ॥१०॥'

[तत्त्वार्थसूत्र]

अर्थ—मोहनीय कर्म के क्षय होने से, पुनः ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों धाति कर्मों का युगपत् क्षय होने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

उस केवलज्ञान का विषय भूत-अभूत आदि सर्वद्रव्य और उनकी भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल की सर्व पर्यायें हैं। कहा भी है—

'सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥११२६॥'

[तत्त्वार्थसूत्र]

अर्थ—केवलज्ञान का विषय सर्वद्रव्य और सर्वपर्यायें हैं।

तत्कालिगेव सब्वे सदसब्भूदा हि पञ्जया तासि ।

वहृते ते णाणे विसेसदो दब्बजादीरण ॥३७॥ [प्रबन्धनसार]

अर्थ—उन जीवादि समस्त द्रव्यों की सर्व विद्यमान पर्यायों को और अविद्यमान पर्यायों को तात्कालिक अर्थात् वर्तमान पर्याय की तरह विशेषता सहित ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान जानता है।

इसकी टीका में श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने इसका दृष्टान्त देते हुए कहा है—

'दृथते हि छद्मस्थस्यापि वर्तमानभिच व्यतीतमनागतं या वस्तु चिन्तयतः संविदालंभितस्तदाकारः ।'

अर्थ—जगत् में देखा जाता है कि छद्मस्थों का ज्ञान भी जैसे वर्तमान अस्तु का चित्तवन करते हुए उसके आकार का अवलम्बन करता है उसी प्रकार

भूत और भविष्यत् वस्तु का चित्तवन करते हुए उसके प्रकार का अबलम्बन करता है।

श्री अनन्ततीर्थ आचार्य ने भी प्रमेयरत्नमाला अध्याय २ सूत्र १२ की टीका में कहा है—

‘कथमतीन्द्रियज्ञानस्य वैशाश्यमिति चेत् ? यथा सत्यस्वप्नज्ञानस्य भावनाज्ञानस्य चेति । दृश्यते हि भावनावल्लादेत्युपेतु वस्तुजोऽयि विशददर्शनमिति ।’

अर्थ—अतीन्द्रिय ज्ञान के विशदता कैसे सम्भव है ? जैसे कि सत्य स्वप्न ज्ञान के और भावना (भावसिक) ज्ञान के विशदता सम्भव है । भावना के बल से दूरदेशवर्ती दूरकालवर्ती (अतीत, अनागत) वस्तु का भी विशद दर्शन पाया जाता है ।

अर्थात् जिस प्रकार छथस्य भी भावना या चित्तवन के बल से अतीत अनागत पर्यायों को स्पष्ट ज्ञान लेता है उसी प्रकार केवली भी केवलज्ञान के बल से अतीत अनागत पर्यायों को स्पष्ट जानते हैं । किन्तु अतीत और अनागत पर्यायें ज्ञान का विषय हो जाने मात्र से विद्यमान या सद्भाव रूप नहीं हो जातीं, क्योंकि छथस्थज्ञान भी और केवलज्ञान भी अविद्यमान (अतीत, अनागत) पर्यायों को अविद्यमान (अभाव) रूप से जानता है, इसका कारण यह है कि द्रव्य में मात्र वर्तमान पर्याय का सद्भाव रहता है और शेष पर्यायों का अभाव अर्थात् प्रागभाव या प्रधर्वसाभाव रहता है । सर्वथा अभाव नहीं है, क्योंकि वे शक्तिरूप से रहती हैं ।

श्री वीरसेन आचार्य ने जयधवल में केवलज्ञान की निम्न प्रकार विशद ज्यास्था की है—

‘केवलमसहायं इन्द्रियालोकमनस्कारनिरपेक्षत्वात् । आत्मसहाय-मिति न तत्केवलमिति चेत् ? न, ज्ञानव्यतिरिक्तात्मनोऽसत्त्वात् । अर्थ-सहायत्वात् केवलमिति चेत् ? न, विनष्टासुत्पन्नातीतानागतार्थेष्वपि तत् प्रवृत्त्युपलम्भात् । असति प्रवृत्तौ खरविषाणेऽपि प्रवृत्तिरस्त्विति चेत् ? न, तस्य भूतभविष्यच्छक्तिरूपतया ऽत्यसत्त्वात् । वर्तमानपर्या-

याणामेव किमित्यर्थत्वमिष्यते इति चेत् । न, 'अर्थते परिच्छिद्यते' इति न्यायतस्तत्रार्थत्वोपलभात् । तदनागतातीतपर्यायेष्वपि समानमिति चेत् ? न, तद्वप्त्यग्रणस्य वर्तमानार्थप्रहणपूर्वकत्वात् । आत्मार्थव्यतिरिक्तसहायनिरपेक्षत्वाद्वा केवलमसहायम् । केवलं च तज्ज्ञानं च केवलज्ञानम् ।'

[अथकथस पु० १ पृष्ठ २१-२३]

अर्थ—असहाय ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं, क्योंकि वह इन्द्रिय, प्रकाश और मनस्कार की अपेक्षा से रहित है ।

शंका—केवलज्ञान आत्मा की सहायता से होता है. इसलिये उसे केवल प्रथाति असहाय नहीं कह सकते ?'

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञान से भिन्न आत्मा का सत्त्व नहीं है, इसलिये केवल केवलज्ञान असहाय है ।

शंका—केवलज्ञान प्रथ की सहायता लेकर प्रवृत्त होता है इसलिये केवल प्रथाति असहाय नहीं है ?

समाधान—नहीं, नष्ट हुए अतीत पदार्थों में और अनुत्पन्न अनागत पदार्थों में केवलज्ञान की प्रवृत्ति पाई जाती है, इसलिये केवलज्ञान प्रथ की सहायता से नहीं होता ।

शंका—यदि विनष्ट और अनुत्पन्नरूप पस्तु पदार्थों में केवलज्ञान की प्रवृत्ति होती है तो खरविषारण में भी उसकी प्रवृत्ति होनी चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि खरविषारण का जिस प्रकार वर्तमान में सत्त्व नहीं पाया जाता है, उसी प्रकार उसका भूतशक्ति और भविष्यतशक्तिरूप से भी सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः उसमें केवलज्ञान की प्रवृत्ति नहीं होती है ।

शंका—वर्तमान पर्यायों को ही अर्थ क्यों स्वीकार किया जाता है ? प्रथाति अतीत और अनागत पर्यायों को अर्थ क्यों नहीं माना जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'जो जाना जाता है उसको अर्थ कहते हैं' इस व्युत्पत्ति के अनुसार वर्तमान पर्यायों में अर्थपना पाया जाता है ।

शंका—वर्तमान पर्याय के समान अतीत और अनागत पर्यायों में भी यह व्युत्पत्ति-अर्थ पाया जाता है अर्थात् जिस प्रकार वर्तमान पर्यायें जानी जाती हैं उसी प्रकार अतीत और अनागत पर्यायें भी जानी जाती हैं, अतः अतीत और अनागत पर्यायों को भी अर्थ कहना चाहिये ?

समाधान —नहीं, क्योंकि अतीत और अनागत पर्यायों का ग्रहण (ज्ञान) वर्तमान अर्थ के ग्रहण पूर्वक होता है इसलिये अतीत, अनागत पर्यायों की 'अर्थ' संज्ञा स्वीकार नहीं की गई ।

केवलज्ञान आत्मा और अर्थ से अतिरिक्त इन्द्रियादि की सहायता वी अपेक्षा से रहित है, इसलिये भी वह केवल अर्थात् असहाय है । केवल अर्थात् असहाय जो ज्ञान है उसको केवलज्ञान समझना चाहिये ।

[जयधवल पु० १ पृ० २१-२४]

जिस प्रकार से वर्तमान पर्याय की 'अर्थ' संज्ञा है यदि उसी प्रकार अतीत और अनागत पदार्थों की भी 'अर्थ' संज्ञा होती तो ज्ञेयों के परिणामन के कारण केवलज्ञान में परिणामन सम्भव नहीं हो सकता था । ज्ञेयों के परिणामन अनुसार केवलज्ञान में भी परिणामन होता है यह बात असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि निम्न आर्षत्रावर्यों से यह सिद्ध है—

'ज्ञेयपदार्थः प्रतिक्षणं भङ्गत्रयेण परिणमन्ति तथा ज्ञानमपि परिच्छिक्ष्यपेक्षया भङ्गत्रयेण परिणमति ।' [प्रबचनसार गाथा ८ टीका]

अर्थ—जिस प्रकार ज्ञेय पदार्थों में प्रतिक्षण उत्पाद, व्यय, धौव्य होता रहता है उसी के अनुसार केवलज्ञान में भी जानने की अपेक्षा उत्पाद, व्यय, धौव्य होता रहता है ।

'येन येनोत्पादव्ययधौव्यरूपेण प्रतिक्षणं ज्ञेयपदार्थः परिणमन्ति तत्परिच्छिक्ष्याकारेणानीहितवृत्या सिद्धज्ञानमपि परिणमति तेन कारणेनोत्पादव्ययत्वम् ।' [वृहद्ब्रह्मसंग्रह गाथा १४ टीका]

अर्थ—ज्ञेय पदार्थ जिस जिस त्रिकार उत्पाद, व्यय, धौव्य रूप से प्रतिक्षण परिणामन करते हैं, उसी उसी प्रकार से सिद्धों का केवलज्ञान भी उन उन ज्ञेय-

पदार्थों के जानने रूप आकार से दिना इच्छा परिणामन करता है ।

‘ए च एण्विसेसदुवारेण उपज्जमाणस्स केवलणाणांसस्स केवल-
णाणत्त’ फिट्टिदि; पमेयवसेण परियत्तमाणसिद्धजीवणाणांसाणं पि
केवलणाणत्तभावप्पसंगादो ।’ [जयधबल पृ० १ पृ० ५०-५१]

अर्थ—यदि कहा जाय कि केवलज्ञान का अंश ज्ञानविशेष रूप से उत्पन्न होता है, इसलिये उसका केवलज्ञानत्व हो नष्ट हो जाता है, तो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा जानने पर प्रमेय के निमित्त से परिवर्तन करने वाले सिद्धजीवों के ज्ञानांशों को भी केवलज्ञान के अभाव का प्रमाण प्राप्त होता है । अर्थात् यदि केवलज्ञान के अंश मतिज्ञानादि ज्ञानविशेष रूप से उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनमें केवलज्ञान पहीं माना जा सकता है तो प्रमेयों के निमित्त से सिद्धजीवों के ज्ञान में परिवर्तन होता है, अतः सिद्धों का ज्ञान भी केवलज्ञान नहीं बनेगा ।

‘प्रतिक्षणं विवर्तमानर्थीनपरिणामि केवलं कथं परिष्ठिनत्तीति
चेन्न, ज्ञेयसमविपरिवर्तिनः केवलस्य तद्विरोधात् ।’

[धबल पृ० १ पृ० १६८]

अर्थ—अपरिवर्तमशील केवलज्ञान प्रत्येक क्षण में परिवर्तनशील पदार्थों को कैसे जानता है ? ऐसी शंका ठीक नहीं है, क्योंकि ज्ञेय पदार्थों को जानने के लिये तदनुकूल परिवर्तन करने वाले केवलज्ञान के ऐसे परिवर्तन मान लेने में कोई विरोध नहीं आता है ।

इस प्रकार जो पर्याये प्रतिक्षण उत्पन्न होती हैं उनको केवलज्ञान सद्भाव रूप से जानता है । और जो उत्पन्न होकर विनष्ट हो चुकी हैं या उत्पन्न नहीं हुई हैं उनको अभाव रूप से जानता है अन्यथा ज्ञेयों के परिणामन के अनुकूल केवलज्ञान में परिणामन नहीं बन सकता ।

मतिश्रुते परोक्षे ॥३८॥

अर्थ—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्षज्ञान हैं ।

है। इसलिये मतिज्ञान परोक्ष है। कहा भी है—

‘तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।’

[तत्त्वार्थसूत्र १/१४]

अर्थ—उस मतिज्ञान में इन्द्रियों और मन नियित होते हैं, अर्थात् वह मतिज्ञान इन्द्रिय और मन की अपेक्षा रखता है।

‘श्रुतं मतिपूर्वं …’

[तत्त्वार्थसूत्र १/२०]

अर्थ—मतिज्ञान पूर्वक श्रुतज्ञान होता है।

इस प्रकार आत्मा से पर जो इन्द्रिय और मन, उसकी सहायता की अपेक्षा रखने से मति और श्रुत ये दोनों ज्ञान परोक्ष हैं।

‘मतिश्रुतयोर्निर्बन्धो द्रव्येऽबसर्वपर्यायेषु ।’

[तत्त्वार्थसूत्र १/२६]

अर्थ—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय सर्व द्रव्यों की असर्वपर्यायें हैं, अर्थात् द्रव्यों की विकालवर्ती कुछ पर्यायों को मतिज्ञान और श्रुतज्ञान जानते हैं।

॥ इस प्रकार प्रमाण का स्वरूप कहा गया ॥

नयाधिकार

तदवयवा नयाः ॥३६॥

सूत्रार्थ—प्रमाण के अवयव नय हैं।

विशेषार्थ—आगे सूत्र १८१ में ‘प्रमाणेन वस्तुसंगृहीतार्थेकांशो नयः ।’ इन शब्दों द्वारा यह कहा गया है कि जो प्रमाण के द्वारा प्रहण की हुई वस्तु के एक अंश को प्रहण करे वह नय है। इसी बात को श्री वीरसेन आचार्य ने घबल पु० १ पृ० ८३ पर कहा है—

‘प्रमाणपरिगृहीतार्थेकदेशे वस्त्वध्यवसायो नयः ।’

अर्थ—प्रमाण के द्वारा प्रहण की हुई वस्तु के एक अंश में वस्तु का निरचय करने वाला ज्ञान नय है।

नय के इस लक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रमाण के अवयव नय हैं। सूत्र १८१ में नय का लक्षण विभिन्न प्रकार से कहा गया है।

नयभेदा उच्चन्ते ॥४०॥

मूलार्थ—नय के भेदों को कहते हैं।

रिच्छ्यववहारणाया मूलमभेया णायाण सब्बाण ।

रिच्छ्यसाहणहेऽ दब्यपञ्जस्तिथ्या' मुराह ॥४॥

गाथा अर्थ—सम्पूर्ण नशों के निश्चयनय और व्यवहारनय ये दो मूलभेद हैं। निश्चय का हेतु द्रव्याधिक नय है और साधन का हेतु अर्थात् व्यवहार का हेतु पर्याधिक नय है।

विशेषार्थ—निश्चय नय द्रव्य में स्थित है और व्यवहारनय पर्याय में स्थित है। श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने भी समयसार गाथा ५६ की टीका में ‘व्यवहारनयः किल पर्यायाश्रित्वात्’ ‘निश्चयनयस्तु द्रव्याश्रित्वात्’ इन शब्दों द्वारा यह बतलाया है कि व्यवहारनय पर्याय के आश्रय है और निश्चयनय द्रव्य के आश्रय है। अर्थात् निश्चयनय का विषय द्रव्य है और व्यवहारनय का विषय पर्याय है।

ववहारो य वियप्तो भेदो तह पञ्जओ च्च एयद्वो ॥५७२॥

[गो० जी०]

‘व्यवहारेण विकल्पेन भेदेन पर्यायेण ।’ [समयसार गा० १२ टीका]

अर्थात्—व्यवहार, विकल्प, भेद और पर्याय ये सब एकार्यवाची शब्द हैं।

थोड़ेकि निश्चयनय का विषय द्रव्य है और व्यवहारनय का विषय पर्याय है, इसलिये यह कहा गया है कि निश्चय का हेतु द्रव्याधिक नय है और व्यवहार का हेतु पर्याधिक नय है।

आगे सूत्र २०४ में बतलाया है कि अभेद और अनुपचार रूप से जो वस्तु का निश्चय करे वह निश्चयनय है। सूत्र २०५ में बतलाया है कि भेद और उपचार से जो वस्तु का व्यवहार करे सो व्यवहार नय है।

इस प्रकार नय के मूलभेद दो हैं (१) निश्चयनय (२) व्यवहारनय अथवा

१. ‘रिच्छ्यसाहणहेऽमो’ इति पाठांतरम् । २. ‘पञ्जयदब्यतिथ्यं’ इति पाठांतरम् [नयचक्र] ।

(१) द्रव्यार्थिक नय (२) पर्यायार्थिक नय । इन दोनों नयों के आश्रय से ही भगवान् का उपदेश हुआ है । कहा भी है—

'द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च । तत्र न स्वल्बेकनयायत्ता देशाना किन्तु तदुभयायत्ता ।'

[पचास्तिकाय गाथा ४ टीका]

स्वर्ण—भगवान् ये दो नय फूहे हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक । वहाँ कथन एक नय के अधीन नहीं होता, किन्तु दोनों नयों के अधीन होता है ।

द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकः, नैगमः, संग्रहः, व्यवहारः, कठजुसूत्रः, शब्दः, समभिरूढः, एवंभूत इति नव नयाः स्मृताः ॥४१॥

सूत्रार्थ—द्रव्यार्थिक नय, पर्यायार्थिक नय, नैगम नय, संग्रह नय, व्यवहार नय, कठजुसूत्र नय, शब्द नय, समभिरूढ नय, एवंभूत नय ये नव नय माने गये हैं ॥४१॥

विशेषार्थ—इन नयों का स्वरूप इस प्रकार है—

द्रव्यार्थिक नय—द्रव्य जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक नय है । [सर्वार्थसिद्धि १/६] । द्रव्य का अर्थ सामान्य, उत्सर्ग और अनुवृत्ति है, इस को विषय करने वाला नय द्रव्यार्थिक नय है [सर्वार्थसिद्धि १/३३] । जो उन उन पर्यायों को प्राप्त होता है, प्राप्त होगा अथवा प्राप्त हुआ था वह द्रव्य है । द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है, वह द्रव्यार्थिक नय है [घबल पु. १ पृ. ८३] ।

आगे सूत्र १८४ में भी द्रव्यार्थिक नय का लक्षण इसी प्रकार कहा है ।

पर्यायार्थिक नय—'पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः ॥१६१॥' [आलापपद्धति] [सर्वार्थसिद्धि १/६] । अर्थात्—पर्याय ही जिस नय का प्रयोजन है, वह पर्यायार्थिक नय है । पर्याय का अर्थ विशेष, अपदाद और व्यावृत है, इसको विषय करने वाला पर्यायार्थिक नय है [सर्वार्थसिद्धि १/३३] । अथवा 'परि' जो कालकृत भेद को प्राप्त होता है उसे

पर्याय कहते हैं। वह पर्याय जिस नय का प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय है।

[ध्वल पु० १ पृ० ८४]

तित्थयर-वयण संग्रह-चिसेस-पत्थार-मूल-चायरणी ।
द्रव्यार्थिको य पञ्जय-णयो य सेसा वियप्पा सिं ॥

[ध्वल पु० १ पृ० १२]

अर्थ—तीर्थकरों के बचनों के सामान्य प्रस्तार का मूल व्याख्यान करने वाला द्रव्यार्थिक नय है और उन्होंने बचनों के विशेष प्रस्तार का मूल व्याख्याता पर्यायार्थिक नय है। शेष सभी नय इन दोनों नयों के विकल्प अर्थात् भेद हैं।

‘द्रव्यार्थिक नयः स त्रिविष्टो नैगम-संग्रह-व्यवहारभेदेन ।’ ‘पर्यायार्थिको नयऽचतुर्विष्टः ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरुद्धैवं भूतभेदेन ।’

[ध्वल पु० ६ पृ० १७० व १७१]

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय है, वह नैगम, संग्रह और व्यवहार के भेद से तीन प्रकार है। पर्यायार्थिक नय ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुद्ध और एवंभूत के भेद से चार प्रकार का है।

ऋजुसूत्र नय अर्थनय है और शब्द, समभिरुद्ध, एवंभूत ये तीन व्यञ्जन नय हैं, क्योंकि इनमें शब्द की मुख्यता है। कहा भी है—

‘पर्यायार्थिको द्विविष्टः, अर्थनयो व्यञ्जननयश्चेति ।’

[ध्वल पु० १ पृ० ८५]

नैगमनय :—‘नैकं गच्छतीति निगमः, निगमो विकल्पः’ जो एक को ही प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनेक को प्राप्त होता है, वह निगम है। निगम का अर्थ विकल्प है। जो विकल्प को ग्रहण करे, वह नैगम नय है।^१ अनिष्टप्रथा में संकल्पमात्र को ग्रहण करने वाला नय नैगम है। यथा हाथ में फरसा लेकर जाते हुए किसी पुरुष को देखकर कोई अन्य पुरुष पूछता है—आप किस काम के लिये जा रहे हैं? वह कहता है—प्रस्थ लेने के लिये जा रहा हूँ। यद्यपि उस समय वह प्रस्थ पर्याय सन्निहित नहीं है, तथापि प्रस्थ बनाने के संकल्प

१. आलापपद्धति सूत्र १६६ ।

मात्र से उसमें प्रस्थ व्यवहार किया गया है। तथा इंधन और जल आदि के लाने में लगे हुए किसी पुरुष से कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे हैं? उसने कहा—भात पका रहा हूँ। उस समय भात पर्याय सन्निहित नहीं है, केवल भात के लिये किये गये व्यापार में भात का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार का जितना व्यवहार अनिष्टपश्च अर्थात् के प्रवलम्बन से संकल्प मात्र को विषय करता है वह सब नीगम नय का विषय है। [सर्वार्थसिद्धि १/३३]

संग्रह नयः—जो नय अभेद रूप से सम्पूर्ण वरतु समूह को विषय करता है वह संग्रह नय है।¹

भेद सहित सब पर्यायों को अपनी जाति के अविरोध द्वारा एक मानकर सामान्य से सब को अहण करने वाला नय संग्रह नय है। यथा—सत्, द्रव्य और घट आदि। ‘सत्’ कहने पर सत् इस प्रकार के वचन और विज्ञान की अनुवृत्ति रूप लिय से अनुभित सत्ता के आधारभूत सब पदार्थों का सामान्य रूप से संग्रह हो जाता है। ‘द्रव्य’ ऐसा कहने पर भी ‘उन उन पर्यायों को द्रवता है, प्राप्त होता है’ इस प्रकार इस व्युत्पत्ति से युक्त जीव, प्रजीव और उनके सब भेद प्रभेदों का संग्रह हो जाता है। तथा ‘घट’ ऐसा कहने पर घट, इस प्रकार की बुद्धि और घट, इस प्रकार के शब्द की अनुवृत्ति रूप लिंग से अनुभित सब घट पदार्थों का संग्रह हो जाता है। [सर्वार्थसिद्धि १/३३]

व्यवहारनय—संग्रह नय से अहण किये हुए पदार्थ को भेद रूप से व्यवहार करता है, ग्रहण करता है, वह व्यवहार नय है।²

संग्रह नय के द्वारा अहण किये गये पदार्थों का विष्विपूर्वक अवहरण प्रथम् भेद करता व्यवहारनय है। सर्व संग्रह नय के द्वारा जो वस्तु ग्रहण की गई है, वह अपने उत्तर भेदों के बिना व्यवहार करने में असमर्थ है, इस लिये व्यवहारनय का आश्रय लिया जाता है। यथा—संग्रह नय का विषय जो द्रव्य है, वह जीव प्रजीव की अपेक्षा किये बिना व्यवहार करने में असमर्थ है, इसलिये जीव द्रव्य है और प्रजीव द्रव्य है, इस प्रकार के व्यवहार का

१. आलापपद्धति सूत्र १८७। २. आलापपद्धति सूत्र १६८।

आश्रय लिया जाता है। जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य भी जब तक संप्रहनय के विषय रहते हैं तब तक वे व्यवहार करने में असमर्थ हैं, इसलिये व्यवहार से जीव द्रव्य के देव नारकी आदि रूप और अजीव द्रव्य के घटादि रूप भेदों का आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार इस नय की प्रवृत्ति वही तक होती है जहाँ तक वस्तु में फिर कोई विभाग करना सम्भव नहीं रहता। [सर्वार्थसिद्धि १/३३]। इस व्यवहार नय में कालकृत भेद नहीं होता है।

ऋग्युसूत्र नय—जो नय सरल को सूचित करता है पर्थित् ग्रहण करता है वह ऋग्युसूत्र नय है।¹

ऋग्युसूत्र नय प्रतीत और अनागत तीनों कालों के विषयों को ग्रहण करके वर्तमान काल के विषयभूत पदार्थों को ग्रहण करता है, क्योंकि प्रतीत के विनष्ट और अनागत के प्रनुत्पन्न होने से उनमें व्यवहार नहीं हो सकता। वह वर्तमान काल समय मात्र है और उसके विषयभूत पर्यायमात्र को विषय करने वाला ऋग्युसूत्र नय है [सर्वार्थसिद्धि १/३३]।

ऋग्युसूत्र नय का विषय पञ्चमान पक्व है। जिसका यर्दे कथंचित् पञ्चमान और कथंचित् उपरतपाक होता है। जिसने अंश में वह पक चुकी है उसकी अपेक्षा वह वस्तु पक्व प्रथित् कथंचित् उपरतपाक है और अन्तिम पाक की समाप्ति का अभाव होने की अपेक्षा अर्थात् पूरा पाक म हो सकने की अपेक्षा वही वस्तु पञ्चमान भी है ऐसा सिद्ध होता है। इसी प्रकार क्रियमाण-कृत, मुञ्ज्यमान-मुक्त, द्रव्यमान-बद्ध और सिद्धभद्र-सिद्ध आदि व्यवहार भी वर्णित हो जाता है। [जयघडल पृ० १ पृ० २२३-२२४]

ऋग्युसूत्र नय की अपेक्षा जिस समय प्रस्तु से बाह्य मापे जाते हैं, उसी समय वह प्रस्तु है। इस नय की शृण्टि में 'कु'प्रकार' संज्ञा भी नहीं बन सकती। क्योंकि शिवक आदि पर्यायों को करने से उनके कर्ता को 'कु'प्रकार' यह संज्ञा नहीं दी जा सकती। ठहरे हुए किसी पुरुष से 'आप कहाँ से आ रहे हो' इस प्रकार प्रश्न होने पर 'कहीं से भी नहीं आ रहा हूँ' इस प्रकार यह ऋग्युसूत्र नय मानता है, क्योंकि जिस समय प्रश्न किया गया उस समय अग्रमन

रूप किया नहीं पाई जाती ।

[जयधवल पु० १ पृ० २२५]

तथा इस श्रजुसूत्र नय की हृष्टि में 'काक कृषण होता है' यह व्यवहार भी नहीं बन सकता है, क्योंकि जो कृषण है वह कृष्णरूप ही है, काकरूप नहीं है । यदि कृषण को काकरूप माना जाय तो भ्रमर आदिक को भी काकरूप मानने की आपत्ति प्राप्त होती है । उसी प्रकार काक भी काकरूप ही है कृष्णरूप नहीं है, क्योंकि यदि काक को कृष्णरूप माना जाय तो काक के पीले पित्त सफेद हही और लाल रुधिर आदिक को भी कृष्णरूप मानने की आपत्ति प्राप्त होती है ।

[जयधवल पु० १ पृ० २२६]

इस श्रजुसूत्र नय की हृष्टि से विशेषण-विशेष्य भाव भी नहीं बनता है, क्योंकि भिन्न दो पदार्थों में तो विशेषण-विशेष्य भाव बन नहीं सकता, क्योंकि भिन्न दो पदार्थों में विशेषण-विशेष्य भाव मानने पर अव्यवस्था की आपत्ति प्राप्त होती है, अर्थात् जिन किन्हीं दो पदार्थों में भी विशेषण-विशेष्य भाव हो जायगा । उसी प्रकार अभिन्न दो पदार्थों में विशेषण-विशेष्य भाव नहीं बन सकता, क्योंकि अभिन्न दो पदार्थों का अर्थ एक पदार्थ ही होता है और एक पदार्थ में विशेषण-विशेष्य भाव के मानने में विरोध आता है ।

[जयधवल पु० १ पृ० २२६]

इस श्रजुसूत्र नय की हृष्टि में संयोग अथवा समवाय सम्बन्ध नहीं बनता है । इसीलिये सजातीय और विजातीय दोनों प्रकार की उपाधियों से रहित केवल शुद्ध परमाणु ही है, अतः जो स्तंभादिकरूप स्कन्धों का प्रत्यय होता है वह श्रजुसूत्र नय की हृष्टि में भाल्त है । तथा वह परमाणु तिरवयव है, क्योंकि परमाणु के ऊर्ध्वमाण, अधोमाण और मध्यमाण आदि अवयवों के मानने पर अव्यवस्था दोष की आपत्ति प्राप्त होती है और परमाणु को अपरमाणुपने का प्रयोग प्राप्त होता है ।

[जयधवल पु० १ पृ० २३०]

इस श्रजुसूत्र नय की हृष्टि में बन्ध्य-अन्धक भाव, बध्य-धातक भाव, दाह्य-दाहक भाव और संसारादि कुछ भी नहीं बन सकते ।

[जयधवल पु० १ पृ० २२८]

इस श्रजुसूत्र नय की हृष्टि में ग्राह्य-ग्राहक भाव भी नहीं बनता है । शान

से असंबद्ध अर्थ का तो ग्रहण होता नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर अव्यवस्था दोष की आपत्ति प्राप्त होती है। अर्थात् असम्बद्ध अर्थ का ग्रहण मानने पर किसी भी ज्ञान से किसी भी पदार्थ का ग्रहण हो जायगा। तथा ज्ञान से सम्बद्ध अर्थ का भी ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि वह ग्रहण काल में रहता नहीं है। यदि कहा जाय कि अतीत होने पर भी उसका ज्ञान के साथ कार्यकारणभाव सम्बन्ध पाया जाता है, अतः उसका ग्रहण हो जायगा; सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर चक्षुइन्द्रिय से व्यभिचार दोष आता है। अर्थात् पदार्थ की तरह चक्षुइन्द्रिय से भी ज्ञान का कार्यकारण सम्बन्ध पाया जाता है, फिर भी ज्ञान चक्षु को नहीं जानता है।

[जयधवल पु० १ पृ० २३०—२३१]

इस क्रजुसूत्र नय की हृष्टि में वाच्य-वाचक भाव भी नहीं होता है। इस प्रकार इस नय की हृष्टि में सकल व्यवहार का उच्छेद होता है।

[जयधवल पु० १ पृ० २३२]

शब्दनय—जो नय शब्द अर्थात् व्याकरण से, प्रकृति और प्रत्यय के द्वारा सिद्ध अर्थात् निष्पत्ति शब्द को भुल्यकर विषय करता है वह शब्द नय है।¹

‘शप्ति’ अर्थात् जो पदार्थ को बुलाता है अर्थात् पदार्थ को कहता है या उसका निश्चय करता है वह शब्दनय है। यह शब्दनय लिंग, संस्कृता, काल, कारक, पुरुष और उपग्रह के व्यभिचार को दूर करता है। पुर्लिंग के स्थान में स्त्रीलिंग का और स्त्रीलिंग के स्थान में पुर्लिंग का कथन करना आदि लिंग-व्यभिचार है। जैसे—‘तारका स्वाति’ स्वाति नक्षत्र तारका है। यहाँ पर तारका शब्द स्त्रीलिंग और स्वाति शब्द पुर्लिंग है, अतः स्त्रीलिंग शब्द के स्थान पर पुर्लिंग शब्द का कथन करने से लिंग-व्यभिचार है अर्थात् तारका शब्द स्त्रीलिंग है उसके साथ में पुर्लिंग स्वाति शब्द का प्रयोग किया गया है जो व्याकरण अनुसार ठीक नहीं है। एकवचन आदि के स्थान पर द्विवचन आदि का कथन करना संस्कृत-व्यभिचार है। जैसे ‘नक्षत्रं पुनर्वंसू’ पुनर्वंसू

नक्षत्र हैं। यहाँ पर नक्षत्र शब्द एकवचनान्त और पुनर्वंसू शब्द द्विवचनान्त है, इसलिये एकवचन के साथ में द्विवचन का कथन करने से संख्या-व्यभिचार है। भूत आदि काल के स्थान में भविष्यत् आदि काल का कथन करना काल-व्यभिचार है। जैसे—‘विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता’ जिसने समस्त विश्व को देख लिया है ऐसा इसको पुत्र होगा। यहाँ पर ‘विश्वदृश्वा’ शब्द भूत-कालीन है और ‘जनिता’ यह भविष्यत्कालीन है। अतः भविष्य अर्थ के विषय में भूतकालीन प्रयोग करना काल-व्यभिचार है। एक कारक के स्थान पर दूसरे कारक के प्रयोग करने को साधन-व्यभिचार कहते हैं। उत्तमपुरुष के स्थृत पर मध्यमपुरुष और मध्यमपुरुष के स्थान पर उत्तमपुरुष आदि के प्रयोग करने को पुरुष-व्यभिचार कहते हैं।

इस प्रकार जितने भी लिङ्ग आदि व्यभिचार हैं वे सभी अयुक्त हैं, क्योंकि अन्य अर्थ का अन्य अर्थ के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसलिये जैसा लिंग हो, जैसी संख्या हो और जैसा साधन हो उसी के अनुसार शब्दों का कथन करना उचित है।

[जयध्वल पृ० १ पृ० २३५-२३७]

समभिरूढनयः—ग्रागे सूत्र २०१ में कहेंगे ‘परस्परेणाभिरूढाः समभिरूढाः। शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति, यथा शक्र इन्द्रः पुरुंदर इत्यादयः समभिरूढाः।’ परस्पर में अभिरूढ शब्दों को प्रहसु करने वाला नय समभिरूढ नय कहलाता है। इस नय के विषय में शब्द-भेद रहने पर भी अर्थ-भेद नहीं है, जैसे शक्र, इन्द्र और पुरुंदर ये तीनों ही शब्द देवराज के पर्यायिकाची होने से देवराज में अभिरूढ हैं। किन्तु शोलापुर से प्रकाशित नयचक्र पृ० १८ पर लिखा है—‘शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो भवत्येवेति’ अर्थात् शब्द-भेद होने पर अर्थ-भेद होता ही है। जयध्वल में भी इस प्रकार कहा है—

शब्दभेद से जो नाना अर्थों में अभिरूढ है अर्थात् जो शब्दभेद से अर्थभेद मानता है वह समभिरूढनय है। जैसे एक ही देवराज इन्दनकिया का कर्ता होने से अर्थात् आशा और ऐश्वर्यं आदि से युक्त होने के कारण इन्द्र कहलाता है और वही देवराज शकनात् अर्थात् सामर्थ्यवाला होने के कारण शक कह-

लाता है तथा वही देवराज पुर अर्थात् नगरों को दारण अर्थात् विभाग करने वाला होने के कारण पुरन्दर कहलाता है। ये तीनों शब्द भिन्न भिन्न अर्थ से सम्बन्ध रखते हैं, इसलिये एक अर्थ के वाचक नहीं हैं। आशय यह है कि अर्थभेद के बिना पदों में भेद बन नहीं सकता है, इसलिये पदभेद से अर्थभेद होना ही चाहिये, इस अभिप्राय को स्वीकार करने वाला समभिरूढ़ नय है।

[जयघबल पु० १ पृ० २३६]

इस समभिरूढ़ नय में पर्यायवाची शब्द नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि यह नय प्रत्येक पद का भिन्न अर्थ स्वीकार करता है। इस नय की हृष्टि में दो शब्द एक अर्थ में रहते हैं ऐसा मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि भिन्न दो शब्दों का एक अर्थ में सदृभाव मानने में विरोध आता है। यदि कहा जाय कि उन दोनों शब्दों में समान शक्ति पाई जाती है, इसलिये वे एक अर्थ में रहते हैं, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि दो शब्दों में सर्वथा समान शक्ति मानी जाय तो फिर वे दो नहीं रहेंगे, एक हो जायेंगे। इसलिये जब वाचक शब्दों में भेद पाया जाता है तो उनके वाच्यभूत अर्थ में भेद होना ही चाहिये।

[जयघबल पु० १ पृ० २४०]

श्री पूज्यपाद आचार्य ने सर्वार्थसिद्धि में इस प्रकार कहा है—

नाना अर्थों का समभिरोहण करने वाला समभिरूढ़ नय है। क्योंकि जो नाना अर्थों को 'सम' अर्थात् छोड़कर प्रधानता से एक अर्थ में रूढ़ होता है वह समभिरूढ़ नय है। जैसे 'गो' इस शब्द के वचन आदि अनेक अर्थ पाये जाते हैं, तथापि वह 'पशु' अर्थ में रूढ़ है। अथवा अर्थ का ज्ञान कराने के लिये शब्दों का प्रयोग किया जाता है। एक अर्थ का ज्ञात एक शब्द के उत्तरां हो जाता है, अतः इस नय की हृष्टि में पर्यायवाची शब्दों वा प्रयोग निरर्थक है। यदि शब्दों में भेद है तो अर्थभेद अवश्य है। इस प्रकार नाना अर्थों द्वा समभिरोहण करने वाला समभिरूढ़ नय है। जैसे इन्द्र, शक और पुरन्दर ये तीन शब्द होने से इनके अर्थ भी तीन हैं। इन्द्र का अर्थ ऐश्वर्यवान् है, शक का अर्थ सामर्घ्यवान् है, पुरन्दर का अर्थ नगर का विभाग करने वाला है।

[सर्वार्थसिद्धि १/३३]

एवंभूत नय—जिस नय में वर्तमान किया की प्रधानता होती है वह एवंभूत नय है ।^१

जिस शब्द का जिस क्रियारूप अर्थ है तदरूप किया से परिणत समय में ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है, अन्य समय में नहीं, ऐसा जिस नय का अभिप्राय है वह एवंभूत नय है । इस नय में पदों का समास नहीं होता है, क्योंकि जो स्वरूप और काल की अपेक्षा भिन्न हैं उनको एक मानने में विरोध आता है । यदि कहा जाय कि पदों में एककालवृत्ति रूप समास पाया जाता है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पद क्रम से ही उत्पन्न होते हैं और वे जिस क्षण में उत्पन्न होते हैं, उसी क्षण में विनष्ट हो जाते हैं, इसलिये अनेक पदों का एक काल में रहना नहीं बन सकता । तथा इस नय में जिस प्रकार पदों का समास नहीं बन सकता है, उसी प्रकार घ, ट आदि वर्णों का भी समास नहीं बन सकता, क्योंकि अनेक पदों के समास मानने में जो दोष कह आये हैं, वे सब दोष अनेक वर्णों के समास मानने में भी प्राप्त होते हैं । इसलिये एवंभूत नय की दृष्टि में एक ही वर्ण एक अर्थ का बाचक है ।

[जथघबल पु० १ पृ० २४२]

उपनयाश्च कथ्यन्ते ॥४२॥

सूत्रार्थ—अब उपनयों का कथन करते हैं ।

उपनय के लक्षण कथन करने के लिये सूत्र कहते हैं ।

नयानां समीपा उपनयाः ॥४३॥

सूत्रार्थ—जो नयों के समीप में रहें वे उपनय हैं ।

विशेषार्थ—‘आत्मन उपसमीपे प्रमाणादीनां चा तेषामुपसमीपे नयतीत्युपनयः ।’ [संस्कृत नय चक्र पृ० ४५] अर्थात् जो आत्मा के या उन प्रमाणादिकों के अत्यन्त निकट पहुँचाता है वह उपनय है ।

यह उपनय भी वस्तु के यथार्थ घर्म का कथन करता है, अयथार्थ घर्म का कथन नहीं करता, इसलिये इसके द्वारा भी वस्तु का यथार्थ दोष होता है ।

उपनय के भेदों का कथन करने के लिये आगे का सूत्र कहा जाता है—

**सद्भूतव्यवहारः असद्भूतव्यवहारः उपचरितासद्भूत-
व्यवहारश्चेत्युपनयास्त्रेधा ॥४५॥**

अर्थ—सद्भूत-व्यवहार, असद्भूतव्यवहार और उपचरित-असद्भूत-व्यवहार ऐसे उपनय के तीन भेद होते हैं।

विशेषार्थ—“भेदोपचारतया वस्तु व्यवहृत्यत इति व्यवहारः”^१ इन्ह समास की अपेक्षा इस सूत्र का अर्थ होता है—भेद और उपचार के द्वारा जो वस्तु का व्यवहार होता है वह व्यवहार नय है। जो भेद के द्वारा वस्तु का व्यवहार करे वह सद्भूत-व्यवहार नय है और जो उपचार के द्वारा वस्तु का व्यवहार करे वह असद्भूत-व्यवहार नय है।

संशा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा गुण और गुणी में भेद करते वाली नय सद्भूत-व्यवहार नय है।^२ इसी प्रकार पर्याय-पर्यायी में, स्वभाव-स्वभावी में, कारक-कारकी में भी भेद करना सद्भूत व्यवहार नय है।^३ जैसे उष्ण स्वभाव और अग्नि स्वभावी में भेद करना तथा मृतपिंड की शक्ति-विशेष कारक में और मृतपिंड कारकी में भेद करना। ये सब सद्भूतव्यवहार नय के दृष्टान्त हैं।

अन्यत्र प्रसिद्ध घर्म (स्वभाव) का अन्यत्र समारोप करने वाली असद्भूत-व्यवहार नय है।^४ जैसे पुद्गल आदि में जो घर्म (स्वभाव) है उसका जीवादि में समारोप करना। इसके नौ भेद हैं—१. द्रव्य में द्रव्य का उपचार, २. पर्याय में पर्याय का उपचार, ३. गुण में गुण का उपचार, ४. द्रव्य में गुण का उपचार, ५. द्रव्य में पर्याय का उपचार, ६. गुण में द्रव्य का उपचार, ७. गुण में पर्याय का उपचार, ८. पर्याय में द्रव्य का उपचार, ९. पर्याय में गुण का उपचार। यह नौ प्रकार का उपचार असद्भूत-व्यवहारनय का विषय है।^५ जैसे—१. पुद्गल में जीव का उपचार प्रर्यात् पृथ्वी आदि पुर्णगल में

१. आलापपद्धति सूत्र २०५। २. आलापपद्धति सूत्र २०६। ३. आलाप-पद्धति सूत्र २०८। ४. आलापपद्धति सूत्र २०७। ५. आलापपद्धति सूत्र २१०

एकेन्द्रिय जीव का उपचार । २. दर्पणरूप पर्याय में अन्य पर्यायरूप प्रतिबिंब का उपचार । किसी के प्रतिबिंब को देखकर जिसका वह प्रतिबिंब है उसको उस प्रतिबिंबरूप बतलाना । ३. मतिज्ञान मूर्त है—यहां विजाति ज्ञानगुण में विजाति मूर्तगुण का आरोपण है । ४. जीव-अजीव ज्ञेय अथात् ज्ञान के विषयक हैं । यहां जीव-अजीव द्रव्य में ज्ञानगुण का उपचार है । ५. परमाणु बहुप्रदेशी है अथात् परमाणु पुद्गल द्रव्य में बहुप्रदेशी पर्याय का उपचार है । ६. श्वेत प्रसाद । यहां पर श्वेत गुण में प्रसाद द्रव्य का आरोप किया गया है । ७. ज्ञानगुण के परिणामन में ज्ञान-पर्याय का ग्रहण, गुण में पर्याय का आरोपण है । ८. स्कंध को पुद्गल द्रव्य कहना, पर्याय में द्रव्य का उपचार है । ९. इसका शरीर रूपवान है । यहां पर शरीर रूप पर्याय में 'रूपवान' गुण का उपचार किया गया है ।^१

मुख्य के अभाव में प्रयोजनवश या निमित्तवश जो उपचार होता है वह उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय है ।^२ जैसे माजार (बिलाव) को सिंह कहना । यहां पर माजार और सिंह में साहृदय सम्बन्ध के कारण माजार में सिंह का उपचार किया गया है, क्योंकि सम्बन्ध के बिना उपचार नहीं हो सकता । जैसे धूहे ग्रादि में सिंह का उपचार नहीं किया जा सकता । वह सम्बन्ध अनेक प्रकार का है । जैसे—ग्रविनाभाव सम्बन्ध, संह्लेष सम्बन्ध, परिणाम-परिणामी सम्बन्ध, श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध, ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध, चारित्र-चर्या सम्बन्ध इत्यादि । ये सब उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय के विषय हैं । 'तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्प्रदर्शन है' यह उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय का विषय है, क्योंकि यहां पर श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध पाया जाता है । 'सर्वज्ञ' यह भी उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय का विषय है, ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध पाया जाता है, सर्व जो ज्ञेय उनका ज्ञायक सर्वज्ञ होता है । इत्यादि

इदानीमेतेषां भेदा उच्यते ॥४५॥

सूत्रार्थ—अब उनके (नयों और उपनयों के) भेदों को कहते हैं ।

२. टिप्पण सूत्र २१० । २. मालापद्धति सूत्र २१२ । ३. मालापद्धति सूत्र २१३ ।

द्रव्याधिकस्य दश भेदाः ॥४६॥

सूत्रार्थं—द्रव्याधिक नय के दश भेद हैं।

द्रव्याधिक नय के दश भेदों का कथन दश सूत्रों द्वारा किया जाता है। उनमें से प्रथम तीन सूत्रों में शुद्ध द्रव्याधिक नय के तीन भेदों का कथन है—

१. कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्याधिकः, यथा संसारी-जीवः सिद्धसद्गुद्धात्मा ॥४७॥

सूत्रार्थं—शुद्ध द्रव्याधिक नय का विषय कर्मोपाधि की अपेक्षा रहित जीव द्रव्य है, जैसे—संसारी जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा है।

विशेषार्थं—यद्यपि संसारी जीव कर्मोपाधि सहित है तथापि शुद्ध द्रव्याधिक नय उस जीव को कर्मोपाधि से रहित सिद्ध जीव समान शुद्ध बतलाता है। यदि जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा हो तो वह संसारी नहीं हो सकता और संसारी जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा नहीं हो सकता, क्योंकि संसारी अवस्था जीव की अशुद्ध पर्याय है। सिद्ध अवस्था जीव की शुद्ध पर्याय है। एक समय में जीव की एक ही अवस्था रह सकती है। कर्मोपाधि अर्थात् कर्म वंघ जीव की अशुद्धता का कारण है, क्योंकि अन्य द्रव्य के बंध बिना द्रव्य अशुद्ध नहीं हो सकता। कर्म-वंघ के कारण ही जीव संसारी हो रहा है। फिर भी कर्म-वंघ की अपेक्षा न करके उस संसारी जीव को (अशुद्धात्मा को) शुद्धात्मा बतलाना शुद्ध द्रव्याधिक नय का प्रथम भेद है। संसारी अवस्था की अपेक्षा से इस नय का विषय सत्य नहीं है तथापि शुद्ध द्रव्य की हठिट से इस नय का विषय सत्य है। प्राकृत नयचक्र में कहा भी है—

कर्माणं मञ्जकगयं जीवं जो गहृइ सिद्ध संकासं ।

भण्णइ सो सुद्धणश्चो खलु कर्मोवाहिणिरवेक्ष्यो ॥१८॥

अर्थात्—कर्मों के बीच में पड़े हुए जीव को सिद्ध समान प्रहरण करने वाली नय कर्मोपाधि-निरपेक्ष-शुद्ध नय है।

२. उत्पादव्ययगोणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्याधिको यथा द्रव्यं नित्यम् ॥४८॥

सूत्रार्थ—उत्पाद-व्यय को गौण करके (अप्रशान करके) सत्ता (ध्रोव्य) को भ्रहण करने वाली शुद्ध द्रव्याधिक नय है। जैसे—प्रव्य नित्य है।

विशेषार्थ—द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रोव्य है।^१ तथा द्रव्य अनेकात्मक अर्थात् नित्य-अनित्य-आत्मक है। किन्तु शुद्ध द्रव्याधिक नय उत्पाद-व्यय को अप्रशान करके मात्र ध्रोव्य को भ्रहण करके (नित्य-अनित्य-आत्मक) द्रव्य को नित्य बतलाती है। अनेकान्त हृष्टि में इस शुद्ध-द्रव्याधिक नय का विषय यथार्थ नहीं है तथापि एक घर्म को (अनित्य घर्म को) गौण करके नित्य घर्म को मुख्य करने से इस नय के विषय को सर्वथा यथार्थ नहीं कहा दा सकता।

उत्पादव्ययं गौणं किरचा जो गद्दै केवला सत्ता ।

भद्रणह सो सुद्धणाऽत्रो इह सत्तागाहाऽत्रो समए ॥१६॥ [नयघक]

अर्थात्—उत्पाद-व्यय को गौण करके मात्र ध्रुव को भ्रहण करने वाला नय आगम में सत्तागाहक शुद्ध नय है।

३. भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धो द्रव्याधिको यथा निजगुण-पर्यायस्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम् ॥४६॥

सूत्रार्थ—शुद्ध द्रव्याधिक नय भेदकल्पना की अपेक्षा से रहित है, जैसे—निज गुण से, निज पर्याय से और निज स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है।

विशेषार्थ—यदपि संज्ञा, संरूपा, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा गुण और द्रव्य में, पर्याय और द्रव्य में तथा स्वभाव और द्रव्य में भेद है किन्तु प्रदेश की अपेक्षा गुण-द्रव्य में, पर्याय-द्रव्य में, स्वभाव-द्रव्य में भेद नहीं है अर्थात् अनेकान्त रूप से द्रव्य भेद-अभेद-आत्मक है।

शुद्ध द्रव्याधिक नय का विषय भेद नहीं है, मात्र अभेद है। भेद विवक्षा को गौण करके शुद्ध-द्रव्याधिक नय की अपेक्षा गुण-पर्याय-स्वभाव का द्रव्य से अभेद है, क्योंकि प्रदेश भेद नहीं है।

गुणगुणियाहचउक्ते अत्थे जो एो करेह शुलु भेयं ।

सुद्धो सो दृच्छत्यो भेदवियपेण गिरवेकस्तो ॥२०॥ [नयचक]

अर्थात्—गुण, पुरुषी आदि चार घटों (गुण, पर्याय, स्वभाव, द्रव्य) में भेद नहीं करने वाले नय को भेद-विकल्प-निरपेक्ष शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय कहा गया है ।

तीन सूत्रों में अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय के तीन वित्तों का कलन—

४. कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा क्रोधादि- कर्मजभाव आत्मर ॥५०॥

सूत्रार्थ—कर्मोपाधि की अपेक्षा सहित अशुद्ध जीव द्रव्य अशुद्ध-द्रव्यार्थिक-
नय का विषय है, जैसे—कर्मजनित क्रोधादिभावरूप आत्मा है ।

विशेषार्थ—अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय अशुद्ध द्रव्य है । संसारी
जीव अनादि काल से पौद्गलिक कर्मों से बंधा हुआ है इसलिये अशुद्ध है ।
संसारी जीव में कर्मजनित श्रोदर्थिक भाव निरन्तर होते रहते हैं । वे श्रोदर्थिक
भाव जीव के स्वतत्त्व हैं ।^१ क्रोधादि कर्मजनित श्रोदर्थिकभावमयी आत्मा
अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय है ।

भावेसु राययादी सब्वे जीवंसि जो दु जंपेदि ।

सोहु असुद्धो उत्तो कर्माणेवाहिसापेक्षो ॥२१॥ [नयचक]

अर्थात्—सब जीवों में रायादि भावों को कहने वाला जो नय है वह
कर्मोपाधि-सापेक्ष अशुद्ध नय है ।

५. उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथैकस्मिन् समये द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् ॥५१॥

सूत्रार्थ—उत्पाद-व्यय की अपेक्षा सहित द्रव्य अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का
विषय है, जैसे—एक ही समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक द्रव्य है ।

विशेषार्थ——शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय मात्र धौम्य है।^१ क्योंकि उत्पाद-व्यय पर्यार्थिक नय का विषय है। द्रव्य का लक्षण सदृ है और सदृ का लक्षण उत्पाद-व्यय-धौम्यमयी है।^२ इस प्रकार द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-धौम्य रूप है, किन्तु उत्पाद-व्यय पर्यार्थिक नय का विषय होने के कारण उत्पाद-व्यय-धौम्यक रूप होता है—“शुद्ध जल को—अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय कहा है।

उत्पादव्यविभिन्सा सत्ता गहिञ्चन भरणइ तिदयत्तं ।

दन्वस्स एयसमये जो हु असुद्धो हवे विदिष्ठो ॥२२॥ [नवचक]

अर्थात्—उत्पाद-व्यय मिश्रित ध्रुव अर्थात् एक समय में इन तीन मयी द्रव्य को ग्रहण करने वाला दूसरा असुद्ध नय है।

६. भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथात्मनो दर्शन-ज्ञानादयोगुणाः ॥५२॥

सूत्रार्थ—भेदकल्पना-सापेक्ष द्रव्य अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे—मात्मा के ज्ञान-दर्शनादि गुण हैं।

विशेषार्थ—मात्मा एक अखण्ड द्रव्य है, उसमें ज्ञान-दर्शन आदि गुण नहीं हैं, ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का प्रयोजन है। कहा भी है—

‘एवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ।’

अर्थात्—मात्मा में न ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है, वह तो आवक, शुद्ध है।

मात्मा में ज्ञान, दर्शन आदि गुणों की कल्पना करना अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात् एक अस्तित्व भूमि में गुणों का भेद करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक भूमि का विषय है।

भेदे सदि सम्बन्धं गुणगुणिर्वैण कुणइ जो दन्वे ।

सो वि असुद्धो दिहो सहिष्ठो सो भेदकपेण ॥२३॥ [नवचक]

१. आलापपद्धति सूत्र ४८ । २. आलापपद्धति सूत्र ६ व ७ ।

अथति—गुण गुणों में भेद होने पर जो जो नय द्रव्य में गुण गुणी का सम्बन्ध करती है वह भेदकल्पना सहित अशुद्ध नय ज्ञानती चाहिये ।

७. अन्वयसापेक्षो द्रव्यार्थिको यथा गुणपर्यायिस्वभावं द्रव्यम् ॥५३॥

सूत्रार्थ—सम्पूर्ण गुण पर्याय और स्वभावों में द्रव्य को अन्वयरूप से ग्रहण करने वाली नय अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय है ।

विशेषार्थ—प्राकृत नय चक्र में इस नय का स्वरूप निम्न प्रकार कहा है—

णित्सेससद्वाचाणं अणण्यद्वयरूपेण द्रव्यदृवेदि ।

दंस्तुतवरणो हि जो सो अणण्यद्वयरूपेण अगिदो ॥५४॥

जो नय सम्पूर्ण स्वभावों को यह द्रव्य है, यह द्रव्य है, ऐसे अन्वय रूप से द्रव्य की स्थापना करता है वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है ।

संस्कृत नयचक्र में इस नय का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—

निःशेषगुणपर्यायान् प्रत्येकं द्रव्यमज्जीत् ।

सोऽन्वयो निश्चयो हेम यथा सत्कटकादिषु ॥७॥^१

यः पर्यायादिकान् द्रव्यं ब्रूते त्वन्वयरूपतः ।

द्रव्यार्थिकः सोऽन्वयारूपः प्रोच्यते नयवेदिभिः ॥४॥^२

अथति—जो सम्पूर्ण गुणों और पर्यायों में से प्रत्येक को द्रव्य बतलाता है वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है । जैसे कड़े आदि पर्यायों में तथा पीतत्व आदि गुणों में अन्वय रूप से रहने वाला स्वरूप । अथवा मनुष्य, देव आदि नाना पर्यायों में यह जीव है, यह जीव है, ऐसा अन्वय द्रव्यार्थिक नय का विषय है ।

आगे सूत्र १८७ में भी इस नय का स्वरूप इसी प्रकार कहा है ।

८. स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति ॥५४॥

१. शोलापुर से प्रकाशित संस्कृत नयचक्र पृ० ५ । २. शोलापुर से प्रकाशित संस्कृत नयचक्र पृ० ४१ ।

सूत्रार्थ—स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभाव की अपेक्षा इव्य को अस्ति रूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

विशेषार्थ—कल्याण पावर प्रिंटिंग प्रेस शोलापुर से प्रकाशित संस्कृत नयचक्र पृ० ३ व ५ पर इस नय का स्वरूप निम्न प्रकार कहा गया है—

‘परद्रव्यादिनां विवक्षाभूत्वा रवद्रव्यस्वक्षेत्रस्वकालस्वभावापेक्षया द्रव्यस्यास्तित्वमस्तीति स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकनयः।’

अस्तित्वं वस्तुरूपस्य स्वद्रव्यादिचतुष्टयात्।

एवं यो वक्त्यभिप्रायं स्वादिग्राहकनिश्चयः ॥६॥

अर्थ—परद्रव्यादि की विषेक्षा न कर, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से इव्य के अस्तित्व को अस्तिरूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। अब या स्वद्रव्यादि चतुष्टय से वस्तु-स्वरूप का अस्तित्व बताना जिस नय का अभिप्राय है वह स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

आगे सूत्र १८८ में भी इस नय का कथन है।

६. परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति ॥५५॥

सूत्रार्थ—परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परस्वभाव की अपेक्षा इव्य नास्ति रूप है ऐसा परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में इस नय का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—

‘स्वद्रव्यादीनां विवक्षाभूत्वा परद्रव्यपरक्षेत्रपरकालपरभावापेक्षया द्रव्यस्य नास्तित्वरूपः परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकनयः।’

[पृ० ३]

नास्तित्वं वस्तुरूपस्य परद्रव्यादपेक्षया ।

वांछितार्थेषु यो वक्ति परद्रव्यादपेक्षकः ॥६॥ [पृ० ५]

अर्थ—स्वद्वय ग्रादि की विवक्षा न कर परद्वय परक्षेत्र परकाल परभाव की अपेक्षा से द्वय के नास्तित्व को कथन करने वाला नय परद्वयादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। अथवा परद्वयादि चतुष्टय की अपेक्षा से जो नय विवक्षित पदार्थ में वस्तु के नास्तित्व को बतलाता है वह परद्वयादि सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय है। जैसे रजतद्रव्य रजतक्षेत्र रजतकाल रजतपर्याय अर्थात् रजतादि रूप से स्वरूप नास्ति है।

आगे सूत्र १८६ में भी इसका कथन है।

१०. परमभावग्राहकद्रव्यार्थिको यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा, अत्रानेक स्वभावानां मध्ये ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीतः ॥५६॥

सूत्रार्थ—ज्ञानस्वरूप आत्मा ऐसा कहना परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय का विषय है, क्योंकि इसमें जीव के अनेक स्वभावों में से ज्ञाननामक परमभाव का ही व्यहण किया गया है।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में इस नय का स्वरूप निम्न प्रकार कहा गया है—

‘संसारसुकृपर्यायाणामाधारं भूत्वाप्यात्मद्रव्यकर्मबंधमोक्षाणां कारणं न भवतीति परमभावग्राहकद्रव्यार्थिकनयः ।’ [पृ० ३]

कर्मभिर्जनितो नैव तोतपश्चस्तत्त्वयेन च ।

नयः परमभावस्य ग्राहको निश्चयो भवेत् ॥१०॥ [पृ० ५]

अर्थ—यद्यपि आत्मद्रव्य संसार और मुक्त पर्यायों का आधार है तथापि आत्मद्रव्य कर्मों के बंध और भोक्ता का कारण नहीं होता है। यह परमभाव-ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। अथवा, आत्मा कर्म से उत्पन्न नहीं होता और न कर्मकाल से उत्पन्न होता है—द्रव्य के ऐसे भाव को बतलाने वाला परमभाव-ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

संस्कृत नयचक्र में इस नय का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

गिहुणाइ दब्बसहावं असुदसुदोपचार परिवर्त्तं ।

सो परमभावग्राही णायव्वो सिद्धिकामेण ॥२६॥ [पृ० ६]

अर्थ—जो नय चन्द्रमा, सूर्य आदि शक्तिम, अविजाशी पुद्गलपर्यायों को ग्रहण करता है वह अनादि-नित्य पर्यायार्थिक नय है ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

संस्कृत नयचक्र में इस नय का लक्षण इस प्रकार कहा है—

पर्यायार्थी भवेन्नित्याऽनादिनित्यार्थं गोचरः ।

चन्द्रार्कमेरुभूशैल-लोकादेः प्रतिपादकः ॥१॥ [पृ० ६]

‘भरतादिस्तेत्राणि हिमवदादिपर्वताः पद्मादिसरोवराणि सुदर्शनादिमेरुनगाः लवणकालोदकादिसमुद्राः एतानि मध्यस्थितानि कृत्वा परिणताऽसंख्यातद्वीपसमुद्राः श्वशपटलानि भवनवासिवान्नव्यंतरविमानानि चन्द्रार्कमंडला ज्योतिर्विमानानि सौषर्मंकल्पादिस्वर्गपटलानि यथायोग्यस्थाने परिणताऽकृत्रिमचैत्यचैत्यालयाः मोक्षशिलादच वृहद्दबातवलयाऽच इत्येवमाद्यनेकाश्चर्यरूपेण परिणतपुद्गलपर्यायाद्यनेकद्रव्यपर्यायैः सह परिणतलोकमहास्कंचपर्यायाः त्रिकालस्थिताः संतोऽनाद्यनिघना इति अनादि-नित्य-पर्यायार्थिक नयः ।’ [पृ० ६]

अर्थ—भरत आदि क्षेत्र, हिमवत् आदि पर्वत, पद्मादि सरोवर, सुदर्शन आदि ऐह पर्वत, लवण, कालोदधि आदि समुद्रों को मध्य में स्थित करके असंख्यातद्वीप समुद्र स्थित हैं; नरक के पटल, भवनवासियों के विमान, अंतरों के विमान, चन्द्र, सूर्य आदि मंडल ज्योतिर्षियों के विमान और सौषर्मंकल्पादि स्वर्गों के पटल; यथायोग्य स्थानों में परिणत शक्तिम चैत्य चैत्यालय; मोक्षशिला और वृहद्दबातवलय आदि अनेक ग्राश्चर्य से युक्त परिणत पुद्गलों की अनेक द्रव्यपर्याय सहित परिणत लोकमहास्कंच आदि पर्याये त्रिकालस्थित हैं इसलिये अनादि-अनिघन हैं। इस प्रकार के विषय को ग्रहण करने वाला अनादिनित्यपर्यायार्थिक नय है।

२. सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्यायो नित्यः ॥५६॥

मूलार्थ—सादि नित्यपर्यायार्थिक नय, जैसे—सिद्धपर्याय नित्य है।

अर्थात्—शुद्ध और अशुद्ध के उपचार से रहित जो नय द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करता है वह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

आगे सूत्र १६० में भी इस नय का कथन है।

—००००—

अथ पद्धियार्थिकस्य दाढ़ गेदः ॥५७॥

सूत्रार्थ—अब पद्धियार्थिक नय के द्वारा भेदों का कथन करते हैं—

१. अनादिनित्यपर्यार्थिको यथा पुद्गलपर्यायो नित्यो मेवादिः ॥५८॥

सूत्रार्थ—अनादि-नित्य पर्यार्थिक नय जैसे मेरु आदि पुद्गल की पर्याय नित्य है।

विशेषार्थ—मेरु, कुलाचल पर्वत, अकृत्रिम जिनविव-जिनालय आदि ये सब पुद्गल की पर्यायें अनादिकाल से हैं अनन्तकाल तक रहेंगी, इनका कभी विनाश नहीं होगा अतः ये अनादि-नित्य-पर्यार्थिक नय के विषय हैं। क्योंकि सभी पर्यायें विनाश को प्राप्त हों ऐसा एकान्त नहीं है। कहा भी है—

‘होदु वियंजणपञ्जाओ, ण च वियंजणपञ्जायस्स सद्वस्स
विणासेण होद्वभिदि णियमो अत्यि, एर्यतवादप्पसंगादो । ण च
ण विणस्सदि त्ति द्ववं होदि, उत्पाय-ट्टिदि-भंगसंगयस्स द्ववभाव-
भुवगमादो ।’

[चतुर्पुणि पुणि १७८]

ग्रन्थ—‘यम्भव्यत्व’ जीव की व्यंजन पर्याय भले ही हो, किन्तु सभी व्यंजन पर्याय का नाश अवश्य होना चाहिये, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से एकान्तवाद का प्रसंग भा जायगा। ऐसा भी नहीं है कि जो वस्तु विनष्ट नहीं होती वह द्रव्य ही होना चाहिये, क्योंकि जिसमें उत्पाद-धौत्य और व्यय पाये जाते हैं उसे द्रव्यरूप से स्वीकार किया गया है।

प्राकृत नयचक्र में भी कहा है—

अककट्टिमा अणिहणा ससिसूराईण पञ्जया गिहणइ ।

जो सो अणाइणिच्छो जिणभणिओ पञ्जयरियणओ ॥२७॥

विशेषार्थ—पर्यायार्थिक नय के प्रथम भेद का विषय अनादिनित्य एवं पर्याय है और इस द्वारे भेद का विषय सादि-नित्य पर्याय है : सिद्धपर्याय ज्ञानावरणादि आठों कर्मों के क्षय से उत्पन्न होती है अतः सादि है किन्तु इस पर्याय का कभी नाश नहीं होगा इसलिये नित्य है । इसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाला ज्ञायिक ज्ञान, दर्शनावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाला ज्ञायिक दर्शन, मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले ज्ञायिक सम्यग्दर्शन, ज्ञायिक चारित्र तथा अनन्त सुख, अन्तराय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले ज्ञायिक दान, लगभ, भोग, उपभोग, दीर्घं ये सब ज्ञायिक भाव भी सादि-नित्य पर्याय हैं । कहा भी है—

‘जीवा एव ज्ञायिकभावेन सादिनिधनाः ।’

[पञ्चस्तिकाय ग्रा० ५३ टीका]

अर्थात्—ज्ञायिक भावों की अपेक्षा जीव भी सादि-अनिधन है ।

इसी बात को प्राकृत नयचक्र में भी कहा गया है—

कर्मखयादुपरणो अविणासी जो हु कारणाभावे ।

इदमेवमुच्चरंतो भृणाइ सो साइशिच्च गच्छो ॥२०१॥ [पृ० ७४]

अर्थात्—कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाले भाव अविनाशी हैं, क्योंकि कर्मोदयरूप बाधक कारण का अभाव है । इन ज्ञायिक भावों को विषय करने वाली सादि-नित्य पर्यायार्थिक नय है ।

संस्कृत नयचक्र में भी कहा है—

पर्यायार्थी भवेत्सादि व्यये सर्वस्य कर्मणः ।

उत्पन्नसिद्धपर्यायग्राहको नित्यरूपकः ॥२१॥ [पृ० ६]

आदर्शे पर्यायं नित्यं सादि च कर्मणोऽभावात् ।

स सादि नित्यपर्यायार्थिकनामा नयः सूतः ॥२२॥ [पृ० ४१]

‘शुद्धनिश्चयनयविवक्षाभृत्वा सकलकर्मद्योद्भूत चरमशरीरा-कारपर्यायपरिणतिरूपशुद्धसिद्धपर्यायः सादिनित्यपर्यायार्थिक नयः ॥२३॥ [पृ० ७]

अर्थ— शुद्धनिश्चयनय की विवक्षा न करके, सम्पूर्ण कमों के निरवशेषतया काय के द्वारा उत्पन्न हुई चरमशरीर के आकार वाली परिणतिष्ठप शुद्ध सिद्ध-पर्याय को जो नयग्रहण करता है, वह सादिनित्य पर्यायार्थिक नय है ।

३. सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकस्वभावोऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा समयं समयं प्रति पर्याया विनाशिनः ॥६०॥

सूत्रार्थ— ध्रीव्य को गोण करके उत्पाद-व्यय को प्रहण करने वाला नय अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक नय है जैसे— प्रति समय पर्याय विनाश होती है ।

विशेषार्थ— यहाँ पर 'सत्ता' का अभिप्राय ध्रीव्य से है और गोण का अर्थ अप्रधान है । प्राकृत नयचक में इस नय का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

सत्ता अमुक्तखरूवे उत्पादव्ययं हि गिर्हणए जो हु ।

सो हु सद्ग्रावविणिच्छोगाही खलु सुद्धपञ्जाओ ॥२०२॥ [पृ० ७५]

ध्रीव्य को गोण करके उत्पाद-व्यय को प्रहण करने वाला नय अनित्यशुद्ध-पर्यायार्थिक नय है ।

संस्कृत नयचक में भी कहा है—

सत्तागौणत्वाद्यो व्यथमुत्पादं च शुद्धमाचष्टे ।

सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययवाचकः स नयः ॥६॥ [पृ० ४२]

'सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकस्वभावानित्यशुद्धपर्यायार्थिकः ।'

[पृ० ४७]

अर्थात्— ध्रीव्य को गोण करके शुद्ध उत्पाद-व्यय को जो नय ग्रहण करता है वह अनित्य-शुद्ध-पर्यायार्थिक नय है ।

४. सत्तासापेक्षस्वभावो नित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा एक-स्मिन् समये त्रयात्मकः पर्यायः ॥६१॥

सूत्रार्थ— ध्रीव्य की अपेक्षा सहित ग्रहण करने वाला नय नित्य-शुद्ध-पर्यायार्थिक नय है । जैसे— एक समय में पर्याय उत्पाद-व्यय-ध्रीव्यात्मक है ।

विशेषार्थ— अत्यात्मक शब्द का अभिप्राय यह है कि पूर्वे पर्याय का विनाश, उत्तर पर्याय का उत्पाद और द्रव्यपने से ध्रौव्य । इस नय का विषय ध्रौव्य भी होने से इस नय को अशुद्धपर्यायाधिक कहा गया है, क्योंकि शुद्धपर्यायाधिक नय का विषय ध्रौव्य नहीं होता ।

प्राकृत नयचक्र में भी इस नय को अनित्य-अशुद्ध पर्यायाधिक नय कहा गया है । गाथा निम्न प्रकार है—

जो गद्दइ एकसमये उत्पादव्ययधुवत्संजुत्तं ।

सो सब्भावअणिरुचो अशुद्धओ पञ्जयत्यणाओ ॥२०३॥

[पृ० ७४]

अर्थात्— उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये तीनों एक समय में होते हैं । उन उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त सत्ता को जो नय ग्रहण करता है वह अनित्य-अशुद्ध-पर्यायाधिक नय है ।

ध्रौव्योत्पादव्ययग्राही कालेनैकेन यो नयः ।

स्वभावानित्यपर्यायग्राहकोऽशुद्ध उच्यते ॥१०॥

[संस्कृत नयचक्र पृ० ४२]

अर्थात्— एक ही काल में ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय को जो नय ग्रहण करता है वह अनित्य-अशुद्ध-पर्यायाधिक नय कहा गया है ।

५. कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावो नित्यशुद्धपर्यायिको यथा
सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः ॥६२॥

सूत्रार्थ— कर्मोपाधि (कर्मदंधन) से निरपेक्ष ग्रहण करने वाला नय नित्य-शुद्ध-पर्यायाधिक नय है । जैसे—संसारी जीवों की पर्याय (अरहंत पर्याय) सिद्ध समान शुद्ध है ।

विशेषार्थ— संस्कृत नयचक्र में इस नय का स्वरूप निम्न प्रकार कहा है—

विभावनित्यशुद्धोऽयं पर्यायार्थी भवेत् ।

संसारिजीवनिकायेषु सिद्धसादृश्यपर्यायः ॥५॥ [पृ० १०]

पर्यायानं गिनां शुद्धात् सिद्धानामिव यो बदेत् ।

स्वभावनित्यशुद्धोऽसौ पर्यायप्राप्तको नयः ॥११॥ [पृ० ४२]

‘चराचरपर्यायपरिणत समस्तसंसारीजीवनिकर्येषु शुद्धसिद्धपर्याय-
विवक्षाभावेन कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावनित्यशुद्धपर्यायाधिक नयः ॥५॥’
[पृ० ८]

अर्थ—चराचर पर्याय परिणत संसारी जीवधारियों के सभूह में शुद्ध सिद्ध पर्याय की विवक्षा से कर्मोपाधि से निरपेक्ष स्वभावनित्य-शुद्ध-पर्यायाधिक नय है । यहां पर संसाररूप विभाव में यह नय नित्य-शुद्ध-पर्याय को जानने की विवक्षा रखता है ।

प्राकृत नयचक्र में इस नय को अनित्य-शुद्ध-पर्यायाधिक नय कहा है—

देहीण पञ्जाया सुद्धा सिद्धाण भणाइ सारित्या ।

जो सो अणिच्चमुद्धो पञ्जयणाहो इवे सो एओ ॥२०४॥

[पृ० ७५]

अर्थात्—संसारी जीवों की पर्यायों को जो नय सिद्ध समान शुद्ध कहता है वह अनित्यशुद्धपर्यायाधिक नय है ।

६. कर्मोपाधिसापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायाधिको यथा
संसारिणामुल्पत्तिभरणे स्तः ॥६३॥

सूत्रार्थ—अनित्य-अशुद्ध-पर्यायाधिक नय का विषय कर्मोपाधि सापेक्ष स्वभाव है, जैसे संसारी जीवों का जन्म तथा मरण होता है ।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में इस नय का लक्षण निम्न प्रकार कहा है—

अशुद्धनित्यपर्यायान् कर्मजान् विवृणोति यः ।

विभावानित्यपर्यायप्राप्तकोऽशुद्धसंज्ञकः ॥१२॥ [पृ० ४२]

‘शुद्धपर्यायविवक्षाऽभावेन कर्मोपाधिसंजनितनारकादिविभाव-
पर्यायाः जीवस्वरूपमिति कर्मोपाधिसापेक्ष-विभावानित्याशुद्धपर्याया-
धिक नयः ॥’
[पृ० ८]

अर्थात्—शुद्ध पर्याय की विवक्षा न कर, कर्मजनित नारकादि विभाव पर्यायों को जीवस्वरूप बतलाने वाला नय अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिक नय है।

प्राकृत नयचक्र में भी कहा है—

भाण्ड विशिष्टात्मुद्धा विद्युत्त्वीयाण पर्याया जो हु ।

होइ विभाव अरिच्चो असुद्धओ पञ्जयत्थिग्नो ॥२०५॥

[पृ० ७५]

अर्थात्—जो नय संसारी जीवों की चतुर्गति सम्बन्धी अनित्य तथा अशुद्ध पर्यायों को श्रहण करता है वह विभाव-अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिक नय है।

॥ इस प्रकार पर्यायार्थिक नय के छह भेदों का निरूपण हुमा ॥

नैगमस्त्रेधा भूतभाविवर्तमानकालभेदात् ॥६४॥

सूत्रार्थ—भूत भाविवर्तमानकाल के भेद से नैगम नय तीन प्रकार की है।

विशेषार्थ—नैगम नय का स्वरूप सूत्र ४१ की टीका में कहा गया है और आगे सूत्र १६६ में कहेंगे। नैगमनय के तीन भेदों का स्वरूप ग्रंथकार कहते हैं। कुछ आचार्य नैगमनय छह प्रकार की कहते हैं। जैसे—१. अतीत को वर्तमान, २. वर्तमान को अतीत, ३. अनागत को वर्तमान, ४. वर्तमान को अनागत, ५. अनागत को अतीत, ६. अतीत को अनागत कहना।

अतीते वर्तमानारोपणं यत्र, स भूतनैगमो यथा अद्य दीपोत्सवदिने श्री चर्द्मानस्वामी मोक्षं गतः ॥६५॥

सूत्रार्थ—जहाँ पर अतीतकाल में वर्तमान को संस्थापन किया जाता है, वह भूत नैगम नय है। जैसे—आज दीपावली के दिन श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये हैं।

विशेषार्थ—जो नय भूतकाल सम्बन्धी पर्याय को वर्तमान काल में आरोपण करके, संस्थापन करके कहता है उसको भूत नैगम नय कहते हैं।

प्राकृत नयचक्र में भी इसी प्रकार कहा गया है—

णिवित्तदृढकिरिथा चृणकाले दुर्ज समाचरणं ।

तं भूयणद्वगमण्यं जह अड णिवुहदिणं चीरे ॥३३॥ [पृ० ८]

अर्थ—जो किया हो चुकी उसको वर्तमान काल में समाचरण करना वह भूत नैगम नय है जैसे श्राव भवावीर भगवान का निवारण दिवस है ।

अतीतं सांप्रतं कृत्वा निर्वाणं त्वद्य योगिनः ।

एवं वदत्यभिप्रायो नैगमातीतवाचकः ॥१॥

[संस्कृत नयचक्र पृ० १२]

अर्थ—जो अतीत योगियों के निवारण को वर्तमान में बतलाता है वह भूत नैगम नय का विषय है ।

‘तीर्थकरपरमदेवादिपरमयोगीद्वाः अतीतकाले सकलकर्मज्ञायं कृत्वा निर्वाणपदं प्राप्ताः संतोषि इदानीं सकलकर्मज्ञायं कृतवंत इति निर्वाणपूजाभिषेकार्चनाक्रियाविशेषान् कुर्वतः कारयत इति अथवा ग्रतगुरु-श्रुतगुरु-जन्मगुरु-प्रभृति सत्पुरुषा अतीतकाले समाधिविधिना गत्यंतरप्राप्ता अपि ते इदानीं अतिक्रांताः भवन्ति इति तदिने तेषां गुणानुरागेण दानपूजाभिषेकार्चनानि सांप्रतं कुर्वन्त इत्याद्यतीत विषयान् वर्तमानवत् कथनं अतीतनैगमयो भवति ।’

[संस्कृत नयचक्र पृ० १०]

अर्थ—यद्यपि तीर्थंकर परमदेव आदि योगीन्द्र अतीतकाल में सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके निवारण को प्राप्त कर चुके हैं, फिर भी वर्तमान में वे सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने वाले हैं, इस प्रकार निवारण की पूजा, अभिषेक और अर्चना विशेष क्रियाओं को वर्तमान में करते छोड़ करते हैं। अथवा ग्रतगुरु, दीक्षागुरु, शिक्षागुरु, जन्मगुरु आदि सत्पुरुष समाधि विधि से दूसरी गति को प्राप्त हो चुके हैं, फिर भी वे श्राव समाधि से बुक्त हुए हैं, इस प्रकार से उस उस दिन के गुणानुराग से दान, पूजा, अभिषेक और अर्चा को वर्तमान काल में

करते हैं। इस प्रकार अतीत विषयों को वर्तमान के समान कथन करना भूत-नैगम नय है।

**भाविनि भूतव्यत्क्रमन् थश् सुभविनैगम्यो यदा अर्हन्
सिद्ध एव ॥६६॥**

सूत्रार्थ—जहां भविष्यत् पर्याय में भूतकाल के समान कथन किया जाता है वह भाविनैगम नय है। जैसे—अरहत्त सिद्ध ही हैं।

विशेषार्थ—जो नय आगामी काल में होने वाली पर्याय को अतीतकाल में कथन करता है वह भाविनैगम नय है। जैसे—श्री अरहत् भगवान् अभी सिद्धभगवान् नहीं हैं, आगामी काल में होवेंगे—उन अरहत् भगवान् को जो नय सिद्ध रूप से कथन करती है, वह भाविनैगम नय है। प्राकृत नयचक्र में कहा है—

गिरिपराणमिव पर्यंपदिभाविष्यत्थं खरो अणिपरणां ।

अप्पत्थे जह पत्थं भरणाह सो भावि णइगमोत्ति णओ ॥३५॥

[पृ० ८]

अर्थात्—जो नय अनिष्ट, भावि पदार्थ को निष्टव्यवत् कहता है, जैसे अप्रस्थ को प्रस्थ कहता है वह भाविनैगम नय है।

संस्कृत नयचक्र में भी इस प्रकार कहा है—

चित्तस्थं यदनिष्टुत्प्रस्थके प्रस्थकं यथा ।

भाविनो भूतवद्ब्रूते नैगमोऽनागतो भतः ॥३॥ [पृ० १२]

अर्थात्—अपूर्ण (अनिष्ट) प्रस्थ में प्रस्थ की संकल्पना करना अर्थात् भावि को भूतवत् बतलाना भाविनैगम नय है।

**‘भाविकाले परिणमिष्यतोऽनिष्पत्तिकियाविशेषान् वर्तमानकाले
निष्पत्ता इति कथनं ।’** [संस्कृत नयचक्र पृ० १२]

जो पर्याय अभी अनिष्ट है, भाविकाल में निष्ट होगी उसको वर्तमान में निष्ट कहना भावि नैगम नय है। जैसे—

‘विवक्षाकाले ऽर्थाद्येकरान् रावणलङ्घनोधरश्चेति कावीन् तीर्थकर-
परमदेवा इति अविराज्य पदव्यभावे ऽपि नृपकुमाराधिराज इति कथनं,
प्रस्थप्रायोग्यवस्तुविशेषः प्रस्थमित्यादिदृष्टांतान् भाविकाले निष्पन्नान्
भविष्यन्तोऽवतिष्ठमानान् विषयान् निष्पन्ना इति कथनं भाविनैगम
नयः ।

[पृ० ११]

अर्थ—विवक्षाकाल में जो तीर्थकर नहीं हैं उन भावी रावण, लक्मण
श्चेति कावि आदि को परमतीर्थकर देव कहना, राज्यपद को अशास्त्र राजकुमार
को राजा कहना, प्रस्थयोग्य वस्तुविशेष को प्रस्थ कहना इत्यादिक दृष्टांतों को,
भाविकाल में पूर्ण होने वाले भाविरूप में रहने वाले विषयों को पूर्ण हो गये
इस प्रकार से कथन करना भाविनैगम नय है ।

कर्तुं मारव्यमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत्क-
ष्यते यत्र स वर्तमाननैगमो यथा श्रोदनः पच्यते ॥६७॥

सूत्रार्थ—करने के लिए प्रारम्भ की गई ऐसी ईषत् निष्पन्न (ओड़ी बनी
हुई) अथवा अनिष्पन्न (बिलकुल नहीं बनी हुई) वस्तु को निष्पन्नवत् कहना वह
वर्तमान नैगम नय है । जैसे—भात पकाया जाता है ।

विशेषार्थ—प्रारम्भ किये गये किसी कार्य को, उस कार्य के पूर्ण नहीं
होने पर भी पूर्ण हुआ कह देना वर्तमान नैगम नय है । जैसे—कोई पुरुष भात
बनाने की सामग्री डकड़ी कर रहा या किन्तु उसका यह कहना कि ‘भात बना
रहा हूँ’, वर्तमान नैगम नय का विषय है । प्राकृत नय चक्र में भी कहा है—

पारद्वा जा किरिया पथणविहाणादि कहइ जो सिद्धा ।

लोए व पुच्छमाणे तं भरणइ बट्टमाणणार्य ॥३४॥ [पृ० ८]

अर्थ—चाल से पकाने की क्रिया प्रारम्भ करते समय पूछे जाने पर यह
कहना कि ‘भात बना रहा हूँ’ वर्तमान नैगम नम है ।

संस्कृत नय चक्र में भी कहा है—

अनिष्टपन्नं क्रियारूपं निष्टपन्नं गदति स्फुर्तं ।

नैगमो वर्तमानः स्यादोदनं पच्यते यथा ॥२॥ [पृ० १२]

अथवा—अपूर्ण क्रियारूप को जो निष्टपन्नपूर्ण बतलाता है वह वर्तमान नैगमनय है । जैसे—भात पकाया जाता है ।

‘वसति करोमि, ओदनं पक्वान्नं पचामि, वाहं करोमीत्याद्-
निष्टपन्नक्रियाविशेषानुदिश्य निष्टपन्ना इति उदनं वर्तमाननैगमनयः ।’

[पृ० १०]

अथ—मैं वसतिका बताता हूँ, भात को, पक्वान्न को पकाता हूँ, इत्यादि अपूर्ण क्रिया विशेषों को लक्ष्य करके ‘पक मये’ ऐसा कहना वर्तमान नैगमनय है ।

॥ इस प्रकार नैगम नय के तीनों भेदों का निष्कलन हुआ ।

संग्रहो द्वेषाः ॥६८॥

सूत्रार्थ—संग्रह नय दो प्रकार का है (१) सामान्य संग्रह (२) विशेष संग्रह । अथवा—शुद्ध संग्रह, अशुद्ध संग्रह के भेद से दो प्रकार का है । सामान्य संग्रह को शुद्ध संग्रह और विशेष संग्रह को अशुद्ध संग्रह समझा चाहिए ।

शुद्ध संग्रह अथवा सामान्य संग्रह का स्वरूप—

सामान्यसंग्रहो यथा सर्वाणि द्रव्याणि परस्परमविरोधीनि
॥६९॥

सूत्रार्थ—सामान्य संग्रह नय, जैसे—सर्व द्रव्य परस्पर अविरोधी हैं ।

विशेषार्थ—सर्व द्रव्य सामान्य से सत् रूप हैं, क्योंकि ‘सत्’ द्रव्य का लक्षण है । इसीलिए सर्व द्रव्य परस्पर में अविरोधी हैं । ‘सत्’ कहने से जीव अजीव सभी द्रव्यों का ग्रहण हो जाता है अतः यह सामान्य संग्रह नय का विषय है । प्राकृत नयचक्र में कहा भी है—

‘अदरे परमविरोहे सर्वं अतियस्ति सुद्धसंग्रहणो ॥ [पृ० ८]

अर्थ—सबं द्रव्यों में परस्पर अविरोध है क्योंकि सब् रूप है—यह शुद्ध-
संग्रह अथवा सामान्य-संग्रह नय है।

संस्कृत नयचक्र में भी कहा है—

‘परस्पराविरोधे न समस्तपदार्थसंप्रहृष्टवचनप्रयोगचातुर्येण कथ्य-
मानं सर्वं सदित्येतत् सेनावननगरभित्येतत् प्रशुत्यनेकजाति निचय-
मेकवचनेन स्वीकृत्य कथनं सामान्यसंग्रहनयः।’ [पृ० १३]

अर्थ—परस्पर अविरोध रूप से सम्पूर्ण पदार्थों के संग्रहरूप एकवचन के
प्रयोग के चातुर्य से कहा जाने वाला सब् सब् रूप है। इस प्रकार से सेना-
समूह, बन, नगर आदि अनेक जाति के समूह को एकवचन रूप से स्वीकार करके
कथन करना सामान्य संग्रह नय है।

विशेषसंग्रहो यथा सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः ॥७०॥

सूत्रार्थ—विशेषसंग्रहनय, जैसे—सबं जीव परस्पर में अविरोधी हैं, एक हैं।

विशेषार्थ—जो नय एक जाति विशेष की अपेक्षा से अनेक पदार्थों को
एकरूप ग्रहण करता है वह विशेष संग्रह नय है। जैसे—चैतन्यपने की अपेक्षा
से सम्पूर्ण जीवराशि एक है। जीव के कहने से सामान्यतया सब् जीवों का
तो ग्रहण हो जाता है परन्तु अजीव का ग्रहण नहीं होता है, अतः यह विशेष
संग्रह नय है। प्राकृत नयचक्र में भी कहा है—

‘होइ तमेव असुद्धं इगिजाइविसेसग्रहणेण।’ [पृ० ७६]

अर्थात्—एक जातिविशेष ग्रहण करने से वह अशुद्ध (विशेष) संग्रह
नय है।

संस्कृत नयचक्र में भी इसी प्रकार कहा है—

‘जीवनिचयाजीवनिचयाहस्तिनिचयनुरंगनिचयरथनिचयपदाति—
निचय इति निबुजं वीरजं बूमाकं दनालिकेरनिचय इति द्विजवर
वणिम्बर तलवराद्यष्टादशश्रेणीनिचय इत्यादि हस्तातिः प्रत्येकजाति-
निचयमेकवचनेन स्वीकृत्य कथनं विशेषसंग्रहनयः।’ [पृ० १३]

अर्थ— जोव समूह, अजीव समूह, हाथियों का भुण्ड, घोड़ों का झुण्ड, रथों का समूह, पैदल चलने वाले सैनिकों का समूह, निबु, जासुन, आम व नारियल का समूह; इसी प्रकार द्विजवर, वणिकश्रेष्ठ, कोटपाल आदि अठारह श्रेणी के विषय इत्यादिक हृष्टातों के द्वारा प्रत्येक जाति के समूह को नियम से एकवचन द्वारा स्वीकार करके कथन करना विशेष संग्रह नय है।

॥ इस प्रकार संग्रह नय के दोनों भेदों का कथन मृश्या ॥

व्यवहारोऽपि द्वेधा ॥७१/१॥

सूत्रार्थ— व्यवहारनय भी दो प्रकार का है (१) सामान्य (२) विशेष।

विशेषार्थ— संस्कृत नयचक्र में कहा भी है—

यः संग्रहग्रहीतार्थे शुद्धाशुद्धे विभेदकः ।

शुद्धाशुद्धाभिधानेन व्यवहारो द्विधा मतः ॥१७॥ [पृ० ४२]

अर्थ— शुद्ध (सामान्य) संग्रह नय द्वारा ग्रहीत अर्थ की भेदक तथा अशुद्ध (विशेष) संग्रह नय द्वारा ग्रहीत अर्थ की भेदक व्यवहार नय भी शुद्ध, अशुद्ध (सामान्य, विशेष) के अभिधान से दो प्रकार का है।

सामान्य व्यवहार नय का स्वरूप—

सामान्यसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवाजीवाः

॥७१/२॥

सूत्रार्थ— सामान्यसंग्रह नय के विषयभूत पदार्थ में भेद करने वाला सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहारनय है। जैसे—द्रव्य के दो भेद हैं—जीव और अजीव।

विशेषार्थ— संस्कृत नयचक्र में इस नय का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

सामान्यसंग्रहस्यार्थे जीवाजीवादि भेदतः ।

भिनत्ति व्यवहारोर्यं शुद्धसंग्रहभेदकः ॥१॥ [पृ० १५]

‘अनेन सामान्यसंग्रहनयेन स्वीकृतसत्ता सामान्यरूपार्थं भित्वा जीवपुद्गलादिकथनं, सेनाशब्देन स्वीकृतार्थं भित्वा हस्त्य धरयपदाति-

कथनं, नगरशब्देन स्वीकृतार्थं भित्वा अयस्कार सुवर्णकारकांस्यकारौष-
धिकारशब्दकारजालकारवैष्णकारादि कथनं, वनशब्देन स्वीकृतार्थं
भित्वा पनसाम्रनालिकेरपूर्गद्रुमादि कथनमिति सामान्यसंपहभेदक-
व्यवहारनयो भवति ।’ [पृ० १४]

अर्थ—जो सामान्यसंप्रह के द्वारा कहे गये अर्थ को जीव अजीव आदि के
भेद से विभाजन करता है वह शुद्धसंप्रह का भेदक व्यवहारनय है । इस तरह
सामान्यसंप्रह नय के द्वारा स्वीकृत सत्ता सामान्य अर्थ को भेदकर जीव,
पुरुगल कहना; सेना शब्द के द्वारा स्वीकृत अर्थ को भेदकर हाथी, घोड़ा, रथ,
प्यादे आदि को कहना; नगर शब्द के द्वारा स्वीकृत पदार्थ का भेद कर लुहार,
सुनार, कंसार, औषधिकार, मारक, जलकार, वैष्ण आदि कहना; वन शब्द
के द्वारा स्वीकार किये गये अर्थ को भेदकर पनस आम, नारियल, सुपारी
आदि वृक्षों को कहना सामान्य संप्रह का भेदक व्यवहारनय है ।

**विशेषसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा जीवाः संसारिणो मुक्ता-
इच ॥७२॥**

सूत्रार्थ—विशेष संग्रह नय के विषयभूत पदार्थ को भेदरूप से ग्रहण करने
वाला विशेषसंग्रहभेदक व्यवहार नय है, जैसे—जीव के संसारी और मुक्त ऐसे
दो भेद करना ।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में इस नय का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

विशेषसंग्रहस्यार्थे जीवादौ रूपभेदतः ।

भिनत्ति व्यवहारस्त्वशुद्धसंग्रहभेदकः ॥२॥ [पृ० १५]

‘विशेषसंग्रहनयेन स्वीकृतार्थान् जीवपुरुगलनिच्यान् भित्वा देव-
नारकादिकथनं घटपटादिकथनं, हस्त्यश्वरथपदातीन् भित्वा भद्रगज-
जात्यश्व-महारथ-शतभट-सहस्रभटादिकथनं, निश्चिन्दुजंबीरनारंग-
नालिकेरसहकारपादपनिच्यं भित्वा सरसविरसता मधुराम्रादिरस-

विशेषतां परिमलतां हरितयाण्डुरादिवर्णविशेषतां हस्तवदीर्घतां सफल-
निःफलतामित्यादि कथनं, तलवाराण्डादशभेगीनिच्चयं भित्वा
बलाबलतां सस्वनिस्वतां कुशलाकुशलतां योग्ययोग्यतां कुञ्जदीर्घतां
कुरुपसुरूपतां स्त्रीपुंसपुंसकभेदविशेषतां कर्मविभागतां सदसदाचरणतां
च कथनमित्याद्यनेकविषयान् भित्वा कथनं विशेषसंग्रहभेदकठ्यवहार-
नयो भवति ।'

[पृ० १४]

अर्थ—जो विशेषसंग्रहक नय के विषयभूत जीवादि पदार्थ को रूपभेद से—
स्वरूपभेद से विभाजित करता है वह अशुद्धसंग्रह (विशेषसंग्रह) भेदक व्यवहार
नय है । विशेषसंग्रह नय के द्वारा स्वीकृत पदार्थों को जीवपुद्गलों के समूह
को भेद करके देवनारकादिक और शृणु वस्त्रादिक का कथन करना; हस्ति,
घोड़े, रथ, प्यादों को भेदरूप से विकल्प करके भद्र हाथी, सुन्दर घोड़ा, महारथ,
षटभट, सहस्रभट आदि रूप से कहना; निब, जामून, जंबीर, नारंगी, नारियल
और आम के समूह को भेद करके सरस, दिरसता को, भञ्जुर आम के रस की
विशेषता को, सुगन्धता को, हरित-स्वेत-पीतादिक वरण-विशेषता को, हस्त-
दीर्घता को, सफलता-निष्फलता आदि से युक्त कहना; रथों को, तलवर, कोत-
वाल आदि अठारह श्रेणी-समूह के भेद कर बलाबल को, सधनता-निर्धनता
को, कुशलता-प्रकुशलता को, योग्यता-प्रयोग्यता को, कुबञ्जपन व मोटाये को,
कुरुपता-सुरूपता को, स्त्री-पुरुष-नपुंसक को, कर्मफल को, सदाचरण-
असदाचरण को कहना, इत्यादि अनेक विषयों को भेद करके कहना विशेष-
संग्रह-भेदक-व्यवहारनय है ।

॥ इस प्रकार व्यवहार नय के धोनों भेदों का निरूपण हुआ ॥

—०००—

ऋच्छुसूत्रोपि द्विविधः ॥७३॥

सूत्रार्थ—ऋच्छुसूत्र नय भी दो प्रकार का है । अर्थात्—(१) सूक्ष्मऋच्छुसूत्र
नय (२) स्थूलऋच्छुसूत्र नय । ऋच्छुसूत्र नय का विशेष कथन सूत्र ४१ की टीका
में है ।

सूक्ष्मक्रज्जुसूत्र नय का स्वरूप—

सूक्ष्मज्ञं सूत्रो यथा एकसमयावस्थायी पर्यायः ॥७४॥

सूत्रार्थ—जो नय एक समयवर्ती पर्याय को विषय करता है वह सूक्ष्मक्रज्जुसूत्र नय है।

विशेषार्थ—प्राकृत नयचक्र में भी सूक्ष्मक्रज्जुसूत्र नय का स्वरूप निम्न प्रकार कहा है—

जो एयसमयवद्वी गेहूद्वे दृढवे धुवत्तपञ्जाओ ।

सो रिउसुत्ते सुहुमो सव्वं सदं जहा खणियं ॥२११॥ [पृ० ७६]

अर्थात्—जो नय द्रव्य में एक समयवर्ती पर्याय को ग्रहण करता है, वह सूक्ष्मक्रज्जुसूत्र नय है। जैसे—‘शब्द’ काणिक है।

संस्कृत नयचक्र में भी कहा है—

द्रव्ये गृह्णाति पर्यायं ध्रुवं समयमात्रिकं ।

श्रज्जुसूत्राभिघः सूक्ष्मः स सर्वे क्षणिकं यथा ॥१८॥ [पृ० ४२]

द्रव्य में समयमात्र रहने वाली पर्याय को जो नय ग्रहण करती है, वह सूक्ष्मक्रज्जुसूत्र नय कही गई है। जैसे सर्व काणिक है।

‘प्रतिसमय प्रवर्तमानार्थपर्याये वस्तुपरिणमनमित्येषः सूक्ष्मक्रज्जुसूत्र नयो भवति ।’ [पृ० १६]

‘अर्थपर्यायापेक्ष्या समयमात्रं ।’ [पृ० १७]

अर्थ—प्रति समय प्रवर्तमान अर्थपर्याय में वस्तुपरिणमन को विषय करने वाला सूक्ष्मक्रज्जुसूत्र नय है। अर्थ पर्याय की अपेक्षा समयमात्र काल है।

स्थूलक्रज्जुसूत्र नय का स्वरूप—

स्थूलज्ञं सूत्रो यथा मनुष्यादिपर्यायास्तदायुःप्रमाणकालं तिष्ठन्ति ॥७५॥

सूत्रार्थ—जो नय अमेक समयवर्ती स्थूलपर्याय को विषय करता है, वह

स्थूलश्चजुसूत्र नय है। जैसे—मनुष्यादि पर्यायेऽपनी-अपनी आयु प्रमाण काल तक रहती हैं।

विशेषार्थ—प्राकृत नयचक्र में स्थूलश्चजुसूत्र नय का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

मुणुवाइयपञ्जाश्चो मणुसोति सगद्विदीसु बहुतो ।

जो भण्ड तावकालं सो धूलो होइ रिजसुत्तो ॥२१२॥ [पृ० ७७]

अर्थात्—अपनी स्थिति पर्यंत रहने वाली मनुष्य आदि पर्याय को उत्तमे काल तक जो नय मनुष्य आदि कहता है वह स्थूलश्चजुसूत्र नय है।

सस्कृत नयचक्र में इस प्रकार कहा है—

यो नरादिकपर्यायं स्वकीयस्थितिवर्त्तनं ।

तावत्कालं तथा चष्टे स्थूलास्यश्चजुसूत्रकः ॥१६॥ [पृ० ४२]

मनुष्यादि पर्यायेऽपनी-अपनी स्थिति काल तक रहती हैं। उत्तमे काल तक मनुष्य आदि कहना स्थूलश्चजुसूत्र नय है।

‘नरनारकादिघटपटादिव्यंजनपर्यायेषु नीवपुद्गलाभिषानस्य-
वस्तुनि परिणतानीति स्थूलश्चजुसूत्रनयः [पृ० १६]। व्यंजनपर्याया-
पेत्तया प्रारम्भतः प्रारम्भ अवसान यावद्भवतीति निश्चयः कर्तव्य
इति तात्पर्ये ।’ [पृ० १७]

अर्थ—नर-नारक आदि और घट-पट आदि व्यंजन पर्यायों में जीव और पुद्गल नामक पदार्थ परिणत हुए हैं। इस प्रकार का विषय स्थूलश्चजुसूत्र नय का है। व्यंजनपर्याय की अपेक्षा प्रारम्भ से अवसान तक वर्तमान पर्याय निश्चय करना चाहिये।

॥ इस प्रकार श्चजुसूत्र नय के दोनों भेदों का कथन हुआ ॥

शब्दसमभिरुद्धैवंभूता नयाः प्रत्येकमेकैका नयाः ॥७६॥

सूत्रार्थ—शब्द नय, समभिरुद्ध नय और एवंभूत नय हन तीनों नयों में से प्रत्येक नय एक एक प्रकार का है। शब्द नय एक प्रकार का है, समभिरुद्ध

नय एक प्रकार का है तथा एवंभूत नय एक प्रकार का है ।

शब्द नय का कथन—

शब्दनयो यथा दाराः भार्या कलशं जलं आपः ॥७७॥

सूत्रार्थ—शब्द नय जैसे—दारा, भार्या कलश अथवा जल व आप एकार्थ-वाची हैं ।

विशेषार्थ—इस नय का विशेष कथन सूत्र ४१ की टीका में किया जा चुका है । किन्तु संस्कृत नयचक्र में इस प्रकार कहा है—

‘शब्दप्रयोगस्थार्थं जानामीति कृत्वा तत्र एकार्थमेकशब्देन साते सति पर्यायशब्दस्य अर्थक्रमो यथेति चेत् पुष्ट्यतारका नक्षत्रभित्येकार्थो भवति । अथवा दाराः कलशं भार्या इति एकार्थो भवतीति कारणेन लिंगसंख्यासाधनादि व्याख्यातार्थं भूक्त्वा ज्ञानानुसारार्थं स्वीकर्त्तव्य-भित्ति शब्दनयः ।’ [पृ० १७]

अर्थ—‘शब्दप्रयोग के अर्थों को जानता हूँ’ इस प्रकार अभिप्राय को धारणा करके एक शब्द के द्वारा एक अर्थ को जान लेने पर पर्यायवाची शब्द का अर्थक्रम जैसे पुष्ट्य, तारक और नक्षत्र ये एकार्थ के दाचक हैं इसलिए इन का एकार्थ है । अथवा दारा, कलश, भार्या इनका एकार्थ होता है । कारण-वशाद् लिंग, संख्या, साधन आदि के व्यभिचार को छोड़कर शब्द के अनुसार अर्थ को स्वीकार करता चाहिये यह शब्दनय है ।

टिप्पणी में कहा है—जहाँ पर लिंग, संख्या, साधन आदि का व्यभिचार होने पर भी वोष नहीं है वह शब्द नय है ।

प्राकृत नयचक्र में इस प्रकार कहा है—

जो बट्टणं ण मरणाङ् एवत्ये भिणणलिंगं आईणं ।

सो सदणओ भणिणो पुस्ताह्याङ् वदा ॥२१३॥ [पृ० ७७]

अर्थ—जो नय एक पदार्थ में भिन्न लिंगादिक की स्थिति को नहीं जानता है वह शब्द नय है जैसे—पुष्ट्यादि ।

शब्द नय के विषय में दो मत हैं—एक मत यह है कि शब्द नय लिंग

आदि के दोष को दूर करता है। दूसरा मत है कि शब्द नय की हृष्टि में लिग, संख्या, साधन आदि का दोष नहीं है।

समभिरुद्धनयो यथा गोः पशुः ॥७८॥

सूत्रार्थ—नाना अर्थों को 'सम' अर्थात् छोड़कर प्रधानता से एक अर्थ में रुद्ध होता है वह समभिरुद्ध है। जैसे—'गो' शब्द के बचन आदि अनेक अर्थ पाये जाते हैं तथापि वह 'पशु' अर्थ में रुद्ध है।

विशेषार्थ—समभिरुद्ध नय का स्वरूप विस्तारपूर्वक सूत्र ४१ की टीका में कहा जा चुका है। आगे सूत्र २०१ में भी इसका लक्षण कहेंगे।

एवंभूतनयो यथा इन्द्रतीति इन्द्रः ॥७९॥

सूत्रार्थ—जिस नय में वर्तमान किया ही प्रधान होती है वह एवंभूतनय है। जैसे—जिस समय देवराज इन्द्रन किया को करता है उस समय ही इस नय की हृष्टि में वह इन्द्र है।

विशेषार्थ—सूत्र ४१ की टीका में एवंभूत नय का स्वरूप सविस्तार कहा जा चुका है। आगे सूत्र २०२ में भी इसका स्वरूप कहा जायगा।

॥ द्वयार्थिक नय के १० भेद, पर्यायार्थिक नय के ६ भेद, नैगम नय के ३ भेद, संघर्षनय के २ भेद, व्यवहार नय के २ भेद, अजुसूत्र नय के २ भेद, शब्द नय, समभिरुद्धनय और एवंभूतनय ये तीन, इस प्रकार नय के २८ भेदों का कथन हुआ ॥

—०००—

उपनयभेदा उच्यन्ते ॥८०॥

सूत्रार्थ—उपनय के भेदों को कहते हैं।

विशेषार्थ—उपनय का लक्षण सूत्र ४३ में कहा जा चुका है। उसके तीन मूल भेद हैं—१. सद्भूत, २. भसद्भूत, ३. उपचरित भसद्भूत व्यवहारनय।

सद्भूतव्यवहारो द्विधा ॥८१॥

सूत्रार्थ—सद्भूत व्यवहारनय दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—सूत्र ४४ में उपनय के तीन भेद बतलाये थे—(१) सदभूत व्यवहारनय, (२) असदभूत व्यवहारनय, (३) उपचरित असदभूत व्यवहारनय। इनमें से सर्वप्रथम सदभूत व्यवहारनय के भेदों को कहते हैं। व्यवहारनय का लक्षण तथा सदभूत व्यवहारनय का लक्षण सूत्र ४४ की टीका में कहा जा चुका है, आगे भी सूत्र २०५ व २०६ में कहेंगे। शुद्धसदभूत और अशुद्धसदभूत के भेद से सदभूत व्यवहारनय दो प्रकार की है।

शुद्ध सदभूत व्यवहारनय—

**शुद्धसदभूतव्यवहारो यथा शुद्धगुणशुद्धगुणिनोः शुद्धपर्याय-
शुद्धपर्यायिणोभेदकथनम् ॥८२॥**

सूत्रार्थ—शुद्धगुण और शुद्धगुणी में तथा शुद्धपर्याय और शुद्धपर्यायी में जो नय भेद का कथन करता है वह शुद्धसदभूत व्यवहारनय है।

विशेषार्थ—कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध जीव गुणी और क्षायिक शुद्ध ज्ञान में तथा सिद्ध जीव व सिद्धपर्याय में भेद कथन करना शुद्धसदभूत व्यवहारनय का विषय है।

संस्कृत नयचक्र में भी इस प्रकार कहा है—

**‘संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभिर्भित्त्वा शुद्धद्रव्ये गुणगुणिविभागैक-
लक्षणं कथयन् शुद्धसदभूतव्यवहारोपनयः।’** [पृ० २१]

संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन के द्वारा भेद करके शुद्ध द्रव्य में गुण और गुणी के विभाग के एक मुख्यलक्षण को कहने वाला शुद्धसदभूत व्यवहारनय है।

अशुद्धसदभूत व्यवहारनय—

**अशुद्धसदभूतव्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाऽशुद्धगुणिनोरशुद्ध-
पर्यायाशुद्धपर्यायिणोभेद कथनम् ॥८३॥**

सूत्रार्थ—अशुद्धगुण और अशुद्धगुणी में तथा अशुद्धपर्याय और अशुद्धपर्यायी में जो नयभेद का कथन करता है वह अशुद्धसदभूतव्यवहारनय है।

विशेषार्थ—‘संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभिर्भित्त्वा अशुद्धद्रव्ये गुणगुणि-

विभागैकलक्षणं कथयन् अशुद्धसद्भूतव्यवहारोपनयः ।'

[संस्कृत नयचक्र पृ० २१]

अर्थात्—संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन के ढारा भेद करके अशुद्ध द्रव्य में गुण और गुणी के विभाग रूप मुख्य लक्षण को कहने वाला अशुद्ध-सद्भूतव्यवहारनय है।

॥ इस प्रकार सद्भूतव्यवहारनय के दोनों भेदों का कथन हुआ ॥

असद्भूतव्यवहारस्तेता ॥८४॥

सूत्रार्थ—असद्भूतव्यवहारनय तीन प्रकार की है।

विशेषार्थ—असद्भूत व्यवहारनय का लक्षण सूत्र ४४ की टीका में कहा जा चुका है और आगे भी सूत्र २०७ में कहेंगे। संस्कृत नयचक्र में भी कहा है—

‘यदन्यस्य प्रसिद्धस्य धर्मस्थान्यत्र कल्पना असद्भूतो भवेद्वाचः ।’

[पृ० २२]

अर्थ—अन्य के प्रसिद्ध धर्म को किसी अन्य में कल्पित करना सो असद्भूतव्यवहारनय है।

असद्भूतव्यवहारनय के तीन भेद हैं—(१) स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय, (२) विजात्यसद्भूतव्यवहारनय, (३) स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारनय ।

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय का लक्षण—

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथनमित्यादि ॥८५॥

सूत्रार्थ—स्वजाति-असद्भूत-व्यवहारनय जैसे परमाणु को बहुप्रदेशी कहना, इत्यादि ।

विशेषार्थ—जो भय स्वजातीय द्रव्यादिक में स्वजातीय द्रव्यादि के सम्बन्ध से होने वाले धर्म का आरोपण करता है वह स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय है। जैसे—परमाणु बहुप्रदेशी है। परमाणु अन्य परमाणुओं के सम्बन्ध से वह-

प्रदेशी हो सकता है। यहाँ पर स्वजातीय द्रव्य में स्वजातीय द्रव्य के सम्बन्ध से होने वाली विभावपर्यायि का आरोपण किया गया है। कहा भी है—

अगुरुरेकप्रदेशोपि येनानेकप्रदेशकः ।

वाच्यो भवेषसदभूतो व्यवहारः स भवेषते ॥५॥

[संस्कृत नयचक पृ० ४७]

अर्थ—जिसके द्वारा अर्णु एकप्रदेशी होने पर भी बहुप्रदेशी बतलाया जाता है वह भी असद्भूत-व्यवहारनय है।

संस्कृत नयचक में पृ० २२ पर स्वजात्यसदभूतव्यवहारनय का कथन इस प्रकार किया गया है—

**‘पुद्गलाद्रव्यस्य घटपदादिसम्बन्धप्रबन्धपरिणतिविशेषकथकः स्व-
जात्यसदभूतव्यवहारोपनयः । …स्कंघरूपस्वरूपेषु पुद्गलस्त्विति
भाष्यते, इत्यसदभूतरूपोसौ व्यवहारस्वजातिकः ।’**

अर्थ—घट वस्त्र इत्यादिक सम्बन्धी रचना की परिणति विशेष को पुद्गल द्रव्य के बतलाने वाला स्वजात्यसदभूत व्यवहार उपनय है। अथवा स्कंघरूप निजपर्यायों में पुद्गल है इस प्रकार का कथन करने वाला स्वजाति से असद्भूतव्यवहाररूप स्वजातीयासदभूतव्यवहारोपनय है।

विजात्यसदभूतव्यवहारोपनय—

**विजात्यसदभूतव्यवहारो यथा भूतं मतिज्ञानं यतो मूर्तं
द्रव्येण जनितम् ॥८६॥**

सूत्रार्थ—विजात्यसदभूतव्यवहार उपनय जैसे मतिज्ञान मूर्त है क्योंकि मूर्तद्रव्य से उत्पन्न हुआ है।

विशेषार्थ—जो नय विजातीय द्रव्यादिक में विजातीय द्रव्यादिक का स्थापन करता है वह विजात्यसदभूतव्यवहार उपनय है। जैसे—मूर्तिक मतिज्ञानावरण कर्म और वीयतिरायकर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला क्षयोपशमिक मतिज्ञान मूर्तिक है। यहाँ पर मतिज्ञान नामक मात्रमयुग्म में पौद्गलिक मूर्तत्वयुग्म कहा गया है।

संस्कृत नयचक्र पृ० २२ पर इस उपनय का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है :

‘एकेन्द्रियादिजीवानां शरीराणि जीवस्वरूपाणीति विजात्यसद्भूत-
व्यवहारोपनयः । … एकेन्द्रियादिजीवानां देहं जीव इति धुवं वक्त्य-
सद्भूतको नूनं स्याद् विजातीति संक्षिप्तः ।’

अर्थ—एकेन्द्रियादि जीवों के शरीर जीवस्वरूप हैं, इस प्रकार से कथन करने वाला विजातीय-असद्भूत-व्यवहार-उपनय है। एकेन्द्रियादि जीवों का शरीर जीव है, इस प्रकार कथन करने वाला विजातीय-असद्भूत-व्यवहार-उपनय है। यही विजाति द्रव्य को विजाति द्रव्य में कहा गया है।

शरीरमपि यो जीवं प्राणिनो वदति स्फुटं ।

असद्भूतो विजातीयो ज्ञातव्यो मुनिवाक्यतः ॥१॥

मूर्तमैवमिति ज्ञानं कर्मणा जनितं यतः ।

यदि नैव भवेन्मूर्तं मूर्तेन स्खलितं कुतः ॥२॥

[संस्कृत नयचक्र पृ० ४५]

अर्थ—जो प्राणियों के शरीर को ही जीव बतलाता है, वह स्पष्टतया विजातीय-असद्भूतव्यवहार उपनय समझना चाहिए, क्योंकि विजातीय पुढ़गल द्रव्य में विजातीय जीव द्रव्य का कथन किया गया है ॥१॥ विजातीय गुण में विजातीय गुण का अरोपण करने से भी असद्भूत व्यवहार होता है। जैसे—कर्म से जनित होने से ज्ञान मूर्त है, यदि मूर्त नहीं है तो मूर्त से स्खलित क्यों होता। भविज्ञान मूर्त द्रव्य से स्खलित होता है अतः भविज्ञान को मूर्त कहना सत्य है। सर्वथा असत्य नहीं है।

स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहार उपनय—

स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा ज्ञेये जीवेऽजीवे
ज्ञानमिति कथनं ज्ञानस्य विषयात् ॥८७॥

सूत्रार्थ—ज्ञान का विषय होने के कारण जीव अजीव ज्ञेयों में ज्ञान का

कथन करना स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारोपनय है ।

विशेषार्थ—जीव और अजीव ज्ञान का विषय होने के कारण विषय में विषयी का उपचार करके जीव-अजीव ज्ञेय को ज्ञान कहा गया है । यहाँ पर ज्ञान गुण की अपेक्षा जीव स्वजातीय है और अजीव विजातीय है । जीव की अपेक्षा स्वजातीय तथा अजीव की अपेक्षा विजातीय में ज्ञान गुण का कथन किया गया है ।

संस्कृत नयचक्र पृ० २२ पर इस नय का स्वरूप निम्न प्रकार कहा गया है—

‘जीवपुद्गलानां परस्परसंयोगप्रबंधपरिणतिविशेषकथकः स्वजाति-विजात्यसद्भूतव्यवहारोपनयः । ...स्वजातीतर रूपादिवस्तुश्रद्धेयरूपकः तत् प्रधानं वदत्येवं द्वन्द्वप्राही नयो भवेत् ।’

अर्थ—जीव और पुद्गलों के परस्पर संयोग रचनारूप परिणतिविशेष को बतलाने वाला स्वजातिविजातीय-असद्भूतव्यवहार-उपनय है । स्वजातीय और विजातीय वस्तु श्रद्धेयरूप हैं उसको प्रधान करके जो कहता है वह द्वन्द्वसंयोग को अर्थात् स्वजाति-विजाति-संयोग को प्रहण करने वाला स्वजातिविजातीय-असद्भूत-व्यवहार उपनय है ।

॥ इस प्रकार असद्भूतव्यवहारनय के तीनों भेदों का कथन हुआ ॥

उपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेवा ॥८८॥

सूक्तार्थ—उपचरित असद्भूत व्यवहारनय तीन प्रकार की है ।

विशेषार्थ—(१) स्वजात्युपचरित-असद्भूतव्यवहार-उपनय, (२) विजात्युपचरित-असद्भूतव्यवहार-उपनय, (३) स्वजातिविजात्युपचरित-असद्भूत-व्यवहार-उपनय के भेद से उपचरित असद्भूतव्यवहार-उपनय तीन प्रकार का है । इनका कथन आमे किया जा रहा है ।

संस्कृत नयचक्र में पृ० ४८ पर कथन इस प्रकार है—

‘उपचाराद्युपचार यः करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः । स

च सत्यासत्योभयार्थेन त्रिधा ॥

‘देशनाथो यथा देशे जातो यथार्थनायकः ।

देशार्थो जल्पमानो मे सत्यासत्योभयार्थकः ॥११॥’

अर्थ—जो उपचार से भी उपचार करता है वह उपचरितश्रसदभूतव्यवहार उपनय है । वह सत्योपचारासदभूत, असत्योपचारासदभूत और उभयोपचारासदभूत के भेद से तीन प्रकार का है ।

जो नय किसी प्रयोजन या निमित्त से बिलकुल भिन्न स्वजातीय, विजातीय तथा स्वजातिविजातीय पदार्थों को अभेदरूप से ग्रहण करता है वह उपचरितासदभूतव्यवहार उपनय है ।

प्राकृत नयचक्र पृ० १६ पर भी इसी प्रकार कहा है—

उवयारा उवयारं सच्चासच्चेषु उद्युग्मत्येषु ।

सज्जाइइयरमिस्सो उवयरिञ्चो कुण्ड ववहारो ॥७१॥

स्वजातीयोपचरितासदभूतव्यवहारो विजातीयोपचरितासदभूतव्यवहारः सज्जातीयविजातियोपचरितासदभूतव्यवहारः इति उपचरितासदभूतोपि त्रेषा ।

देसवर्द्धे देसत्यो अत्यवणिङ्गजो तहेव जंपतो ।

मे देसं मे दृवं सच्चासच्चंपि उभयत्थं ॥७२॥

अर्थ—जो नय सत्य (स्वजाति) पदार्थ में असत्य (विजातीय) पदार्थ में और उभय (स्वजातीय-विजातीय) पदार्थ में उपचार से भी उपचार करता है वह स्वजाति - उपचरित - असदभूत - व्यवहार-उपनय, विजाति-उपचरित-असदभूत-व्यवहार-उपनय और स्वजाति-विजाति-उपचरित-असदभूत-व्यवहार-उपनय है ।

स्वजातीयोपचरितासदभूतव्यवहार, विजातीयोपचरितासदभूतव्यवहार, स्वजातीयविजातियोपचरितासदभूतव्यवहार के भेद से उपचरितासदभूतव्यवहार उपनय तीन प्रकार का है ।

जिस प्रकार देश का स्वामी देशपति तथा अर्थ का स्वामी अर्थपति होता है उसी प्रकार सत्यपदार्थ (स्वजातीय पदार्थ), असत्य (विजातीय) पदार्थ और स्वजातीय-विजातीयपदार्थों को नेरा इधर, मेरा दूध है इत्यादि कहा जाता है ।

राजा देश का स्वामी होता है और सेठ (घनपति) घन का स्वामी होता है । स्त्री का स्वामी पति होता है । यह सब कथन यद्यपि उपचरित-असद्भूत-व्यवहार उपनय का विषय है तथापि यथार्थ है । यदि यथार्थ न होता तो सीता के हरी जाने पर सीतापति श्री रामचन्द्र जी रावण से युद्ध क्यों करते ? इसी प्रकार देश की रक्षा के लिए देशपति राजा शशु के साथ युद्ध क्यों करते ? तथा रावण, कौरव आदि दोषी क्यों होते ? इससे सिद्ध है कि स्त्री, घन व देश आदि का स्वामिपना यथार्थ है । यदि इस सम्बन्ध को अर्थात् स्वामिपने को सर्वथा अव्यथार्थ भान लिया जाय तो अराजकता और अन्याय फैल जायगा । चोरी आदि पाप नहीं ठहरेगा । इसका विशेष कथन सूत्र २१३ की टीका में है ।

स्वजाति-उपचरित-असद्भूत-व्यवहार-उपनय—

स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा पुत्रदारादि मम

॥८६॥

सूत्रार्थ—पुत्र, स्त्री आदि मेरे हैं ऐसा कहना स्वजात्युपचरितासद्भूत-व्यवहारनय का विषय है ।

विशेषार्थ—जो नय उपचार से स्वजातीय द्रव्य का स्वजातीय द्रव्य को स्वामी बतलाता है वह स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहार उपनय है । जैसे—पुत्र, स्त्री आदिक मेरे हैं । संस्कृत नयचक्र में भी कहा है—

पुत्रमित्रकलप्रादि ममैतवह्मेव वा ।

वदन्नेवं भवत्येषोऽसद्भूतो हयुपचारवान् ॥२॥ [पृ० ४८]

‘ये पुत्र, मित्र, स्त्री आदि मेरे हैं, मैं इनका स्वामी हूँ’ यह कथन सत्योपचार असद्भूत व्यवहार की अपेक्षा है । लोकोपचार में यथार्थ स्वामित्वपना

पाया जाता है किन्तु आत्मरूप नहीं है इसलिये असद्भूत है ।

प्राकृत नयचक्र में भी इसी प्रकार कहा है—

पुत्ताइबंधुवरग अहं च मम संपयाइ जंपतो ।

उवयारासब्भूओ सज्जाइदव्वेसु णायव्वो ॥७३॥ [पृ० १७]

अर्थ—पुत्रादि बन्धु वर्ग का मैं स्वामी हूँ, ये मेरी सम्पदा है ऐसा कहना स्वजातिउपचरित-असद्भूत-व्यवहार उपनय है ।

इस नय का विषय यथार्थ है । सूत्र ८८ व २१३ के विशेषार्थ में विशद कथन है ।

विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहार उपनय—

विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारां यथा वस्त्राभरणहेमरत्नादिमभ ॥६०॥

सूत्रार्थ—वस्त्र, आभूषण, स्वरूप, रत्नादि मेरे हैं ऐसा कहना विजात्युपचरित-असद्भूत-व्यवहार उपनय है ।

विशेषार्थ—सोना, चौड़ी आदि अपनी जाति के द्रव्य नहीं हैं, अतः विजातीय द्रव्य हैं । आत्मरूप नहीं हैं अतः असद्भूत हैं । तथापि लोकोपचार में यथार्थ स्वाभिपना पाया जाता है । संस्कृत नयचक्र पृ० ४८ पर कहा भी है—

हेमाभरणवस्त्रादि ममेदं यो हि भाषते ।

उपचारादसद्भूतो विद्वद्विः परिभाषितः ॥३॥

अर्थ—‘सोना, आभरण वस्त्र आदि मेरे हैं’ जो नय ऐसा कहता है, विद्वज्जन्में ने उस नय को विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहार नय कहा है ।

प्राकृत नयचक्र पृ० १७ पर भी इसी प्रकार कहा है—

आहूरणहेमरथण वत्यादीया ममत्ति जंपतो ।

उवयारश्चासब्भूओ विजादिदव्वेसु णायव्वो ॥७४॥

‘आभरण, सोना, वस्त्रादि मेरे हैं’ ऐसा कहना विजात्युपचरितासद्भूत-

व्यवहार-उपनय जानना चाहिए। सूत्र दृष्टि व २१६ में इसका विशेष कथन है।

स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहार उपनय—

स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देशराज्य-
दुर्गादि मम ॥६१॥

सूत्रार्थ—‘देश, राज्य, दुर्ग आदि मेरे हैं’ यह स्वजातिविजात्युपचरित-
असद्भूतव्यवहार उपनय का विषय है।

विशेषार्थ—यहाँ पर मिथु द्रव्य का स्वामिधना बतलाया गया है, क्योंकि
देशादिक में सचेतन और अचेतन दोनों ही प्रकार के पदार्थों का समावेश
रहता है। ‘मैं’ की अपेक्षा से देशादिक में रहने वाले सचेतन पदार्थ स्वजातीय
हैं और अचेतन पदार्थ विजातीय हैं। अतः ‘यह देश अथवा राज्य मेरा है’
ऐसा ग्रहण करना स्वजातिविजात्युपचरितअसद्भूतव्यवहारनय है। यहाँ पर
सचेतन-अचेतन मिथुनित पदार्थ को अभेदरूप से ग्रहण किया गया है।

देशं दुर्गं च राज्यं च गृह्णातीह ममेति यः ।

उभयार्थोपचारत्वादसद्भूतोपचारकः ॥४॥

[संस्कृत नयचक्र पृ० ४८]

अर्थ—जो नय देश, दुर्ग, राज्य आदि को ग्रहण करता है वह नय चेतना-
चेतन मिथु पृथक् पदार्थ को अपने बतलाता है। वह स्वजातिविजात्युपचरिता-
सद्भूत व्यवहार उपनय है।

देसं च रज्जुं दुर्गं एवं जो चेत भण्ड मम सब्वं ।

उद्यत्ये उपचरित्रो होइ असद्भूतव्यवहारो ॥४५॥

[प्राकृत नयचक्र पृ० १७]

अर्थ—देश, राज्य, दुर्ग ये सब मेरे हैं ऐसा जो नय कहता है वह स्वजाति-
विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहार उपनय है।

॥ उपचरित्रासद्भूतव्यवहार उपनय के तीनों भेदों का कथन हुआ ।

गुण-व्युत्पत्ति अधिकार

सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः ॥६२॥

सूत्रार्थ—साथ में होने वाले गुण हैं और क्रम से होने वाली पर्यायें हैं। अर्थात् अन्वयी गुण हैं और व्यतिरेक परिणाम पर्यायें हैं।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में ४० ५७ पर भी कहा है—

‘सहभुवो गुणाः । क्रमभाविनः पर्यायाः ।’

अर्थ—साथ में होने वाला गुण है और क्रमवर्ती पर्यायें हैं।

ऐसा नहीं है कि द्रव्य पहिले हो और बाद में गुणों से सम्बन्ध हुआ हो। किन्तु द्रव्य और गुण अनादि काल से हैं, इनका कभी भी विच्छेद नहीं होता है अतः गुण का लक्षण ‘सहभुवः’ कहा है। अथवा जो निरन्तर द्रव्य में रहते हैं और अन्य गुण से रहित हैं वे गुण हैं। [मोक्षशास्त्र ५/४१]

विशेष गुण का लक्षण—

गुण्यते पृथक् क्रियते द्रव्यं द्रव्याद्यै स्तेगुणाः ॥६३॥

सूत्रार्थ—जिनके द्वारा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जाता है, वे (विशेष) गुण कहलाते हैं।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र ४० ५७ पर भी कहा है—

‘गुणव्युत्पत्तिर्गुरुर्ख्यते पृथक् क्रियते द्रव्याद्यद्रव्यं येनासौ विशेष-गुणः ।’

अर्थ—जिसके द्वारा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जाता है वह विशेषगुण है, यह गुण का व्युत्पत्ति अर्थ है।

सामान्यगुण और विशेषगुण के भेद से गुण दो प्रकार के हैं। सामान्य-गुण सब द्रव्यों में पाये जाते हैं। उन सामान्यगुणों के द्वारा तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् नहीं किया जा सकता, विशेषगुणों के द्वारा ही एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जा सकता है, अतः गुण का यह व्युत्पत्ति अर्थ विशेष गुण में ही घटित होता है और ‘सहभुवो गुणाः’ अथवा ‘द्रव्याश्रया

निगुणा गुणाः ॥४१॥ [मोक्षशास्त्र अ० ५]’ ये दोनों लक्षण सब गुणों में घटित होते हैं ।

अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सदूरूपत्वम् ॥६४॥

सूत्रार्थ—‘अस्ति’ इसके भाव को अर्थात् सदूरूपपने को अस्तित्व कहते हैं ।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र पृ० ५७ पर कहा है—

‘अस्तित्वस्य भावोऽस्तित्वं । सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्तनोतीति सत् ।’

अर्थ—अस्तित्व का भाव अस्तित्व है। अपने गुण और पर्याय में व्याप्त होने वाला सत् है ।

अस्तित्व गुण का विशेष कथन सूत्र ६ की टीका में किया जा चुका है ।

वस्तुनोभावो वस्तुत्वम्, सामान्यविशेषात्मकं वस्तु ॥६५॥

सूत्रार्थ—सामान्य-विशेषात्मक वस्तु होती है। उस वस्तु का जो भाव वह वस्तुत्व है ।

विशेषार्थ—यही लक्षण संस्कृत नयचक्र पृ० ५७ पर कहा गया है ।

परीक्षामुख चतुर्थ अध्याय में वस्तु का तथा सामान्य व विशेष का लक्षण निम्न प्रकार कहा गया है—

‘सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ॥१॥ सामान्यं द्वेषा तिर्यग्-
र्खताभेदात् ॥२॥ सदृशपरिणामस्तिर्यक्, खण्डमुखडादिषु गोत्ववत् ॥३॥ परापरविकर्तव्यापि द्रव्यमूर्खता मृदिव स्यासादिषु ॥४॥ विशेषश्च ॥५॥ पर्याय व्यतिरेकभेदात् ॥६॥ एकस्मिन् द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत् ॥७॥ अर्थान्तरगते विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् ॥८॥

अर्थ—सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ अमारण का विषय है ॥१॥ तिर्यक्

सामान्य और ऊर्ज्वंता सामान्य के भेद से सामान्य दो प्रकार का है ॥३॥ सहश्र अर्थात् सामान्य परिणाम को तिर्थंकर सामान्य कहते हैं, जैसे—खण्डी, मुण्डी आदि ग्रामों में गोपना समान रूप से रहता है ॥४॥ पूर्व और उत्तर पर्यायों में रहने वाले द्रव्य को ऊर्ज्वंता सामान्य कहते हैं । जैसे—स्थास, कोश, कुशल आदि घट की पर्यायों में मिट्टी रहती है ॥५॥ विशेष भी दो प्रकार का है, पर्याय, व्यतिरेक के भेद से ॥६-७॥ एक द्रव्य में क्रम से होने वाले परिणाम को पर्याय कहते हैं । जैसे—आत्मा में हृषि, विषाद आदि परिणाम क्रम से होते हैं, वे ही पर्याय हैं ॥८॥ एक पदार्थ की अपेक्षा अन्य पदार्थ में रहने वाले चिसहण परिणाम को व्यतिरेक कहते हैं । जैसे—गाय, भैंस आदि में विलक्षणना फाया जाता है ॥९॥

द्रव्यस्यभावो द्रव्यत्वम्, निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डबृत्या स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति श्रद्धुद्रुवदिति द्रव्यम् । १६॥

अर्थ—जो अपने अपने प्रदेश समूह के ढास अखण्डपने से अपने स्वभाव-विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा, हो चुका है, वह द्रव्य है । उस द्रव्य का जो भाव है, वह द्रव्यत्व है ।

विशेषार्थ—वस्तु के सामान्य अंश को द्रव्यत्व कहते हैं, क्योंकि वह सामान्य ही विशेषों (पर्यायों) को प्राप्त होता है । जैसे—पिड और घट पर्यायों को मिट्टी प्राप्त होती है । सामान्य के बिना विशेष नहीं हो सकते और विशेष के बिना सामान्य नहीं रह सकता ।

पंचास्तिकाय गाथा ६ की टीका में भी कहा है—

‘द्रवति गच्छति सामान्यरूपेण स्वरूपेण व्याप्तोति तास्तान् क्रमभुवः सहभुवश्च सद्वावपर्यायान् स्वभावविशेषानित्यनुगतार्थया निरुक्त्या द्रव्यं व्याख्यातम् ।’

अर्थ—उन उन क्रमभावी, सहभावी पर्यायों को अर्थात् स्वभावविशेषों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, सामान्यरूप स्वरूप से व्याप्त होता है, वह द्रव्य है । इस प्रकार निरुक्ति से द्रव्य की व्याख्या की गई ।

**सद्द्रव्यलक्षणम्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्तो-
तीति सत्; उत्पादव्ययधौव्ययुक्तं सत् ॥६७॥**

सूत्रार्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है। अपने गुण और पर्यायों को व्याप्त होने वाला सत् है। अथवा जो उत्पाद-व्यय-धौव्य से युक्त है, वह सत् है।

विशेषार्थ—सूत्र ६ में ‘सद्द्रव्यलक्षणम्’ और सूत्र ७ में ‘उत्पाद-
व्ययधौव्ययुक्तं सत्’ का अर्थ कहा जा चुका है।

द्रव्यसामान्य ही अपने गुण और पर्यायों में व्याप्त होता है, वह द्रव्य सामान्य ही द्रव्यार्थिक नय का विषय है। जैसे—स्वर्ण ही अपने पीतल आदि गुणों को तथा कुण्डल आदि पर्यायों को प्राप्त होता है। द्रव्य आधार है; गुण और पर्याय आधेय हैं। कहा भी है—

‘द्रव्याश्रयानिगुणारुणः ॥४१॥’

[भीक्षशास्त्र अ० ५]

जिन के रहने का आश्रय द्रव्य है, वे द्रव्याश्रय कहलाते हैं अर्थात् जो सदा द्रव्य के आश्रय से रहते हैं और जो गुणों से रहित हैं, वे गुण हैं।

**प्रमेयस्यभावः प्रमेयत्वम्, प्रमाणेन स्वपररूपं परिच्छेद्यं
प्रमेयम् ॥६८॥**

सूत्रार्थ—प्रमाण के द्वारा जानने के योग्य जो स्व और परस्वरूप है, वह प्रमेय है। उस प्रमेय के भाव को प्रमेयत्व कहते हैं।

विशेषार्थ—परीक्षामुख में प्रमाण का लक्षण निम्न प्रकार कहा है—

‘स्वापूर्वीर्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ॥१॥’

अर्थ—स्व और अपूर्व अर्थ (अनिश्चित अर्थ) का निश्चयात्मक ज्ञान प्रमाण है।

प्रथवा, जो ज्ञान स्व और पर स्वरूप को विशेष रूप से निश्चय करे, वह प्रमाण है। उस प्रमाण के द्वारा जो जानने योग्य है अथवा जो प्रमाण के द्वारा जाना जाय, वह प्रमेय है। उस प्रमेय के भाव को प्रमेयत्व कहते हैं।

जिस शक्ति के निभिस से द्रव्य ज्ञान का विषय अवश्य होता है वह प्रमेयत्व गुण है। यदि द्रव्य में प्रमेयत्व गुण न हो तो वह किसी भी ज्ञान का विषय नहीं हो सकता था।

यद्यपि अन्य गुणों में और पर्यायों में प्रमेयत्व गुण नहीं है तथापि वे गुण और पर्याय द्रव्य से अभिन्न हैं इसलिए वे भी ज्ञान का विषय बन जाते हैं। यदि कहा जाय कि भूत और भावि पर्यायों का वर्तमान काल में द्रव्य में अभाव है, अर्थात् उनका प्रध्वंसाभाव और प्रागभाव है, वे ज्ञान का विषय नहीं हो सकतीं, क्योंकि उनमें प्रमेयत्व गुण नहीं पाया जाता तो ऐसा कहना ठोक नहीं है। यद्यपि भूत और भावि पर्यायों का वर्तमान में अभाव है, क्योंकि एक समय में एक ही पर्याय रहती है, तथापि वे भूत और भावि पर्यायें वर्तमान पर्यायों में शक्तिरूप से रहती हैं और वर्तमान पर्याय द्रव्य से अभिन्न होने के कारण ज्ञान का विषय है। अतः वर्तमान पर्याय में शक्तिरूप ये पड़ी हुई भूत और भावि पर्यायें भी ज्ञान का विषय बन जाती हैं। जयधब्ल पु० १ पृ० २२ व २३ पर कहा भी है—

'जो जाना जाता है उसे अर्थ कहते हैं, इस व्युत्पत्ति के अनुसार वर्तमान पर्याय में ही अर्थपना पाया जाता है। शंका—वह अर्थ अतीत और अनागत पर्यायों में भी समान है? समाधान—नहीं, क्योंकि अनागत और प्रतीति पर्यायों का ग्रहण वर्तमान अर्थ के ग्रहणपूर्वक होता है। अर्थात् अतीत और अनागत पर्यायें भूतशक्ति और भविष्यत् शक्ति रूप से वर्तमान अर्थ में ही विद्यमान रहती हैं। अतः उनका ग्रहण वर्तमान अर्थ के ग्रहणपूर्वक ही हो सकता है, इसलिये उन्हें 'अर्थ' यह संज्ञा नहीं दी गई।'

[नोट—इसका विशेष कथन सूत्र ३७ के विशेषार्थ में है।]

अगुरुलघोभविऽगुरुलघुत्वम् सूक्ष्मा अवाग्गोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाण्यादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः ॥६६॥

'सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिन्नेव हन्त्यते ।

आज्ञासिद्धं तु तद्याह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥५॥

१. यह गाथा पंचास्तिकाय गाथा १६ की टीका में उद्धृत है।

सूत्रार्थ—जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, प्रतिसमय में परिणमनशील है तथा आगम प्रमाण से जाना जाता है, वह अगुरुलघुगुण है ।

ग्राथार्थ—जिनेन्द्रभगवान के कहे हुए सूक्ष्म तत्त्व हेतुओं के द्वारा खण्डित नहीं किये जा सकते । उन आदातिन् पुष्टि तत्त्वों को अहं करना चाहिये क्योंकि जिनेन्द्र भगवान अन्यथाबादी नहीं होते ।

विशेषार्थ—अगुरुलघु गुण के विषय में सूत्र ६ व सूत्र १७ के विशेषार्थ में बहुत कुछ कहा जा चुका है, वहां से देख लेना चाहिये ।

अनेक विषमभवरूपी गहन संसार में प्राप्ति के हेतु कर्मरूपी शब्द हैं । इन कर्मरूपी शब्दों को जिसने जीत लिया अथवा क्षय कर दिया, वह जिन हैं । उन जिनेन्द्र भगवान ने ही अगुरुलघुगुण का कथन किया है और वह अनुमान आदि से भी सिद्ध होता है ।

**प्रदेशस्यभावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गलपरमाणु-
मावष्टव्यम् ॥१००॥**

सूत्रार्थ—प्रदेश का भाव प्रदेशत्व है अथवा क्षेत्रत्व है । एक अविभागी पुद्गल परमाणु के द्वारा व्याप्त क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं ।

विशेषार्थ—वहद्वयसंग्रह में भी प्रदेश का लक्षण निम्न प्रकार कहा है—

जावदियं आयासं अविभागिपुरगलाणुवद्धं ।

तं सु पदेसं जाणे सञ्चारणुद्वाणदाणरिहं ॥२७॥

अर्थ—जितना आकाश का क्षेत्र अविभागी पुद्गल परमाणु द्वारा रोका जाता है वह प्रदेश है ।

प्राकृत नवचक्र पृ० ५८ पर प्रदेश का लक्षण निम्न प्रकार कहा है—

जेत्तियमेत्तं खेतं अराणु रुद्धं सु गयणदव्वसस ।

तं च पएसं भणियं जाणे तुमं सञ्चवदरसीहि ॥१४१॥

अर्थ—आकाश द्रव्य के जितने क्षेत्र को पुद्गल परमाणु रोकता है, उस को प्रदेश जानो, ऐसा सर्वज्ञ ने कहा है ।

इस आकाश प्रदेश के द्वारा ही घर्मद्रव्य, अघर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, जीव-
द्रव्य और कालद्रव्य में प्रदेशों की गणना की जाती है।

चेतनस्य भावद्वचेतनत्वम् चैतन्यमनुभवनम् ॥१०१॥

चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च ।

क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम् ॥६॥

सूत्रार्थ—चेतन के भाव को अर्थात् पदार्थों के अनुभव को चेतनस्य
कहते हैं।

गाथार्थ—चैतन्य नाम अनुभूति का है। वह अनुभूति क्रियारूप अर्थात्
कर्तव्यस्वरूप ही होती है। मन, वचन, काय में अन्वित (सहित) वह क्रिया
नित्य होती रहती है।

विशेषार्थ—जीवाजीवादि पदार्थों के मनुभवन को, जानने को चेतना
कहते हैं। वह अनुभव ही अनुभूति है। अथवा द्रव्यस्वरूप चितन को अनु-
भूति कहते हैं। श्री अमृतचन्द्राचार्य ने पंचास्तिकाय गाथा ३६ की टीका में
लिखा है—

**‘चेतयते अनुभवन्ति उपलब्धंते विद्वंतीत्येकार्थाऽचेतनानुभूत्युप-
लब्धिवेदनानामेकार्थत्वात् ।’**

अर्थ—चेतना है, अनुभव करता है, उपलब्ध करता है और वेदता है
ये एकार्थ हैं क्योंकि चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदना का एकार्थ है।

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचैतन्यमनुभवनम् ॥१०२॥

सूत्रार्थ—अचेतन के भाव को अर्थात् पदार्थों के अनुभवन को अचेतनत्व
कहते हैं।

विशेषार्थ—जीव के अस्तिरिक्त पुद्गल, घर्म, अघर्म, आकाश और काल
ये पांचों द्रव्य अचेतन हैं, जड़ हैं, क्योंकि इनमें जानने की शक्ति अर्थात् अनु-
भवन का प्रभाव है।

मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्त्वम् ॥१०३॥

सूत्रार्थ—सूर्त के भाव को अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्वर्णयुक्तता को सूत्र कहते हैं।

विशेषार्थ—पुढ़गल और संसारी जीव सूर्त हैं। सूत्र २६ में भी जीव के सूर्त स्वभाव कहा है। श्री अमृतचन्द्रादि धन्य आचार्यों ने भी संसारी जीव को सूर्तिक कहा है।

तथा च मूर्तिमानात्मा सुराभिभवदर्शनात् ।

नह्यमूर्त्तस्य नभसो मदिरा मदकारिणी ॥१६॥ [तत्त्वार्थसार वंश]

अर्थात्—आत्मा मूर्तिक होने के कारण मदिरा से पागल हो जाती है, किन्तु अमूर्तिक आकाश को मदिरा मदकारिणी नहीं होती है।

‘यथा खलु पचःपूरः प्रदेशस्वादाभ्यां पितृशन्द्रक्ष्महतःपितृचन्द्रराजीं परिणमन्न द्रवत्यस्वादुत्त्वस्वभावमुपलभते, तथात्मापि प्रदेशभावाभ्यां कर्मपरिणमनान्नामूर्तत्वनिरूपरागविशुद्धिमत्त्वस्वभावमुपलभते ।’

[प्रबचनसार गा० ११८ टीका]

अर्थ—जैसे पानी का पूर प्रदेश से और स्वाद से निष्ठ, चन्दनादि वन-राजिरूप परिणमित होता हुआ द्रवत्व और स्वादुत्त्वरूप स्वभाव को उपलब्ध नहीं करता, उसी प्रकार आत्मा भी प्रदेश से और भाव से स्वकर्मरूप परिणमित होने से अमूर्तत्व और विकाररहित विशुद्ध स्वभाव को उपलब्ध नहीं करता।

जीवाजीवं दृच्चर्वं रूपारूपिति होदि पत्तेयं ।

संसारत्था रूपा कम्मविमुक्ता अरूपगत्या ॥

[गो० जीवकांड ५६३]

अर्थात्—संसारी जीव रूपी (मूर्तिक) है और कर्मरहित सिद्धजीव प्रमूर्तिक है।

‘कम्मसंबंधवसेण पोगलभादमुचगय जीवदव्याएः च पच्चक्षेण परिच्छित्ति कुण्ड ओद्धिणाणं ।’

[जयध्वल पृ० १ पृ० ४३]

अर्थ—कर्म के सम्बन्ध में पुद्गल भाव को प्राप्त होए जीवों को जो प्रत्यक्षरूप से जानता है, वह अवधिज्ञान है। घबल पु० १३ पृ० ३३३ पर भी इसी प्रकार कहा है।

‘अनादिबन्धनबद्धत्वतो मूर्तीनां जीवावयवानां मूर्तेण शरीरेण सम्बन्धं प्रति विरोधासिद्धेः।’ [घबल पु० १ पृ० २६२]

अर्थ—जीव के प्रदेश अनादिकालीन बन्धन से बद्ध होने के कारण मूर्त हैं अतः उनका मूर्त शरीर के साथ सम्बन्ध होने में कोई विरोध नहीं आता।

इसी प्रकार घबल पु० १६ पृ० ५१२ पर भी कहा है।

घबल पु० १५ पृ० ३२, पु० १४ पृ० ४५ पर कहा है ‘अनादिकालीन बन्धन से बद्ध रहने के कारण जीव के अमूर्तत्व का अभाव है।’

अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहितत्वम् ॥१०४॥

सूत्रार्थ—अमूर्त के भाव को अर्थात् स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण से रहितपने को अमूर्तत्व कहते हैं।

विशेषार्थ—सिद्धजीव, घर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य ये अमूर्तिक हैं। इनमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण नहीं पाया जाता है और पुद्गल द्रव्य से बंधे हुए भी नहीं हैं, इसलिये असद्भूत व्यवहारनय से भी इनके मूर्त-पना नहीं हैं।

॥ इस प्रकार गुणों की व्युत्पत्ति का कथन हुआ ॥

—*—

पर्याय की व्युत्पत्ति

स्वभावविभावरूपतया याति पर्येति परिणमतीति पर्यायः ॥१०५॥

सूत्रार्थ—जो स्वभाव विभावरूप से सदैव परिणमन करती रहती है, वह पर्याय है।

विशेषार्थ—सूत्र १५ में ‘गुणविकाराः पर्यायाः’ कहा है। परि + प्रायः

= पर्यायः है। परि का अर्थ समन्वय है और आयः का अर्थ अय गति अयनं है।

स्वभाव और विभाव के भेद से पर्याय दो प्रकार की है। बन्धन से रहित शुद्ध द्रव्यों की अगुरुलघुमुणा की षड्कृद्ध हानि के द्वारा स्वभाव पर्याय होती है। बन्धन को प्राप्त अशुद्ध द्रव्यों की परनिमित्तक विभाव पर्याय होती है। इसका विशेष कथन सूत्र १६ के विशेषार्थ में है।

द्रव्य का लक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रौद्रव्य है। अर्थात् द्रव्य में प्रतिसमय पूर्वं पर्याय का व्यय और उत्तर पर्याय का उत्पाद होता रहता है। यही द्रव्य का परिणामन है। सिद्धजीव, पुद्गल परमाणु, घर्मद्रव्य, अघर्मद्रव्य, आकाश-द्रव्य और कालद्रव्य इनमें स्वभाव परिणामन होने से स्वभाव पर्यायें होती हैं। संसारीजीव और पुद्गलस्कंध अशुद्ध द्रव्य हैं इनमें विभाव पर्याय होती हैं।

॥ इस प्रकार पर्याय की व्युत्पत्ति का कथन हुआ ॥

स्वभावव्युत्पत्ति अधिकार

स्वभावलाभादच्युतत्वादस्तिस्वभावः ॥ १०६ ॥

सूत्रार्थ—जिस द्रव्य को जो स्वभाव प्राप्त है उससे कभी भी च्युत नहीं होना अस्तिस्वभाव है।

विशेषार्थ—जीव का चेतन स्वभाव है। चेतन स्वभाव से कभी च्युत नहीं होना जीव का अस्तिस्वभाव है। यदि जीव चेतनस्वभाव से च्युत हो जावे तो जीव का अस्तित्व ही समाप्त हो जावेगा।

स्व का होना या स्व के द्वारा होना स्वभाव है। लाभ का अर्थ व्याप्ति है।

परस्वरूपेणाभावत्वान्नास्तिस्वभावः ॥ १०७ ॥

सूत्रार्थ—परस्वरूप नहीं होना नास्ति स्वभाव है।

विशेषार्थ—संस्कृत नवचक पृ० ६१ पर लिखा है—

‘परस्वरूपेणाभावत्वान्नास्तिस्वभावं’

अर्थात्—परस्वरूप की अपेक्षा अभाव होने से नास्तिस्वभाव है ।

सूत्र में ‘अभावात्’ शब्द का अर्थ अभवनात् है ।

निज-निज-नानापर्याधिषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्य-स्वभावः ॥१०८॥

सूत्रार्थ—अपनी अपनी नाना पर्यायों में ‘यह वही है’ इस प्रकार द्रव्य की प्राप्ति ‘नित्य स्वभाव’ है ।

विशेषार्थ—धूवत्व अंश की अपेक्षा से अथवा सामान्य अंश की अपेक्षा से द्रव्य नित्य स्वभावी है जो द्रव्याधिक नय का विषय है । अर्थात् द्रव्याधिक नय की अपेक्षा द्रव्य नित्य है ।

तस्याप्यनेकपर्यायपरिणामितत्वादनित्यस्वभावः ॥१०९॥

सूत्रार्थ—उस द्रव्य का अनेक पर्यायरूप परिणत होने से अनित्य स्वभाव

विशेषार्थ—प्रतिसमय उत्पाद व्यय की दृष्टि से द्रव्य परिणामनवील होने ‘अथवा पर्यायाधिक नय की अपेक्षा द्रव्य अनित्यस्वभावी है । प्रमाण की अपेक्षा द्रव्य नित्यानित्यात्मक है ।

स्वभावान्नामेकाधारत्वादेकस्वभावः ॥११०॥

सूत्रार्थ—सम्पूर्ण स्वभावों का एक आधार होने से एक स्वभाव है ।

विशेषार्थ—अनेक गुणों, पर्यायों और स्वभावों का एक द्रव्य सामान्य आधार होने से द्रव्य एक स्वभावी है । संस्कृत नयचक्र पृ० ६५ पर कहा भी है—

‘सामान्यरूपेरौकत्वमिति ।’

अर्थात्—सामान्य की अपेक्षा एक स्वभाव है ।

एकस्याप्यनेकस्वभावोपलम्भादनेक स्वभावः ॥१११॥

सूत्रार्थ—एक ही द्रव्य के अनेक स्वभावों की उपलब्धि होने से ‘अनेक वभाव’ है ।

विशेषार्थ—एक ही द्रव्य वान्न गुणों, पर्यायों और स्वभावों का आधार

है। यद्यपि आधार एक है किन्तु आधेय अनेक हैं। अतः आधेय की अपेक्षा से अथवा विशेषों की अपेक्षा से द्रव्य अनेक स्वभावी है। संस्कृत नयचक्र पृ० ६५ पर कहा है—‘स्यादनेक इति विशेषरूपेणैव कुर्यात्।’

अर्थात्—विशेष की अपेक्षा अनेक स्वभाव है।

गुणगुण्यादिसंज्ञादिभेदाद् भेदस्वभावः ॥११२॥

सूत्रार्थ—गुण गुणी आदि में संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा भेद होने से ‘भेद स्वभाव’ है।

विशेषार्थ—गुण और गुणी दोनों पृथक् पृथक् संज्ञा हैं अतः संज्ञा की अपेक्षा गुण और गुणी में भेद है। गुण अनेक हैं और गुणी एक है अतः संख्या की अपेक्षा भी गुण और गुणी में भेद है। द्रव्य का लक्षण सत् है और गुण का लक्षण है ‘द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणः’ (जो द्रव्य के आश्रय पौर मन्य गुणों से रहित है वह गुण है) अतः दोनों का पृथक् पृथक् लक्षण होने से गुण और गुणी में लक्षण की अपेक्षा भी भेद है। द्रव्य के द्वारा लोक का मान किया जाता है और गुण के द्वारा द्रव्य जाना जाता है, इस प्रकार गुण गुणी का पृथक् पृथक् प्रयोजन होने से गुण और गुणी में प्रयोजन की अपेक्षा से भी भेद है। जैसे—जीव द्रव्य में गुणी की संज्ञा ‘जीव’ है और गुण की संज्ञा ‘ज्ञान’ है। जो इन्द्रिय, बल, आयु, प्राणापान इन चार प्राणों के द्वारा जीता है, जीता या और जीवेगा; यह जीव द्रव्य—गुणी का लक्षण है। जिस के द्वारा पदार्थ जाना जाय वह ज्ञान है, यह ज्ञान का लक्षण है। जीव द्रव्य—गुणी अविनश्वर रहते हुये भी बंध, मोक्ष आदि पर्याय रूप परिणामन करता है, यह जीव गुणी का प्रयोजन है। मात्र पदार्थ को जानना ज्ञान गुण का प्रयोजन है। इस प्रकार गुण गुणी में पर्याय पर्याय आदि में संज्ञादि की अपेक्षा भेद होने से द्रव्य में भेद स्वभाव है।

संस्कृत नयचक्र पृ० ६५ पर कहा है ‘सद्भूतव्यवद्वारेण भेद इति।’ अर्थात् सद्भूतव्यवहारन्य की अपेक्षा भेद स्वभाव है।

गुणगुण्याद्यैकस्वभावादभेदस्वभावः ॥११३॥

सूत्रार्थ—गुण और गुणी का एक स्वभाव होने से अभेद स्वभाव है ।

विशेषार्थ—निश्चयनय अर्थात् द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि में एक अखण्ड द्रव्य है उसमें गुणों की कल्पना नहीं है । समयसार^१ गाथा ७ में श्री कुदकुद आचार्य ने कहा है कि व्यवहारनय से जीव में दर्शन, ज्ञान, चारित्र है किन्तु निश्चयनय से न दर्शन है, न ज्ञान है, न चारित्र है । द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा जीव में दर्शन, ज्ञान, चारित्र ऐसा भेद नहीं है । संस्कृत नयचक्र पृ० ६५ पर कहा है—‘स्यादभेद इति द्रव्यार्थिकेनैव कुर्यात् ।’ अर्थात् द्रव्यार्थिक नय से ही अभेद स्वभाव है ।

प्राकृत नयचक्र पृ० ३१ पर कहा है—

गुणपञ्जयदो दृव्यं दृव्यादो ण गुणपञ्जयाभण्णा ।

जहा तहा भण्णयं दृव्यं गुणपञ्जयनण्णां ॥४२॥

अर्थ—गुण, पर्याय से द्रव्य और द्रव्य से गुण, पर्याय भिन्न नहीं हैं अर्थात् प्रदेशभेद नहीं है इस लाए गुण, पर्याय से द्रव्य को अनन्य कहा है अर्थात् गुण गुणी में अभेद स्वभाव कहा है ।

भाविकाले परस्वरूपाकारं भवताद्भव्यस्वभावः ॥११४॥

सूत्रार्थ—भाविकाल में पर (आगामी पर्याय) स्वरूप होने से भव्य स्वभाव है ।

विशेषार्थ—‘पर’ शब्द के अनेक अर्थ हैं किन्तु इस सूत्र में भाविकाल की दृष्टि से ‘पर’ का अर्थ ‘आगे’ होगा । श्री अमृतचन्द्राचार्य ने भी पंचास्तिकाय गाथा ३७ की टीका में कहा है—

‘द्रव्यस्य सर्वदा अभूतपर्यायैः भाव्यमिति ।’

अर्थ—द्रव्य सर्वदा अभूत (भावि) पर्यायों से भाव्य है । अर्थात् भावि

१. ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं ।

णवि णाणं ण चरित्त ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥

२. संस्कृत नयचक्र पृ० ६२ पर ‘स्वस्वभाव’ पाठ है ।

पर्याय रूप होने योग्य है अतः द्रव्य में भव्य भाव है ।

प्राकृत नयचक्र पृ० ३८ पर टिप्पणी में भी कहा है—

‘भवितुं परिणमितुं योग्यत्वं तु भव्यत्वं, तेन दिशिष्टत्वाद्-
भव्याः ।’

अर्थ—होने योग्य ग्रथवा परिणामन करने योग्य वह भव्यत्व है । उस भव्यत्व भाव से विशिष्ट द्रव्य भव्य है ।

यद्यपि सूत्र में ‘परस्वरूपाकार’ है किन्तु संस्कृत नयचक्र में ‘स्वस्वभाव’ पाठ है । क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव रूप परिणामन करने योग्य है इसलिए प्रत्येक द्रव्य में भव्य स्वभाव है ।

प्राकृत नयचक्र पृ० ४० पर भी कहा है कि भव्य स्वभाव के स्वीकार न करने पर सर्वथा एकान्त से अभव्य भाव मानने पर शून्यता का प्रसंग आ जायगा क्योंकि अपने स्वरूप से भी अभवन अर्थात् नहीं होगा ।^१

अतः संस्कृतनयचक्रानुसार इस सूत्र का पाठ निम्न प्रकार होना चाहिये—

‘भाविकाले स्वस्वभावभवनादभव्यस्वभावत्वं ।’

कालश्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनादभव्यस्वभावः ॥११५॥

सूत्रार्थ—क्योंकि शिकाल में भी परस्वरूपाकार (दूसरे द्रव्य रूप) नहीं होगा अतः अभव्य स्वभाव है ।

विशेषार्थ—अनादि काल से छहों द्रव्य एक क्षेत्रावगाह हो रहे हैं किन्तु किसी द्रव्य के एक प्रदेश का भी अन्य द्रव्यरूप परिणामन नहीं हुआ । इसी बात को स्वयं अन्यकार पंचास्तिकाय गाया ७ उद्घृत करके सिद्ध करते हैं ।

अपराह्णोणं पविसंता दिता श्रोगासमण्णमण्णस्स ।

मेलंता विय गिच्चं सर्गं सभावं ण विजहंति ॥७॥

गाथार्थ—वे द्रव्य एक-दूसरे में प्रवेश करते हैं, अन्योन्य को अवकाश

१. ‘अभव्यस्यापि तथा शून्यताप्रसंगः स्वरूपेणाप्यभवनात् ।’

देते हैं, परस्पर मिल जाते हैं तथापि सदा अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते।

विशेषार्थ—जीव और पुद्गल परस्पर एक-दूसरे में प्रवेश करते हैं तथा विषय घमादि चार द्रव्य क्रियावान् जीव और पुद्गलों को अवकाश देते हैं तथा घमादि निषिक्रिय चार द्रव्य एक क्षेत्र में परस्पर मिलकर रहते हैं तथापि कोई भी द्रव्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता ।^१

पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः ॥ ११६॥

सूत्रार्थ—पारिणामिक भाव की प्रधानता से परमस्वभाव है।

विशेषार्थ—अपने स्वभाव से रहना या होना पारिणामिक भाव है। उस पारिणामिक भाव की मुख्यता से परमस्वभाव है।

॥ इस प्रकार से सामान्य स्वभावों का निरूपण हुआ ॥

प्रदेशादिगुणानां व्युत्पत्तिश्चेतनादि विशेषस्वभावानां च व्युत्पत्तिनिगदिता ॥ ११७॥

सूत्रार्थ—प्रदेश आदि गुणों की व्युत्पत्ति तथा चेतनादि विशेष स्वभावों की व्युत्पत्ति कही गई।

विशेषार्थ—सूत्र ६४ से यहां तक ११ सामान्यस्वभावों की; चेतन, अचेतन, मूर्त, अमूर्त व प्रदेश—विशेष स्वभावों की; तथा प्रदेशत्व आदि गुणों की व्युत्पत्ति कही गई।

धर्मप्रेक्षया स्वभावा गुणा न भवन्ति ॥ ११८॥

सूत्रार्थ—स्वभाव की अपेक्षा स्वभाव गुण नहीं होते।

विशेषार्थ—ऐसे भी स्वभाव हैं जो गुण नहीं हैं। जैसे—‘नास्तित्व’ स्वभाव तो है परन्तु गुण नहीं है। इसी प्रकार एकस्वभाव, अनेकस्वभाव, अभेदस्वभाव आदि के विषय में भी जानना चाहिये। गुण और स्वभाव में क्या अन्तर है, इस सम्बन्ध में सूत्र २८ के विशेषार्थ में संविस्तार कथन हो चुका है।

१. पंचास्तिकाय गाथा ७ श्री जयसेन आचार्य की टीका।

स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षया परस्परं गुणाः स्वभावा भवन्ति

॥११६॥

सूत्रार्थ— स्वद्रव्य चतुष्टय अर्थात् स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा परस्पर में गुण स्वभाव हो जाते हैं।

विशेषार्थ— अस्तित्व द्रव्य का गुण है। इस गुण का चतुष्टय और द्रव्य का चतुष्टय एक है। इस अस्तित्व गुण के कारण ही द्रव्य व अन्य गुणों का अस्तित्व है। अतः यह अस्तित्व गुण स्वभाव भी हो जाता है। इसी प्रकार अन्य गुणों के क्षिष्य में भी यथायोग्य ज्ञान लेना चाहिये।

द्रव्याण्यपि भवन्ति ॥१२०॥

सूत्रार्थ— स्वद्रव्य चतुष्टय की अपेक्षा गुण द्रव्य भी हो जाते हैं।

विशेषार्थ— द्रव्य का चतुष्टय और गुण का चतुष्टय एक है। अतः गुण द्रव्य भी हो जाते हैं। जैसे— चेतनद्रव्य, अचेतनद्रव्य, मूर्त्तद्रव्य, अमूर्तद्रव्य इत्यादि।

अब कमप्राप्त विभाव-स्वभाव की व्युत्पत्ति—

स्वभावादन्यथाभवनं विभावः ॥१२१॥

सूत्रार्थ— स्वभाव से अन्यथा होने को, विपरीत होने को विभाव कहते हैं।

विशेषार्थ— जीव का स्वभाव क्षमा है। क्षमा से विपरीत क्रोध रूप होना विभाव है।

शुद्धस्वभाव और अशुद्धस्वभाव की व्युत्पत्ति—

शुद्धं केवलभावमशुद्धं तस्यापि विपरीतम् ॥१२२॥

सूत्रार्थ— केवलभाव (खालिस, अभिश्रित भाव) शुद्धस्वभाव है। इस शुद्ध के विपरीत भाव अर्थात् भिश्रित भाव अशुद्धस्वभाव है।

विशेषार्थ— जो द्रव्य अब्द है अर्थात् दूसरे द्रव्यों से बंधा हशा नहीं है, वह द्रव्य शुद्ध है और उसके जो भाव हैं वे भी शुद्ध हैं। किन्तु जो द्रव्य अन्य द्रव्यों से बंधा हशा है वह अशुद्ध है। उस अशुद्ध द्रव्य के जो भाव हैं वे भी अशुद्ध हैं। क्योंकि 'उपादानकारण सहशं कार्यं भवतीति' अर्थात् उपादान कारण के सहश ही कार्य होता है। इसी बात को श्री कुद्दुद आचार्य दृष्टांत द्वारा

बतलाते हैं ।

कण्यमया भावादो जायते कुण्डलादयो भावा ।

अयमया भावादो अह जायते तु कद्यादी ॥

[समयसार गाथा १०]

अर्थ—सुवर्णमय द्रव्य से सुवर्णमय कुण्डलादि भाव होते हैं और लोहमय द्रव्य से लोहमयी कड़े इत्यादिक भाव होते हैं ।

उपचरित स्वभाव की व्युत्पत्ति—

स्वभावस्याप्यन्यत्रोपचारादुपचरितस्वभावः ॥ १२३ ॥

सूत्रार्थ—स्वभाव का भी अन्यत्र उपचार करना उपचरितस्वभाव है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव तथा पर्याप्ति जीव, अपर्याप्ति जीव इत्यादि कहना उपचरितस्वभाव हैं, क्योंकि ये भाव पुद्गलमयी नामकरण की प्रकृतियों के हैं ।

उपचरितस्वभाव के भेद—

**स द्वेषा कर्मज-स्वाभाविक-भेदात् । यथा जीवस्य मूर्तत्वम-
चेतनत्वं । यथा सिद्धास्मनां परज्ञता परदर्शकत्वं च ॥ १२४ ॥**

सूत्रार्थ—वह उपचरितस्वभाव कर्मज और स्वाभाविक के भेद से दो प्रकार का है । जैसे—जीव के मूर्तत्व और अचेतनत्व कर्मज-उपचरितस्वभाव हैं । तथा जैसे—सिद्ध आत्माओं के पर का जाननपना तथा पर का दर्शकत्व स्वाभाविक-उपचरित-स्वभाव है ।

विशेषार्थ—जीव का लक्षण यद्यपि अमूर्तत्व और चेतनत्व है तथापि कर्मबन्ध से एकत्व हो जाने के कारण जीव मूर्तभाव को प्राप्त हो जाता है । सूत्र १०३ के विशेषार्थ में तथा सूत्र २६ के विशेषार्थ में इसका विशद व्याख्यान है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मोदय से जीव में ज्ञान (अचेतन) ग्रीदायिक भाव है । अतः जीव में मूर्तत्व और अचेतनत्व कर्मज-ओपचारिकभाव हैं । विशेष कथन सूत्र २६ के विशेषार्थ में है ।

सिद्ध भगवान् नियम से आत्मज्ञ हैं उनमें सर्वज्ञता उपचार से है अर्थात् औपचारिक भाव है। श्री कुंदकुंद लालार्ये ने कहा भी है—

जाणदि पस्सदि सब्वं ववहारणयेण केवलो भगवं ।

केवलरणाणो जाणदि पस्सदि गियमेण अप्पाण ॥१५६॥

[नियमसार]

अर्थ—केवली भगवान् सर्व पदार्थों को जानते देखते हैं—यह कथन व्यवहारतन्य (उपचारेतन्य) से है परन्तु केवलज्ञानी नियम से अपनी आत्मा को ही जानते और देखते हैं।

एवमितरेषां द्रव्याणामुपचारो यथा संभवो ज्ञेयः ॥१२५॥

सूत्रार्थ—इसी प्रकार अन्य द्रव्यों में भी यथासम्भव उपचरितस्वभाव जरनना चाहिये।

विशेषार्थ—शर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन चार में उपचरित स्वभाव नहीं है [सूत्र ३० व ३१]। मात्र जीव और पुरुषल इन दो द्रव्यों में उपचरित-स्वभाव होता है।

॥ इस प्रकार विशेष स्वभावों का निरूपण हुआ ॥

एकान्त पक्ष में दोष

दुर्नियैकान्तमारुद्धा भावानां स्वाधिका हि ते ।

स्वाधिकारुच विपर्यस्ताः सकलद्धा नया यतः ॥८॥

गायत्रार्थ—जो नय पदार्थों के दुर्नियरूप एकान्त पर आरुड हैं, परस्यर विरुद्ध प्रतीत होने वाले तित्य, अनित्य आदि उभय वर्गों में से एक को मान कर दूसरे का सर्वथा निषेध करते हैं, वे स्वाधिक हैं अर्थात् स्वेच्छा-प्रदृत हैं। स्वाधिक होने से वे नय विपरीत हैं, क्योंकि वे दूषित नय अर्थात् नयाभास हैं।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में इस गायत्रा का पाठ निम्न प्रकार है—

कुर्वये कान्तमारुढा भावा न स्वार्थेकाहिता ।

स्वार्थिकास्तद्विपर्यस्ता निःकलंकास्तथा यतः ॥ [पृ० ६३]

अर्थ—कुर्वय एकान्त को लिये हुए भाव सम्यग्यं वाले नहीं होते हैं। जो नव एकान्त से रहित भाव वाले हैं वे सभीचीन अर्थ को बतलाने वाले हैं।
तत्कथा ? ॥ १२६ ॥

सूत्रार्थ—वह किस प्रकार ?

तथाहि—सर्वधर्मकान्तेन सदरूपस्य न नियतार्थव्यवस्था संकरादिदोषत्वात् ॥ १२७ ॥

सूत्रार्थ—संकरादि दोषों से दूषित होने के कारण सर्वधर्मकान्त के मानने पर सदरूप पदार्थ की नियत अर्थव्यवस्था नहीं हो सकती है।

विशेषार्थ—१. संकर, २. व्यतिकर, ३. विरोध, ४. वैयाधिकरण, ५. अनवस्था, ६. संशय, ७. अप्रतिपत्ति, ८. अभाव, ये संकरादि आठ दोष हैं।

१. संकर—सर्व वस्तुओं का परस्पर मिलकर एक वस्तु हो जाना।

२. व्यतिकर—जिस वस्तु की किसी भी प्रकार से स्थिति न हो, वह व्यतिकर दोष है। जैसे—‘चक्षु से सुना’ यह व्यतिकर दोष है।

३. विरोध—जड़ का चेतन हो जाना और चेतन का जड़ होना। जड़ और चेतन में परस्पर विरोध है।

४. एक समय में अनेक वस्तुओं में विषम अर्थात् परस्पर विरुद्ध पर्यायें रह सकती हैं। जैसे—शीत व उष्ण पर्यायें भिन्न-भिन्न वस्तुओं में सो रह सकती हैं, यथा—जल में शीतलता और ग्रन्ति में उष्णता। किन्तु इन दोनों परस्पर विरुद्ध अर्थात् विषम पर्यायों को एक ही समय में एक के आधार कहना वैयाधिकरण दोष है।

५. अनवस्था (ठहर व नहीं)—एक से दूसरे की, दूसरे से तीसरे की और तीसरे से चौथे की उत्पत्ति—इम प्रकार कहीं पर भी ठहराव नहीं होना जैसे—ईश्वर-कर्तृत्व में अनवस्था दोष आता है, वयोंकि संमार का कर्ता

ईश्वर है, ईश्वर का कर्ता अन्य है और उस अन्य का कर्ता दूसरा है। इस प्रकार कल्पनामों का कहीं विराम न होना अनवस्था दोष है।

६. संशय—वर्तमान में निश्चय न कर सकना संशय है। अथवा, विश्व स्तुति को स्पृण करने वाले विकल्प को संशय कहते हैं। जैसे—यह सीप है या चांदी।

७. अप्रतिपत्ति—वस्तुस्वरूप की अज्ञानता अप्रतिपत्ति है।

८. अभाव—जिस वस्तु का सर्वेषा अभाव हो उसको कहना अभाव दोष है। जैसे—गधे के सींग।

तथासदूरूपस्य सकलशून्यताप्रसंगात् ॥१२८॥

सूत्रार्थ—यदि सर्वेषा एकान्त से असदूरूप माना जाय तो सकल-शून्यता का प्रसंग भा आयगा।

विशेषार्थ—सर्वेषा असदूरूप मानने पर सम्पूर्ण पदार्थ असदात्मक हो जायेगे, क्योंकि स्वरूप से भी अभाव मानना पड़ेगा। अतः कोई भी वस्तु सदूरूप न रहने से सकल-शून्यता हो जायगी।

नित्यस्थैकरूपत्वादेकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः । अर्थ-
क्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१२९॥

सूत्रार्थ—सर्वेषा नित्यरूप मानने पर पदार्थ एकरूप हो जायगा। एकरूप होने पर अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जायेगा और अर्थक्रियाकारित्व के अभाव में पदार्थ का ही अभाव हो जायगा।

विशेषार्थ—जिस वस्तु से किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती अर्थात् जिसमें अर्थक्रियाकारिपना नहीं है, वह वस्तु नहीं है। अर्थक्रियाकारिपना वस्तु का धर्म है, क्योंकि उससे उत्तर पर्याय की सिद्धि होती है।

अनित्यपक्षेषि निरन्वयत्वात् अर्थक्रियाकारित्वाभावः ।
अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१३०॥

सूत्रार्थ—सर्वथा अनित्य पक्ष में भी निरन्वय अर्थात् निर्द्वयत्व होने से अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जायगा और अर्थक्रियाकारित्व का अभाव होने से द्रव्य का भी अभाव हो जायगा ।

विशेषार्थ—पर्याय अनित्य है और द्रव्य नित्य है । सर्वथा अनित्य मानने पर नित्यता के अभाव का प्रसंग आ जायगा अर्थात् पर्यायों में अन्वयरूप से रहने वाले द्रव्य का अभाव हो जायगा । और अन्वयरूप द्रव्य के अभाव में पर्यायों का भी अभाव हो जायगा ।

एकस्वरूपस्यैकान्तेन विशेषाभावः सर्वेषैकरूपत्वात् । विशेषाभावे सामान्यस्याप्यभावः ॥१३१॥

सूत्रार्थ—एकान्त से एकस्वरूप सामान्ये तर सर्वथा एकजूणता होने से विशेष का अभाव हो जायगा और विशेष का अभाव होने पर सामान्य का भी अभाव हो जायगा ।

विशेषार्थ—सूत्र १५ में सामान्य और विशेषात्मक वस्तु बतलाई है । विशेष का अर्थ पर्याय है । जैसे—शबक, छबक, स्याश, कोश, कुशुल, घट आदि पर्यायें । इन पर्यायों में अन्वयरूप से रहने वाला द्रव्य 'सामान्य' है । जैसे—शबक आदि पर्यायों में रहने वाली गिट्ठी । द्रव्य बिना पर्याय नहीं होती और पर्याय बिना द्रव्य नहीं होता । श्री कुद्दकुद ग्राचार्य ने कहा भी है—

पञ्जयविजुदं दब्बं दब्बविजुत्ताय पञ्जया णत्यि ।

दोणहं अणएणभूदं भावं समणा पर्खविन्ति ॥१३॥ [पञ्चास्तिकाय]

अर्थ—पर्याय (विशेष) से रहित द्रव्य (सामान्य) और द्रव्य (सामान्य) से रहित पर्याय (विशेष) नहीं होतीं । दोनों का अनन्यपना है, ऐसा अमण प्ररूपित करते हैं ।

अतः सर्वथा एकान्त से सामान्य मानने पर विशेष का अभाव हो जाने पर सामान्य का भी अभाव हो जायगा क्योंकि दोनों के पनन्यपना है ।

निविशेषं हि सामान्यं भवेत् खरविषाणवत् ।

सामान्यरहित्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि ॥१४॥ इति ज्ञेयः

गायार्थ—विशेष रहित सामान्य निश्चय से गधे के सींग के समान है और सामान्य से रहित होने के कारण विशेष भी गधे के सींग के समान है अर्थात् अवस्तु है । ऐसा जानना चाहिये ।

अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधाराधेया-भावाच्च ॥१३२॥

सूत्रार्थ—सर्वथा अनेक पक्ष में भी पदार्थों (पर्यायों) का निराधार होने से तथा आधार-आधेय का अभाव होने से द्रव्य का अभाव हो जायगा ।

विशेषार्थ—सामान्य आधार है और विशेष (पर्याय) आधेय हैं । यदि केवल विशेषरूप अर्थात् अनेकरूप ही माना जाय तो विशेष (पर्यायों) का आधार जो सामान्य, उसका अभाव हो जाने से विशेष निराधार एवं जायेंगे और आधार-आधेय सम्बन्ध का भी अभाव हो जायगा । सामान्यरूप आधार के अभाव में विशेषरूप आधेयों का भी अभाव हो जायगा । इस प्रकार द्रव्य का भी अभाव हो जायगा ।

भेदपक्षेऽपि विशेषस्वभावानो निराधारत्वादर्थक्रियाकारि-त्वाभावः । अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१३३॥

सूत्रार्थ—गुण-गुणी और पर्याय-पर्यायी के सर्वथा भेद पक्ष में विशेषस्वभाव अर्थात् गुण और पर्यायों के निराधार हो जाने से अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जायगा और अर्थक्रियाकारित्व के अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायगा ।

विशेषार्थ—गुण और गुणी का सर्वथा भेद मानने पर तथा पर्याय और पर्यायी का सर्वथा भेद मानने पर अर्थात् प्रदेश अपेक्षा भी भेद मानने पर गुण और गुणी दोनों की भिन्न-भिन्न सत्ता हो जायगी तथा पर्याय और पर्यायी की भी भिन्न-भिन्न सत्ता हो जायगी । भिन्न-भिन्न सत्ता हो जाने से गुण और पर्याय निराधार हो जायेंगे अर्थात् द्रव्य के आधार नहीं रहेंगे । गुण और पर्यायरूप विशेष स्वभावों के निराधार हो जाने से अर्थक्रियाकारित्व का

अभाव हो जायगा । अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जाने से द्रव्य का भी अभाव हो जायगा । श्री अमृतचन्द्राचार्य ने प्रवचनसार ग्रन्था ११० की टीका में कहा भी है—

‘न खलु द्रव्यात्पृथग्भूतो गुण इति वा पर्याय इति वा कश्चिदपि स्यात् । यथा सुवर्णात्पृथग्भूतं तत्पीतत्वादिकमिति वा तत्कुण्डलादि-कृतमिति वा ।’

अर्थ—निश्चय नय से द्रव्य से पृथग्भूत कोई भी गुण या पर्याय नहीं होती । जैसे—सुवर्ण का पीलापन गुण तथा कुण्डलादि पर्याये सुवर्ण से पृथग्भूत नहीं होतीं ।

अभेदपक्षेऽपि सर्वेषामेकत्वम्, सर्वेषामेकत्वेऽर्थक्रियाकारि-त्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१३४॥

सूत्रार्थ—सर्वथा अभेद पक्ष में गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी सम्पूर्ण पर्याय एकरूप हो जायेंगे । सम्पूर्ण पदार्थों के एकरूप हो जाने पर अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जायगा और अर्थक्रियाकारित्व के अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायगा ।

विशेषार्थ—प्रवचनसार ग्रन्था २७ की टीका में धी जयसेन आचार्य ने कहा है—

‘यदि पुनरेकान्तेन ज्ञानमात्मेति भरण्यते तद् । ज्ञानगुणमात्र एवात्मा प्राप्तः सुखादिघर्माणामवकाशो नास्ति । तथा सुखदीर्घादि-घर्मसमूहाभावादात्माऽभावः, आत्मन आधारभूतस्याभावादाधेय-भूतस्य ज्ञानगुणस्याप्यभावः, इत्येकान्ते सति द्वयोरत्यभावः ।’

अर्थ—यदि एकात्म से ज्ञान ही आत्मा है, ऐसा कहा जाय तब ज्ञानगुणमात्र ही आत्मा प्राप्त होगा, फिर सुख आदि स्वभावों का अवकाश नहीं रहेगा तथा सुख, वीर्य आदि स्वभावों के समुदाय का अभाव होने से आत्मा का अभाव हो जायगा । जब आधारभूत आत्मा का अभाव हो गया, तब

उसका आधेयभूत ज्ञानगुण का भी अभाव हो गया। इस तरह अमेद एकान्त मत में ज्ञानगुण और आत्मद्रव्य दोनों का ही अभाव हो जायगा।

भव्यस्यैकान्तेन पारिणामिकत्वात् द्रव्यस्थ द्रव्यान्तरत्वे प्रसङ्गात्, सङ्करादिदोषसम्भवात् ॥१३५॥

सूत्रार्थ——एकान्त से सर्वथा अब्य स्वभाव के मानने पर द्रव्य के द्रव्यान्तर का प्रसंग आ जायगा, क्योंकि द्रव्य परिणामी होने के कारण पर-द्रव्यरूप भी परिणाम जायगा। इस प्रकार संकर आदि दोष सम्भव हैं।

विशेषार्थ——द्रव्य परिणामी है, यदि उसमें एकान्त से भव्य स्वभाव ही माना जाय, अभव्य स्वभाव स्वीकार न किया जाय तो द्रव्य द्रव्यान्तररूप भी परिणामन कर जायगा, जिससे संकरादि आठ दोष आ जायेंगे। संकर आदि आठ दोषों का कथन सूत्र १२७ के विशेषार्थ में किया जा चुका है।

सर्वथाऽभव्यस्यैकान्तेऽपि तथा शून्यताप्रसङ्गात् स्वरूपे-राप्यभवनात् ॥१३६॥

सूत्रार्थ——एकान्त से सर्वथा अभव्य स्वभाव के मानने पर शून्यता का प्रसङ्ग आ जायगा, क्योंकि स्वस्वरूप से भी वह नहीं हो सकेगा।

विशेषार्थ——यदि सर्वथा अभव्यस्वभाव माना जाय तो द्रव्य स्वस्वरूप से भी अर्थात् अपनी भाविपर्यायरूप भी नहीं हो सकेगा जिससे द्रव्य का ही स्वभाव हो जायगा। तथा द्रव्य के अभाव में सर्व शून्य हो जायगा।

स्वभावस्वरूपस्यैकान्तेन संसारभावः ॥१३७॥

सूत्रार्थ——एकान्त से सर्वथा स्वभावस्वरूप माना जाय तो संसार का ही स्वभाव हो जायगा।

विशेषार्थ संसार विभावस्वरूप है। स्वभाव के एकान्तपक्ष में विभाव को अवकाश नहीं। अतः विभावनिरपेक्ष सर्वथा स्वभाव के मानने पर संसार का अभाव हो जायगा।

विभावपक्षेऽपि मोक्षस्याप्यभावः ॥१३८॥

सूत्रार्थ— स्वभाव निरपेक्ष विभाव के मानने पर मोक्ष का भी अभाव हो जायगा ।

विशेषार्थ— स्वभावरूप परिणामन कोष्ठ है । एकान्त से सर्वथा विभाव स्वरूप मानने पर स्वभाव का अभाव हो जायगा । स्वभाव के अभाव में मोक्ष का भी अभाव हो जायगा ।

**सर्वथा चैतन्यमेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिः
स्यात्, तथा सति ध्यानं ध्येयं ज्ञानं ज्ञेयं गुरुःशिष्याद्याभावः
॥१३९॥**

सूत्रार्थ— सर्वथा चैतन्य पक्ष के मानने से सब जीवों के शुद्धज्ञानरूप चैतन्य की प्राप्ति हो जायगी । शुद्धज्ञानरूप चैतन्य की प्राप्ति हो जाने पर ध्यान, ध्येय, ज्ञान, ज्ञेय, गुरु, शिष्य आदि का अभाव हो जायगा ।

विशेषार्थ— यदि सर्वथा चैतन्यपक्ष माना जाय तो ज्ञानावरणकर्मोदय जनित अज्ञान का अभाव होने से सम्पूर्ण जीवों के शुद्धज्ञानरूप चैतन्य होने का प्रसंग आ जायगा । शुद्धज्ञानरूप चैतन्य की प्राप्ति का प्रसंग आ जाने से ध्यान, ध्येय आदि का अभाव हो जायगा, क्योंकि शुद्धज्ञानरूप चैतन्य के अभाव में उसकी प्राप्ति के लिये ही ध्यान की आवश्यकता होती है ।

**सर्वथाशब्दः सर्वप्रकारवाची, अथवा सर्वकालवाची,
अथवा नियमवाची वा, अनेकान्तसापेक्षी वा ? यदि सर्वप्रकार-
वाची सर्वकालवाची अनेकान्तवाची वा, सर्वादिगणे पठनात्
सर्वशब्द, एवं विधश्चेत्तहि सिद्धं नः समीहितम् । अथवा
नियमवाची चेत्तहि सकलार्थनां तव प्रतीतिः कथं स्यात् ?
नित्यः अनित्यः एकः अनेकः भेदः अभेदः कर्थं प्रतीतिः
स्यात् नियमितपक्षत्वात् ? ॥१४०॥**

अर्थ—सर्वथा शब्द सर्वप्रकारवाची है, अथवा सर्वकालवाची है, अथवा नियमवाची है, अथवा अनेकान्तवाची है ? यदि सर्व-आदि गण में पाठ होने से सर्वथा शब्द सर्वप्रकार, सर्वकालवाची अथवा अनेकान्तवाची है तो हमारा सभीहि अर्थात् इष्टसिद्धान्त सिद्ध हो गया । यदि सर्वथा शब्द नियमवाची है तो फिर नियमित पक्ष होने के कारण सम्पूर्ण अथों की अर्थात् नित्य-अनित्य, एक-अनेक, भेद-अभेद आदि रूप सम्पूर्ण पदार्थों की प्रकीर्ति कैसे होगी ? अर्थात् नहीं हो सकेगी ।

विशेषार्थ—अन्य मत वाले सर्वथा शब्द का अर्थ ‘नियम’ करते हैं । अतः ‘सर्वथा’ शब्द के प्रयोग को मिथ्या कहा है—

परसम्याणं वयणं मिच्छ्रं स्तुलु होदि सव्वहा वयणा ।

जइणाणं पुण वयणं सम्मं सु कहंचि वयणादो ॥

गो. क. गा. ८६५]

अर्थ—मिथ्यामतियों का वचन सर्वथा कहने से नियम से मिथ्या अर्थात् असत्य होते हैं और जैनमत के वचन ‘कथंचित्’ का प्रयोग होने से सम्यक् है अर्थात् सत्य है ।

तथाऽचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात् ॥ १४१ ॥

सूत्रार्थ—वैसे ही सर्वथा अचेतन पक्ष के मानने पर सम्पूर्ण चेतन का उच्छेद हो जायगा, क्योंकि केवल अचेतन ही माना गया है ।

मूर्तस्यैकान्तेनात्मनो न मोक्षस्यावाप्तिः स्यात् ॥ १४२ ॥

सूत्रार्थ—सर्वथा एकान्त से आत्मा को मूर्त स्वभाव के मानने पर आत्मा को कभी भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि अष्ट कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाने पर सिद्धात्मा अमूर्तिक है । सूत्र १०३ व २१ के विशेषार्थ में मूर्त अमूर्त का विशेष कथन है ।

सर्वथाऽमूर्तस्यापि लथात्मनः संसारविलोपः स्यात् ॥ १४३ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा को सर्वथा अमूर्तिक मानने पर संसार का लोप हो जायगा ।

विशेषार्थ—सूत्र १०३ व २६ के विशेषार्थ में यह कहा जा चुका है कि अनादि कर्मबंध के कारण आत्मा मूर्तिक हो रही है और कर्मों से मुक्त होने पर अमूर्तिक हो जाती है । यदि आत्मा को सर्वथा अमूर्तिक माना जायगा तो संसार के अभाव का प्रसंग आयेगा, क्योंकि संसारी आत्मा कर्मबंध के कारण मूर्तिक है ।

एकप्रदेशस्यैकान्तेनाखण्डपरिपूर्णस्यात्मनोऽनेककार्यकारित्वं एव हानिः स्यात् ॥ १४४ ॥

सूत्रार्थ—सर्वथा एकप्रदेशस्वभाव के द्वान्ते एव अखण्डता से परिपूर्ण आत्मा के अनेक कार्यकारित्व का अभाव हो जायगा ।

विशेषार्थ—अनेक प्रदेश का फल अनेककार्यकारित्व है । सर्वथा एकान्त से एकप्रदेशस्वभाव मानने से अनेकप्रदेशस्वभाव का अभाव हो जायगा जिससे अनेककार्यकारित्व की हानि हो जायगी ।

सर्वथाऽनेकप्रदेशात्वेऽपि तथा तस्यानर्थकार्यकारित्वं स्वस्व-भाव शून्यताप्रसङ्गात् ॥ १४५ ॥

सूत्रार्थ—आत्मा के अनेक प्रदेशात्व मानने पर भी अखण्ड एकप्रदेशस्वरूप आत्म-स्वभाव के अभाव हो जाने से अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जायगा ।

विशेषार्थ—यद्यपि आत्मा बहुप्रदेशी है तथापि अखण्ड, एक द्रव्य है । यदि अखण्डता की अपेक्षा आत्मा को एकप्रदेश न माना जाय तो सर्वप्रदेश बिल्लर जायेंगे, परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा । अतः अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जायगा । 'अर्थक्रियाकारित्व' का अर्थ सूत्र १२६ के विशेषार्थ में देखना चाहिये ।

शुद्धस्यैकान्तेनात्मनो न कर्ममलकलङ्घावलेपः सर्वथा-निरञ्जनत्वात् ॥ १४६ ॥

सूत्रार्थ—सर्वथा एकान्त से शुद्धस्वभाव के मानने पर आत्मा सर्वथा निरंजन हो जायगी। निरंजन हो जाने से कर्ममलरूपी कलङ्क का अवलेप अर्थात् कर्मबंध सम्भव नहीं होगा।

विशेषार्थ—यदि आत्मा को सर्वथा शुद्ध माना जाय तो कर्मों से रहित होने के कारण आत्मा के कर्मबंध नहीं होगा।

**सर्वथाऽशुद्धैकान्तेऽपि तथाऽत्मनो न कदापि शुद्धस्वभाव-
प्रसङ्गः स्यात् तत्त्वमयत्वात् ॥ १४७ ॥**

सूत्रार्थ—एकान्त से सर्वथा अशुद्ध स्वभाव के मानने पर अशुद्धमयी हो जाने से आत्मा को कभी भी शुद्धस्वभाव की प्राप्ति नहीं होगी अर्थात् भोक्ता नहीं होगा।

**उपचरितैकान्तपक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति नियमित-
पक्षत्वात् ॥ १४८ ॥**

सूत्रार्थ—उपचरित-स्वभाव के एकान्त पक्ष में भी आत्मज्ञता सम्भव नहीं है, क्योंकि नियत पक्ष है।

विशेषार्थ—सूत्र १२४ में बतलाया गया कि उपचरित-स्वभाव से परज्ञता है। यदि सर्वथा उपचरित-स्वभाव माना जाय और अनुपचरित-स्वभाव न माना जाय तो आत्मा में परज्ञता ही रहेगी और आत्मज्ञता अनुपचरित-स्वभाव होने से उसके अभाव का प्रसंग आ जायगा।

**तथाऽत्मनोऽनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधः स्यात्
॥ १४९ ॥**

सूत्रार्थ—उसी प्रकार अनुपचरित एकान्त पक्ष में भी आत्मा के परज्ञता ग्रादि का विरोध आ जायगा।

विशेषार्थ—ग्रादि शब्द से परदर्शकत्व का भी ग्रहण हो जाता है। परज्ञता और परदर्शकत्व, ये उपचरित-स्वभाव हैं [सूत्र १२४]। एकान्त अनुपचरित

पक्ष में उपचरित-पक्ष का निवेद होने से आत्मा का परज्ञता और परदशांकत्व से विरोध आ जायगा जिससे सर्वज्ञता के ग्रभाव का प्रसंग आ जायगा ।

॥ इस प्रकार एकान्त पक्ष में दोषों का निरूपण हुआ ॥

नव योजनिका

नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः ।
तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयमिश्रितं कुरु ॥ १० ॥

गाथार्थ—प्रमाण से नाना स्वभाव वाले द्रव्य को जान करके, सापेक्षसिद्धि के लिये उसको कथंचित् नयों से मिश्रित अर्थात् युक्त करना चाहिये ।

विशेषार्थ—सूत्र ३३ में बतलाया गया है कि द्रव्य आदि का ज्ञान प्रमाण और नय से होता है । सूत्र ३४ में प्रमाण का लक्षण और सूत्र ३६ में नय का लक्षण बतलाया जा चुका है । आगे भी सूत्र १७७ में प्रमाण का स्वरूप और सूत्र १८१ में नय का स्वरूप कहा जायगा । स्यात् (कथंचित्) सापेक्ष नय सम्यग्नय हैं । द्रव्य में सापेक्ष स्वभावों की सिद्धि के लिये स्यात् सापेक्ष नयों का प्रयोग करना चाहिये । गाथा ८ में कहा गया है कि जो नय एकान्त पक्ष को ग्रहण करने वाली है अर्थात् 'स्यात्' निरपेक्ष हैं, वे दुर्बय हैं ।

अब आगे किस-किस द्रव्य में किस-किस नय की अपेक्षा कौन-कौन स्वभाव पाया जाता है इसका कथन किया जाता है—

स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्तिस्वभावः ॥ १५० ॥

सूत्रार्थ—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव अर्थात् स्वचतुष्टय को ग्रहण करने वाले द्रव्याधिक नय की अपेक्षा से अस्तिस्वभाव है । क्योंकि स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तिस्वभाव है ।

विशेषार्थ—स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्याधिक नय का कथन सूत्र ५४ व १८८ में है ।

१. यह स्लोक संस्कृत नयचक्र पृ० ६४ पर भी है ।

परद्रव्यादिग्राहकेण नास्तिस्वभावः ॥१५१॥

सूत्रार्थ—परद्रव्य, परखेत्र, परकाल, परभाव अर्थात् परचतुष्टय को ग्रहण करने वाले द्रव्याधिक नय की अपेक्षा नास्तिस्वभाव है, क्योंकि परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तिस्वभाव है।

विशेषार्थ—परद्रव्यादिग्राहक द्रव्याधिक नय का कथन सूत्र ५५ व १८६ में है।

उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकेरा नित्यस्वभावः ॥१५२॥

सूत्रार्थ—उत्पाद, व्यय को गौण करके धौष्ट्र को ग्रहण करने वाले शुद्ध-द्रव्याधिक नय की अपेक्षा नित्यस्वभाव है।

विशेषार्थ—उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहक शुद्धद्रव्याधिक नय का कथन सूत्र ४८ में हो चुका है।

केनचित्पर्याधिकेनानित्यस्वभावः ॥१५३॥

सूत्रार्थ—किसी पर्याधिक नय की अपेक्षा अनित्यस्वभाव है।

विशेषार्थ—सत्ताग्राहत्वेनोत्पादव्ययग्राहकस्वभावोऽनित्यशुद्धपर्याधिक नय का कथन सूत्र ६० में है। इस नय की अपेक्षा अनित्यस्वभाव है।

भेदकल्पनानिरपेक्षेणक स्वभावः ॥१५४॥

सूत्रार्थ—भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्याधिक नय की अपेक्षा एकस्वभाव है।

विशेषार्थ—भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्याधिक नय का स्वरूप सूत्र ४९ में कहा गया है। यह नय गुण गुणी को अभेदरूप से ग्रहण करता है अर्थात् द्रव्य में भेदरूप से गुणों को ग्रहण नहीं करता। जैसा कि समयसार गाया ७ में कहा है—

‘एवि णाणं ण चरित्तं ण वृंसणं जाणुगो सुद्धो ।’

अर्थात् जीव के न ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है, वह सो एक ज्ञात्यक, शुद्ध है।

यह कथन भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्याधिक नय की हृष्टि से है ।

अन्वयद्रव्याधिकेनैकस्याप्यनेकद्रव्यस्वभावत्वम् ॥१५५॥

सूत्रार्थ—अन्वयद्रव्याधिक नय की अपेक्षा से एक द्रव्य के भी अनेक स्वभाव पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—सूत्र ५३ व १८७ में अन्वयसापेक्ष द्रव्याधिक नय का कथन है । वहां पर हृष्टान्त दिया है—‘यथा गुणपर्यायस्वभावं द्रव्यम्’ । अर्थात् द्रव्य गुण-पर्याय स्वभाव वाला है । द्रव्य एक है किन्तु गुण और पर्याय अनेक हैं । अतः इस नय की हृष्टि में एक द्रव्य के अनेक स्वभाव होते हैं । जैसे—एक ही देवदत्त पुरुष की बाल-बूढ़ अवस्था होती है । अथवा उन अक्सराओं में एक ही देवदत्त रहता है ।

सद्भूतव्यवहारेण गुणगुण्डादिभिर्भेदस्वभावः ॥१५६॥

सूत्रार्थ—सद्भूतव्यवहार उपनय की अपेक्षा गुण-गुणी आदि में भेद-स्वभाव है ।

विशेषार्थ—सद्भूतव्यवहार उपनय का कथन सूत्र २०६ में किया गया है । इस नय का विषय गुण और गुणी में तथा पर्याय-पर्यायी में भेद अहण करना है । अतः इस नय की प्रपेक्षा गुण और गुणी में तथा पर्याय-पर्यायी में संज्ञा आदि की अपेक्षा भेद है ।

भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगुण्डादिभिरभेद स्वभावः ॥१५७॥

सूत्रार्थ—भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्ध द्रव्याधिक नय की अपेक्षा गुण, गुणी आदि में अभेदस्वभाव है ।

विशेषार्थ—भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्याधिक नय का कथन सूत्र ४६ में है । उस सूत्र में कहा है—‘निजगुणपर्यायस्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम् ।’ अर्थात् निज गुण, पर्याय और स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है । अतः इस नय की हृष्टि से गुण, गुणी में, पर्याय-पर्यायी में तथा स्वभाव-स्वभावी में अभेद है । अर्थात् प्रदेशभेद नहीं है ।

परमभावग्राहकेण भव्याभव्यपारिणामिकस्वभावः ॥ १५८ ॥

सूत्रार्थ—परमभावग्राहक द्रव्याधिक नय की अपेक्षा भव्य और अभव्य पारिणामिक स्वभाव है ।

विशेषार्थ—सूत्र ३१६ में कहा है 'पारिणामिक भाव की मुख्यता से परमस्वभाव है ।' अतः यहाँ पर परमभावग्राहक द्रव्याधिक नय की अपेक्षा भव्यभाव और अभव्यभाव को पारिणामिक भाव कहा गया है ।

सूत्र ५६ के विशेषार्थ में बतलाया गया है कि शुद्ध और अशुद्ध के उपचार से रहित जो नय द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करता है, वह परमभावग्राहक द्रव्याधिक नय है । 'ज्ञानस्वरूप आत्मा' यह परमभावग्राहक द्रव्याधिक नय का विषय है । स्वरूप से परिणामन करना भव्यस्वभाव और पररूप से परिणामन नहीं करना अभव्यस्वभाव, ऐ दोनों स्वभाव शुद्ध और अशुद्ध के उपचार से रहित हैं । अतः भव्य, अभव्य स्वभाव परमभावग्राहक द्रव्याधिक नय का विषय है । परमभावग्राहक नय का कथन सूत्र १६० में भी है ।

शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहकेण चेतनस्वभावो जीवस्य ॥ १५९ ॥

सूत्रार्थ—शुद्धाशुद्ध-परमभावग्राहक द्रव्याधिक नय की अपेक्षा से जीव के चेतन-स्वभाव है ।

विशेषार्थ—चेतनस्वभाव जीव का लक्षण है, वह पारिणामिक भाव है । किन्तु छद्यस्थ घवस्था में वह चेतनस्वभाव अशुद्ध रहता है और परमात्म अवस्था में आवरक कर्म के क्षय हो जाने से शुद्ध हो जाता है । परमभावग्राहक नय की अपेक्षा जीव के चेतनस्वभाव है ऐसा सूत्र ५६ में कहा गया है । चेतनस्वभाव शुद्ध, अशुद्ध दो प्रकार का है अतः परमभावग्राहक द्रव्याधिक नय को भी शुद्धाशुद्ध-परमभावग्राहक द्रव्याधिक नय कहा है ।

असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः । १६० ।

सूत्रार्थ—असद्भूतव्यवहार उपनय की अपेक्षा कर्म, नोकर्म के भी चेतन-स्वभाव है ।

विशेषार्थ—असद्भूतव्यवहार नय का कथन सूत्र २०१० में है। असद्भूतव्यवहार उपनय के तीन भेद हैं। उनमें जो दूसरा भेद ‘विजात्यसद्भूतव्यवहार उपनय’ है, उसकी अपेक्षा कर्म, नोकर्म के भी चेतनस्वभाव है। सूत्र ८६ के विशेषार्थ में संस्कृत नयचक्र के आधार पर यह कहा गया है कि शरीर (नोकर्म) को जीव कहना विजात्यसद्भूतव्यवहार उपनय का विषय है। श्री राजवातिक अ० ५ सूत्र १६ वार्तिक २४ में भी कहा है—

‘पौरुषेयपरिणामानुरक्षित्वात् कर्मणः स्थाच्चैतन्यम्।’

ग्रन्थ—पौद्गलिक कर्म पुरुष (जीव) के परिणामों से अनुरंजित होने के कारण कथंचित् चेतन है।

मूलाराधना याथा ६१६ की टीका में भी इसी प्रकार कहा गया है—

‘सह चित्तेनात्मना वर्तते इति सचित्तं जीवशरीरत्वेनावस्थितं पुद्गलद्रव्यं।’

अर्थात्—इस आत्मा के साथ जो पुद्गलपदार्थ रहता है वह सचित्त है। जीव का शरीर बनकर जो पुद्गल रहता है वह सचित्त है।

प्राकृत नयचक्र पृ० ८२ पर कहा है—

पश्चिमिदिदेहा जीवा ववहारदो य जिणिष्ठा।

हिसादिसु जइ पापं सञ्चत्यवि किं ए ववहारो ॥२३४॥

अर्थात्—एकेन्द्रिय आदि का शरीर है, ऐसा जिनेन्द्र ने व्यवहार से कहा है। यदि हिसा आदि में पाप है तो सबंत्र व्यवहार का प्रयोग क्यों न हो? अर्थात् व्यवहार सत्य है, उसका सबंत्र प्रयोग होना चाहिए।

इस प्रकार कर्म, नोकर्म के भी चेतनस्वभाव है किन्तु वह निजस्वभाव नहीं है। जीव से बंध की अपेक्षा उनमें चेतनस्वभाव है जो विजात्यसद्भूतव्यवहार उपनय का विषय है।

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभावः ॥ १६१॥

सूत्रार्थ—परमभावग्राहक द्रव्याधिक नय की अपेक्षा कर्म, नोकर्म के अचेतन

स्वभाव है ।

विशेषार्थ—परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय का स्वरूप सूत्र ५६ व १६० में कहा गया है । अचेतनत्व पुद्गल द्रव्य का निजस्वभाव है अतः यह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय का विषय है ।

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः ॥१६२॥

सूत्रार्थ—विजात्यसद्भूतव्यवहार उपनय की अपेक्षा जीव के भी अचेतनस्वभाव है ।

विशेषार्थ—सूत्र २६ के विशेषार्थ में जीव के अचेतनभाव का विशेष कथन है । अचेतनभाव जीव का निजस्वभाव नहीं है । कर्मबंध के कारण जीव में अचेतनभाव है, अतः यह विजात्यसद्भूतव्यवहार उपनय का विषय है । सूत्र ८६ में विजात्यसद्भूतव्यवहार-उपनय का कथन है । असद्भूतव्यवहार-उपनय का कथन सूत्र २०७ में है ।

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोमूर्त्तस्वभावः ॥१६३॥

सूत्रार्थ—परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा कर्म, नोकर्म के मूर्त्तस्वभाव है ।

विशेषार्थ—परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय का कथन सूत्र १६० व ५६ में है । कर्म, नोकर्म पीदगलिक हैं । मूर्त्तस्वभाव पुद्गल का असाधारण गुण है । अतः कर्म, नोकर्म के मूर्त्तस्वभाव परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय का विषय है ।

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्त्तस्वभावः ॥१६४॥

सूत्रार्थ—असद्भूतव्यवहार-उपनय की अपेक्षा जीव के भी मूर्त्तस्वभाव है ।

विशेषार्थ—सूत्र २०७ में असद्भूतव्यवहारनय का कथन है । सूत्र १०३ व २६ के विशेषार्थ में जीव के मूर्त्तस्वभाव का विशेष कथन है और सूत्र ८६ में विजात्यसद्भूतव्यवहारउपनय का कथन है । कर्मबंध की अपेक्षा जीव में मूर्त्तस्वभाव है जो विजात्यसद्भूतव्यवहारनय का विषय है ।

परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त्स्वभावः

॥१६५॥

सूत्रार्थ—परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा पुद्गल के अतिरिक्त जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य के अमूर्त्स्वभाव हैं।

विशेषार्थ—परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय का कथन सूत्र ५६ व १६० में है : जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य, इन पाँच द्रव्यों में अमूर्त्तत्व निजस्वभाव है अतः यह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय का विषय है ।

पुद्गलस्त्रेत्वत्तरादेवास्त्वयमूर्त्तत्वम् ॥१६६॥

सूत्रार्थ—पुद्गल के भी उपचार से अमूर्त्तस्वभाव है ।

विशेषार्थ—विजात्यसद्भूतव्यवहार-उपनय का कथन सूत्र ५६ में है । यद्यपि अमूर्त्तत्व पुद्गल का निजस्वभाव नहीं है तथापि जीव के साथ वैष की अपेक्षा कर्मरूप पुद्गल गी सूत्र १६० में कथित चेतनस्वभाव के समान अमूर्त्तस्वभाव को प्राप्त हो जाता है । अतः यह विजाति-असद्भूत-व्यवहार-उपनय का कथन है ।

परमभावग्राहकेण कालपुद्गलाणुनामेकप्रदेश स्वभावत्वम्

॥१६७॥

सूत्रार्थ—परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा कालाणुद्रव्य और पुद्गलपरमाणु के एकप्रदेश स्वभाव हैं ।

विशेषार्थ—सूत्र १०० में बतलाया गया है कि पुद्गलपरमाणु के द्वारा व्याप्त क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं । अतः पुद्गल परमाणु एकप्रदेश-स्वभावी है । आकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक-एककालाणु है । अतः कालाणु भी एकप्रदेशी है ।

लोयायासपदेसे इकिकक्षके जे ठिया हु इकिकक्षका ।

रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंख्यद्वारिण ॥२८॥

[वृहद्द्रव्यसंग्रह]

अर्थ—जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों के होर के समान परस्पर भिन्न होकर एक-एक स्थित हैं वे कालारु असंख्यात् द्रव्य हैं।

लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश वह एक-एक कालारु है अतः कालारु भी एकप्रदेश-स्वभाव वाला है। अतः पुद्गलपरमारु और कालारु का एकप्रदेश-स्वभाव परमभावप्राहक द्रव्याधिकनय का विषय है। परमभावप्राहक द्रव्याधिकनय का कथन सूत्र ५८ व १६० में है।

भेदकल्पनानिरपेक्षेरोत्तरेषां चालण्डत्वादेकप्रदेशत्वम् ॥ १६८ ॥

सूत्रार्थ—भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्याधिकनय की अपेक्षा घर्मद्रव्य, अघर्म-द्रव्य, आकाशद्रव्य और जीवद्रव्य के भी एकप्रदेश-स्वभाव है क्योंकि वे अस्त्रण हैं।

विशेषार्थ—भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्याधिकनय का कथन सूत्र ४६ में है। प्रदेश और प्रदेशवान् का भेद न करके घर्मादि द्रव्यों को अस्त्रणरूप से प्रहण करने पर उनमें बहुप्रदेशत्व गौण हो जाता है और वे अस्त्रण एकरूप से प्रहण होने पर उनमें एकप्रदेश-स्वभाव सिद्ध हो जाता है जो भेदकल्पना-निरपेक्ष शुद्ध-द्रव्याधिकनय का विषय है।

भेदकल्पनासापेक्षेण चतुरण्मिषि नानाप्रदेशस्वभावत्वम्

॥ १६९ ॥

सूत्रार्थ—भेदकल्पनासापेक्ष-शुद्ध-द्रव्याधिक नय की अपेक्षा घर्मद्रव्य, अघर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और जीवद्रव्य के नानाप्रदेश-स्वभाव है।

विशेषार्थ—भेदकल्पनासापेक्ष-शुद्ध-द्रव्याधिक नय का कथन सूत्र ५२ में है। द्रव्य में प्रदेश स्त्रण का भेद किया जाता है तो घर्मादि चार द्रव्यों का बहुप्रदेश-स्वभाव है। उत्तरार्थ सूत्र अध्याय पाँच में कहा भी है—

‘असंख्येयाः प्रदेशा घर्माद्यमैकजीवानाम् ॥८॥

‘आकाशस्त्यानन्ताः ॥९॥’

अर्थ—बर्मद्रव्य, अष्टमद्रव्य, एकजीवद्रव्य के असंख्यातप्रदेश हैं। आकाश के अनन्त प्रदेश हैं।

बहुप्रदेश के कारण घर्मादि द्रव्यों की अस्तिकाश संज्ञा है।

पुद्गलाणोरुपचारतो नानाप्रदेशस्वभावः न च कालाणोः स्तिर्ग्रहस्वत्वाभावात् ऋजुत्वाच्च ॥१७०॥

सूत्रार्थ—उपचार से पुद्गलपरमाणु के नानाप्रदेश-स्वभाव है किन्तु कालाणु के, उपचार से भी नानाप्रदेशस्वभाव नहीं है क्योंकि कालाणु में स्तिर्ग्रह व रूप गुण का अभाव है तथा वह स्थिर है।

विशेषार्थ—जी नेमिचन्द्र भ्रात्यार्थ ने द्रव्यसंग्रह में कहा है—

एयपदेसो वि अणु णाणासंघरपदेसवो होदि ।

बहुदेसो उवयारा तेण य काशो भण्ठति सब्बण्ठु ॥२६॥

अर्थ—एक प्रदेशी भी पुद्गलपरमाणु स्तिर्ग्रह, रूप गुण के कारण बंध होने पर अनेक स्कंधरूप बहुप्रदेशी हो सकता है। इस कारण सर्वज्ञदेव उपचार से पुद्गलपरमाणु को काय अर्थात् नानाप्रदेशस्वभाव युक्त कहते हैं।

सूत्र ८५ में बतलाया है कि परमाणु को बहुप्रदेशी कहना स्वजात्यसद्भूत-व्यवहार उपनय का विषय है।

बृहद्ब्रह्मसंग्रह गाथा २६ की टीका में कालाणु के बहुप्रदेशी न होमे के सम्बन्ध में निम्न कथन पाया जाता है—

‘अब मर्त यथा पुद्गलपरमाणोर्द्रव्यरूपेणैकस्यापि द्वयणुकादि-स्कंधपर्यायरूपेण बहुप्रदेशरूपं कायत्वं जातं तथा कालाणोरपि द्रव्ये-रौकस्यापि पर्यायेण कायत्वं भवत्विति ? तत्र परिहारः स्तिर्ग्रहस्त्वादेतु-कस्य बन्धस्याभावान्न भवति । तदपि कस्मात् ? स्तिर्ग्रहस्त्वं पुद्गल-स्यैव घर्मो यतः कारणादिति ।’

अर्थ—यदि कोई ऐसी शंका करे कि जैसे द्रव्यरूप से एक भी पुद्गल-

परमाणु के दि-अणुक आदि संघ पर्याय द्वारा बहुप्रदेशरूप कायत्व सिद्ध हुआ है, ऐसे ही प्रव्यरूप से एक होने पर भी कालाणु के पर्याय द्वारा कायत्व सिद्ध होता है ? इसका परिहार करते हैं कि स्तिरध-रूक्ष गुण के कारण होने वाले बन्ध का कालद्रव्य में अभाव है इसलिये वह काय नहीं हो सकता । ऐसा भी रूक्षता नहीं होने से, बंध नहीं होता । अतः कालाणु के उपचार से भी बहु-प्रदेशी-स्वभाव नहीं है ।

अरणोरमूर्तकालस्थैकविशतितमो भावो न स्यात् ॥१७१॥

सूत्रार्थ—अमूर्तिक कालाणु के २१वाँ अथवा उपचरित-स्वभाव नहीं है ।

विशेषार्थ—कालाणु में उपचरित-स्वभाव नहीं है ऐसा सूत्र ३०-३१ में कहा गया है । जब कालाणु में उपचरित-स्वभाव ही नहीं है तो कालाणु उपचार से बहुप्रदेशी कैसे हो सकता है ? अथवा नहीं हो सकता । पुद्गल में उपचरित स्वभाव है, अतः पुद्गल परमाणु में उपचार से नानाप्रदेश-स्वभाव भी सम्भव है ।

परोक्षप्रमाणापेक्षयाऽसद्भूतव्यवहारेणाप्युपचारेणामूर्तत्वं पुद्गलस्य ॥१७२॥

सूत्रार्थ—परोक्षप्रमाण की अपेक्षा से और असद्भूतव्यवहार उपनय की हृष्टि से पुद्गल के उपचार से अमूर्त स्वभाव है ।

विशेषार्थ—सूत्र १० के विशेषार्थ में बतलाया गया है कि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण को मूर्त कहते हैं । सूत्र ११ के विशेषार्थ में कहते हैं कि जो स्पर्श किया जाय, चखा जाय, सूंचा जाय और देखा जाय, वह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण है । किन्तु पुद्गल परमाणु स्पर्शनादि इन्द्रियों द्वारा स्पर्श नहीं होता, चखा नहीं जाता, सूंचा नहीं जाता, देखा नहीं जाता । परोक्षज्ञान अथवा भौति-शूत इन्द्रिय निमित्तक है । अतः सूक्ष्म पुद्गल-परमाणु परोक्षज्ञान अथवा अपेक्षा पुद्गल के उपचार से अमूर्त स्वभाव है जैसा सूत्र १६६ में कहा जा-

चुका है। सूत्र १६६ की हप्ति से इस सूत्र की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है, इसीलिए संस्कृत नवचक्र में यह सूत्र नहीं है।

शुद्धशुद्धद्रव्याधिकेन स्वभावविभावत्वम् ॥१७३॥

सूत्रार्थ—शुद्ध-द्रव्याधिक नय की अपेक्षा द्रव्य में स्वभाव भाव है और अशुद्ध-द्रव्याधिक नय की अपेक्षा जीव, पुदगल में विभाव-स्वभाव है।

विशेषार्थ—सूत्र १८५ में शुद्धद्रव्याधिक नय का कथन है और सूत्र १८६ में अशुद्धद्रव्याधिक नय का कथन है। स्वभाव भाव शुद्धद्रव्याधिक नय का विषय है। विभाव भाव अशुद्ध-द्रव्याधिक नय का विषय है। पर से बंध होने पर ही द्रव्य में अशुद्धता आती है। जीव और पुदगल, ये दो द्रव्य बंध को प्राप्त होते हैं अतः जीव और पुदगल में ही विभाव भाव है, वर्तीद शेष चार द्रव्यों में विभाव भाव नहीं होता।

शुद्धद्रव्याधिकेन शुद्धस्वभावः ॥१७४॥

सूत्रार्थ—शुद्धद्रव्याधिक नय की अपेक्षा शुद्धस्वभाव है।

विशेषार्थ—शुद्धस्वभाव शुद्धद्रव्याधिक नय का विषय है। शुद्धद्रव्याधिक नय का कथन सूत्र १८५ में है।

अशुद्धद्रव्याधिकेनाशुद्धस्वभावः ॥१७५॥

सूत्रार्थ—अशुद्धद्रव्याधिक नय की अपेक्षा अशुद्ध-स्वभाव है।

विशेषार्थ—अशुद्धस्वभाव अशुद्धद्रव्याधिक नय का विषय है। अशुद्ध-द्रव्याधिक नय का कथन सूत्र १८६ में है।

असद्भूतव्यवहारेण उपचरितस्वभावः ॥१७६॥

सूत्रार्थ—असद्भूतव्यवहार नय की अपेक्षा उपचरित-स्वभाव है।

विशेषार्थ—उपचरित-स्वभाव मात्र जीव और पुदगल में है। शेष द्रव्यों में उपचरित-स्वभाव नहीं है। यह उपचरितभाव असद्भूतव्यवहार उपनय का विषय है।

द्रव्याणां तु यथारूपं तल्लोकेऽपि व्यवस्थितम् ।

तथा ज्ञानेन संज्ञातं नयोऽपि हि तथाविधः ॥ ११ ॥

गाथार्थ—द्रव्यों का जिस प्रकार का स्वरूप है, वह लोक में व्यवस्थित है। ज्ञान से उसी प्रकार जाना जाता है, नय भी उसी प्रकार जानता है।

विशेषार्थ—‘प्रमाणनयैरधिगमः ॥१/६॥’ [व० स०] के अनुसार जिस प्रकार ज्ञान से पदार्थ का बोध होता है उसी प्रकार नय से भी बोध होता है।

॥ इस प्रकार नययोजनिका का प्ररूपण हुआ ॥

प्रमाण का कथन

प्रमाण का लक्षण—

सकलवस्तुग्राहकं प्रमाणं, प्रभीयते परिच्छिद्यते वस्तुतत्त्वं
येन ज्ञानेन तत्प्रमाणम् ॥ १७७ ॥

सूत्रार्थ—सकल वस्तु को ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण है। जिस ज्ञान के द्वारा वस्तुस्वरूप जाना जाता है, निश्चय किया जाता है, वह ज्ञान प्रमाण है।

विशेषार्थ—सूत्र ३४ में ‘सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्’ कहा था किन्तु वहां पर सम्यग्ज्ञान का स्वरूप नहीं बतलाया गया था। यहां पर प्रमाण का विषय तथा कार्य बतलाया गया है। प्रमाण का विषय सकल वस्तु है अर्थात् वस्तु का पूरण अंश है और नय का विषय विकल वस्तु धर्थवा वस्तु का एकांश है। अर्थात् सकलादेश प्रमाण और विकलादेश नय है। वस्तुस्वरूप का यथार्थ निश्चय करना प्रमाण का कार्य है।

प्रमाण के भेद—

तद्द्वेषा सविकल्पेतरभेदात् ॥ १७८ ॥

सूत्रार्थ—सविकल्प और निविकल्प के भेद से प्रमाण दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—सूत्र ३५ में, प्रत्यक्ष और परोक्ष—प्रमाण के ऐसे दो भेद किये गये थे। यहाँ पर सविकल्प और निविकल्प की अपेक्षा प्रमाण के दो भेद किये गये हैं। जिस ज्ञान में प्रथलपूर्वक, विचारपूर्वक या इच्छापूर्वक पदार्थ को जानने के लिये उपयोग लगाना पड़े वह सविकल्प है। इससे विपरीत निविकल्प है।

सविकल्प ज्ञान का लक्षण तथा भेद—

**सविकल्पं मानसं तच्चतुर्विधम् मतिश्रुतावधिमनःपर्यय-
रूपम् ॥१७६॥**

सूत्रार्थ—मानस अर्थात् विचार या इच्छा सहित ज्ञान सविकल्प ज्ञान है। वह चार प्रकार का है—१. मतिज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनः-पर्ययज्ञान।

विशेषार्थ—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का कथन सूत्र ३८ में और अवधि, मनःपर्यय ज्ञान का कथन सूत्र ३६ में हो चुका है। ये चारों ज्ञान विचार-सहित या इच्छा सहित होते हैं इसलिये इनको सविकल्प कहा है। यहाँ पर मन का अर्थ इच्छा या विचार है।

निविकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानम् ॥१८०॥

सूत्रार्थ—मन रहित अथवा विचार या इच्छा रहित ज्ञान निविकल्प ज्ञान है। केवलज्ञान निविकल्प है।

विशेषार्थ—सूत्र ३७ में केवलज्ञान का कथन है। सूत्र १७६ व १८० में विकल्प का अर्थ मन किया है। यहाँ मन से अभिप्राय इच्छा या विचार का है। केवलज्ञान इच्छा या विचार रहित होता है, अतः केवलज्ञान को मनोरहित अर्थात् निविकल्प कहा गया है।

॥ इस प्रकार प्रमाण व्युत्पत्ति का कथन हुआ ॥

नय का लक्षण व भेद

नय का लक्षण—

**प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थेकौशो नयः, श्रुतविकल्पो वा,
ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन्
स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः ॥१८१॥**

सूत्रार्थ—प्रमाण के द्वारा सम्यक् प्रकार प्रहरण की गई वस्तु के एक घर्म अथवि अंश को प्रहरण करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। अथवा, श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं। ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं। अथवा, जो नाना स्वभावों से हटाकर किसी एक स्वभाव में वस्तु को प्राप्त करता है वह नय है।

विशेषार्थ—सूत्र १६ में भी प्रमाण के अवयव को नय कहा है। यहाँ पर नय का लक्षण नाना प्रकार से कहा है। सर्वार्थसिद्धि में नय का लक्षण इस प्रकार कहा है—

**‘तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्यणात्साध्यविशेषरथ यथा-
त्यप्रापण प्रबणः प्रयोगो नयः ।’**

[सर्वार्थसिद्धि १/३३]

अर्थ—अनेकान्तात्मक वस्तु में विरोध के बिना हेतु की मुख्यता से साध्य-विशेष की यथार्थता के प्राप्त कराने में समर्थ प्रयोग को नय कहते हैं।

स द्वेषा सविकल्पनिविकल्पभेदात् ॥१८२॥

सूत्रार्थ—सविकल्प और निविकल्प के भेद से नय भी दो प्रकार है।

विशेषार्थ—नय दो प्रकार का है दुर्नय और सुनय। सापेक्ष अर्थात् सविकल्प सुनय है और निरपेक्ष, निविकल्प दुर्नय है।

[स्वामिकार्तिकेय गाथा २६६ पृ० १६०]

॥ इस प्रकार नय की अनुवासि का कथन हुआ ॥

निक्षेप को व्युत्पत्ति

**प्रमाणययोनिक्षेपणं आरोपणं निक्षेपः, स नामस्थापनादि-
भेदेन चतुर्विधः ॥ १८३ ॥**

सूत्रार्थ—प्रमाण और नय के विषय में यथायोग्य नामादिरूप से पदार्थ निक्षेपण करना अर्थात् आरोपण करना निक्षेप है। वह निक्षेप नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से चार प्रकार का है।

विशेषार्थ—नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप से जीवादि द्रव्यों का न्यास अर्थात् निक्षेप होता है। (१) संज्ञा के अनुसार गुणरहित वस्तु में व्यवहार के लिये अपनी इच्छानुसार की गई संज्ञा को नाम निक्षेप कहते हैं। (२) कष्ठ-कर्म, पुस्तकर्म, चित्रकर्म और प्रक्षनिक्षेप आदि में ‘यह वह है’ इस प्रकार स्थापित करने को स्थापना निक्षेप कहते हैं। (३) जो गुणों के द्वारा प्राप्त हुआ था या गुणों को प्राप्त हुआ था अथवा जो गुणों के द्वारा प्राप्त किया जायगा या गुणों को प्राप्त होगा वह द्रव्यनिक्षेप है। (४) वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य भाव निक्षेप है। खुलासा इस प्रकार है—नाम जीव, स्थापना जीव, द्रव्य जीव और भाव जीव—इस प्रकार जीव पदार्थ का न्यास चार प्रकार से किया जाता है।^१ कहा भी है—

णामजिणा जिणणाम, ठबणजिणा पुण जिणांदपडिमाओ ।

दब्वंजिणा जिणनीवा भावजिणा समवसरणत्या ॥

अर्थ—जिन नाम जिन का नामनिक्षेप है। जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा जिन की स्थापना निक्षेप है। जिनेन्द्र का जीव जिन का द्रव्यनिक्षेप है। समवशरण में स्थित जिनेन्द्र जिन का भावनिक्षेप है।

धर्म में श्री वीरसेन आचार्य ने इन निक्षेप का स्वरूप निम्न प्रकार कहा है—

नाम निक्षेप—अन्य निमित्तों की अपेक्षा रहित किसी की ‘बंगल’ ऐसी

संज्ञा करने को नाम मंगल कहते हैं। नाम निषेप में संज्ञा के चार निमित्त होते हैं—जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया। उन चार निमित्तों में से तदभव और साहश्य लक्षण वाले सामान्य को जाति कहते हैं। द्रव्यनिमित्त के दो भेद हैं, संयोग द्रव्य और समवाय द्रव्य। उनमें अलग अलग सत्ता रखने वाले द्रव्यों के मेल से जो पैदा हो, उसे संयोग-द्रव्य कहते हैं। जो द्रव्य में समवेत हो उसे समवाय द्रव्य कहते हैं। जो पर्यायादिक से परस्पर विरुद्ध हो अथवा अविरुद्ध हो, उसे गुण कहते हैं। परिस्पन्द को क्रिया कहते हैं।

इन चार प्रकार के निमित्तों में से गौ, मनुष्य, घट, पट आदि जाति निमित्तक नाम हैं। दण्डी, खत्री इत्यादि संयोगद्रव्यनिमित्तक नाम हैं क्योंकि स्वतन्त्र सत्ता रखने वाले दण्ड आदि के संयोग से दण्डी आदि नाम व्यवहार में आते हैं। गलगण्ड, काना, कुबड़ा इत्यादि समवाय-द्रव्य-निमित्तक नाम हैं, क्योंकि जिसके लिये 'गलगण्ड' इस नाम का उपयोग किया गया है उससे, गले का गण्ड भिन्न सत्ता वाला द्रव्य नहीं है। कुषण, रुधिर इत्यादि गुण-निमित्तक नाम हैं, क्योंकि कुषण आदि गुणों के निमित्त से उन गुण वाले द्रव्यों में थे नाम व्यवहार में आते हैं। गायक, नर्तक इत्यादि क्रिया-निमित्तक नाम हैं, क्योंकि गाना, नाचना आदि क्रियाओं के निमित्त से गायक, नर्तक आदि नाम व्यवहार में आते हैं। इस तरह जाति आदि इन चार निमित्तों को छोड़कर संज्ञा की प्रवृत्ति में अन्य कोई निमित्त नहीं है।^१

स्थापना निषेप—किसी नाम को धारण करने वाले दूसरे पदार्थ की 'वह यह है' इस प्रकार स्थापना करने को स्थापना निषेप कहते हैं। स्थापना निषेप दो प्रकार का है—सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना। जिस वस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार को धारण करने वाली वस्तु में सद्भावस्थापना समझना चाहिये तथा जिस वस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार से रहित वस्तु में असद्भाव स्थापना समझना चाहिये।^२

द्रव्य निषेप—आगे होने वाली पर्याय को गहण करने के सन्मुख हुए

१. घबल पु० १ पृ० १७-१८ २. घबल पु० १ पृ० १६

द्रव्य को (उस पर्याय की अपेक्षा) द्रव्यनिक्षेप कहते हैं अयतः वर्तमान पर्याय की विवेका से रहित द्रव्य को द्रव्यनिक्षेप कहते हैं ।^१

[नोट—इसके भेद प्रतिभेदों का विशेष कथन घबल पु० १ में है]

भाव निक्षेप—वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य को भाव कहते हैं ।^२

[नोट—इसके भेदों का विशेष कथन घबल पु० १ में है]

॥ इस प्रकार निक्षेप की व्युत्पत्ति का कथन हुआ ॥



नयों के भेदों की व्युत्पत्ति

द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः ॥ १८४ ॥

सूत्रार्थ—द्रव्य जिसका प्रयोजन (विषय) है वह द्रव्यार्थिक नय है ।

विशेषार्थ—सूत्र ४१ के विशेषार्थ में इसका विशेष कथन है ।

शुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धद्रव्यार्थिकः ॥ १८५ ॥

सूत्रार्थ—शुद्धद्रव्य जिसका प्रयोजन है वह शुद्धद्रव्यार्थिक नय है ।

विशेषार्थ—सूत्र ४७, ४८, ४९ में शुद्धद्रव्यार्थिक नय के भेदों का कथन है । धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य ये चारों द्रव्य तो नित्यशुद्ध हैं । कर्मबंध के कारण संसारीजीव अशुद्ध हैं, और कर्मबंध से मुक्त हो जाने पर सिद्ध जीव शुद्ध हैं । इसी प्रकार बंध के कारण द्वि-ग्रणक आदि स्कंध-पुद्गलद्रव्य अशुद्ध हैं और बंध रहित पुद्गल परमाणु शुद्ध पुद्गल द्रव्य है । कहा भी है—

‘सिद्धरूपः स्वभावपर्यायः, नरनारकादिरूपा विभावपर्यायाः ।... शुद्धपरमाणुरूपेणावस्थानं स्वभावद्रव्यपर्यायः ॥ द्वयसुकादिस्कंचरूपेण परिणमनं विभावद्रव्यपर्यायाः ।’ [पञ्चास्तिकाय गाथा ५ टीका]

१. घबल पु० १ पृ० २० २. घबल पु० १ पृ० २८

वृत्तः शुद्धद्रव्याधिक नय के विषय धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, सिद्ध जीवद्रव्य और पुद्गलपरमाणु हैं ।

अशुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति अशुद्धद्रव्याधिकः ॥ १८६ ॥

सूत्रार्थ—अशुद्धद्रव्य जिसका प्रयोजन है वह अशुद्धद्रव्याधिक नय है ।

विशेषार्थ—द्वयरात्रि आदि स्कंघ रूप अशुद्ध पुद्गलद्रव्य और नर, नारक आदि संसारी जीवरूप अशुद्ध जीवद्रव्य इस अशुद्ध द्रव्याधिक नय के विषय हैं । सूत्र ५०-५१-५२ में अशुद्ध द्रव्याधिक नय के भेदों का कथन है ।

सामान्यगुणादयोऽन्वयरूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति व्यवस्थापयतीति अन्वयद्रव्याधिकः ॥ १८७ ॥

सूत्रार्थ—जो नय सामान्य गुण, पर्याय, स्वभाव को—यह द्रव्य है, यह द्रव्य है, इस प्रकार अन्वयरूप से द्रव्य की व्यवस्था करता है वह अन्वयद्रव्याधिकनय है ।

विशेषार्थ—स्वभावयुक्त भी द्रव्य है, गुणयुक्त भी द्रव्य है, पर्याययुक्त भी द्रव्य है—ऐसा कहा जाता है । इसलिये द्रव्यत्व के कारण कहीं पर भी जाति नहीं आती तथापि जो नय स्वभाव-विभाव रूप से अस्तिस्वभाव, नास्ति-स्वभाव, नित्यस्वभाव इत्यादि अनेक स्वभावों को एकत्रितरूप से प्राप्त करके भिन्न-भिन्न नामों की व्यवस्था करता है, वह अन्वयद्रव्याधिकनय है ।

इस नय का विशद कथन सूत्र ५३ के विशेषार्थ में किया जा चुका है ।

स्वद्रव्यादिग्रहणामर्थः प्रयोजनमस्येति स्वद्रव्यादिग्राहकः ॥ १८८ ॥

सूत्रार्थ—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव अर्थात् स्वचतुष्टय को ग्रहण करना जिसका प्रयोजन है वह स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्याधिक नय है ।

विशेषार्थ—सूत्र ५४ में इसका विशेष कथन हो चुका है ।

परद्रव्यादिग्रहणामर्थः प्रयोजनमस्येति परद्रव्यादिग्राहकः ॥ १८९ ॥

सूत्रार्थ—परद्वय, परकेव, परकाल, परस्वभाव अर्थात् परचतुष्टय को प्रहरण करना जिसका प्रयोजन है वह परद्वयादिशाहक द्रव्यार्थिक नय है ।

विशेषार्थ—इसका विशेष कथन सूत्र ५५ में है ।

परमभावग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभावग्राहकः

॥ १६० ॥

सूत्रार्थ—परमभावग्रहण करना जिसका प्रयोजन है वह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय है ।

विशेषार्थ—इस नय का विशेष कथन सूत्र ५६ में है ।

॥ इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय की व्युत्पत्ति का कथन हुआ ॥

पर्यायार्थिक नय का कथन

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः ॥ १६१ ॥

सूत्रार्थ—पर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय है ।

विशेषार्थ—सूत्र ४१ के विशेषार्थ में इसका विशेष कथन है ।

अनादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यानादिनित्य-पर्यायार्थिकः ॥ १६२ ॥

सूत्रार्थ—अनादि - नित्य पर्याय जिसका प्रयोजन है वह अनादि-नित्य पर्यायार्थिक नय है ।

विशेषार्थ—मेरु आदि, पुद्गल द्रव्य की अनादि-नित्य पर्याय है । इस नय का विशेष कथन सूत्र ५८ में है ।

सादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्यपर्यायार्थिकः ॥ १६३ ॥

सूत्रार्थ—सादि-नित्य पर्याय जिसका प्रयोजन है, वह सादि-नित्य पर्यायार्थिक नय है।

विशेषार्थ—जीव की सिद्ध पर्याय सादि है किन्तु नित्य है। इस नय का विशेष कथन सूत्र ५६ में है।

शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः ॥१६४॥

सूत्रार्थ—शुद्धपर्याय जिसका प्रयोजन है, वह शुद्धपर्यायार्थिक नय है।

विशेषार्थ—शुद्ध द्रव्य की पर्याय शुद्ध होती है। घर्मद्रव्य, माकाशद्रव्य, कालद्रव्य, सिद्धजीवद्रव्य और परमाणुरूप पुद्गलद्रव्य शुद्ध द्रव्य हैं अतः इनकी पर्यायें भी शुद्ध हैं, जो शुद्धपर्यायार्थिक नय का विषय है। शुद्धपर्यायार्थिक नय के नित्य, अनित्य की अपेक्षा दो भेद हैं जिनका कथन सूत्र ६२ व ६० में है।

अशुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धपर्यायार्थिकः

॥१६५॥

सूत्रार्थ—अशुद्ध पर्याय जिसका प्रयोजन है, वह अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

विशेषार्थ—पुद्गल की दृष्टिकोण आदि स्वरूप पर्यायें और कर्मोपाधि सहित जीव की नर, नारक आदि पर्यायें अशुद्ध द्रव्यपर्यायें हैं। इन्हीं की अशुद्ध गुणपर्यायों सहित ये सब अशुद्ध पर्यायें इस नय का विषय हैं।

॥ इस प्रकार पर्यायार्थिक नय को अनुसरति का कथन हुआ ॥

नैकं गच्छतीति निगमः, निगमोविकल्पस्तत्रभवो नैगमः

॥१६६॥

सूत्रार्थ—जो एक को प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनेक को प्राप्त होता है वह निगम है। निगम का अर्थ विकल्प है। जो विकल्प को अहण करे वह नैगम नय है।

विशेषार्थ—इस नय का कथन सूत्र ४१ के विशेषार्थ में है। इसके भेदों का कथन सूत्र ६४ से ६७ तक है।

अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति संग्रहः ॥१६७॥

सूत्रार्थ—जो नय अभेद रूप से समूर्ण वस्तु समूह को विषय करता है, वह संग्रह नय है।

विशेषार्थ—इस नय का विशेष कथन सूत्र ४१ के विशेषार्थ में है। इसके भेदों का कथन सूत्र ६८ से ७० तक है।

संग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तुव्यवहित इति व्यवहारः ॥१६८॥

सूत्रार्थ—संग्रह नय से ग्रहण किये हुए पदार्थ को भेदरूप से व्यवहार करता है, ग्रहण करता है, वह व्यवहार नय है।

विशेषार्थ—इसका विशेष कथन सूत्र ४१ के विशेषार्थ में है तथा इस नय के भेदों का कथन सूत्र ७१ व ७२ में है।

ऋचु प्रांजलं सूत्रयतीति ऋचुसूत्रः ॥१६९॥

सूत्रार्थ—जो नय ऋचु अर्थात् अवक, सरल को सूचित अर्थात् ग्रहण करता है वह ऋचुसूत्र नय है।

विशेषार्थ—इसका विशेष कथन सूत्र ४१ के विशेषार्थ में है तथा भेदों का कथन सूत्र ७३ से ७५ में है।

शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः ॥२००॥

सूत्रार्थ—जो नय शब्द अर्थात् व्याकरण से प्रकृति और प्रत्यय के द्वारा सिद्ध अर्थात् निष्पन्न शब्द को मुख्यकर विषय करता है वह शब्द नय है।

विशेषार्थ—इस नय का कथन सूत्र ४१ के विशेषार्थ में तथा सूत्र ७७ में है।

परस्परेणाभिरुद्धाः समभिरुद्धाः । शब्दभेदात्यर्थभेदोनास्तः । यथा शक्त इन्द्रः पुरन्दर इत्यादयः समभिरुद्धाः ॥२०१॥

सूत्रार्थ—परस्पर में अभिरुद्ध शब्दों को ग्रहण करने वाला नय समभिरुद्ध नय है । इस नय के विषय में शब्द-भेद होने पर भी अर्थ-भेद नहीं है । जैसे— शक्त, इन्द्र, पुरन्दर ये तीनों ही शब्द देवराज के पर्यायवाची होने से देवराज में ही अभिरुद्ध हैं ।

विशेषार्थ—इस नय का विशेष कथन सूत्र ४१ के विशेषार्थ में है तथा सूत्र ७८ में भी है ।

एवं क्रियाप्रधानत्वेन भूयत इत्येवंभूतः ॥२०२॥

सूत्रार्थ—जिस नय में वर्तमान क्रिया की प्रधानता होती है, वह एवंभूत नय है ।

विशेषार्थ—इसका विशेष कथन सूत्र ४१ के विशेषार्थ में है तथा सूत्र ७६ में भी इस नय का कथन है ।

‘चिडिया ग्राम में, वृक्ष में, झाड़ी में, जाला में, शाला के एक भाग में, अपने शरीर में तथा कण्ठ में चहचहाती है’—इस दृष्टान्त में कहे गये सात स्थान सूक्ष्म, सूक्ष्म होते गये हैं । इसी प्रकार नैगमादि सात नयों का विषय भी सूक्ष्म, सूक्ष्म होता गया है । धबल पु० ७ पृ० २८-२९ पर कहा भी है—

कं पि गर्व दट्टूण य पावजणसमागमं करेमाणं ।

रोगमणएण भण्णेषु गोरइओ एस पुरिसो त्ति ॥१॥

ववहारस्स दु वयणं जइया कोइंड-कंडगयहत्यो ।

भमइ मए मग्गतो तइया सो होइ गोरइओ ॥२॥

उज्जुसुदस्स दु वयणं जइआ हरठाइदूण ठाणम्भि ।

आहणदि मए पावो तइया सो होइ गोरइओ ॥३॥

सहणयस्स दु वयणं जइया पाणेहि मोइदो जंतू ।

तइया सो गोरइयो दिंसाक्ष्मेण संजुक्तो ॥४॥

वयरणं तु समभिरुद्धं णारयकम्मरस वंचनो जइया ।
 तइया सो गोरइओ णारयकम्मेण संजुत्तो ॥३॥
 णिरयगहं संपत्तो जइया अगुहवइ णारयं दुक्खं ।
 तइया सो गोरइओ एवंभूदो णओ भणदि ॥४॥

अर्थ—किसी मनुष्य को पापी जीवों का समाधान करते हुए देखकर नैगम नय से कहा जाता है कि वह पुरुष नारकी है । [जब वह मनुष्य प्राणिवध करने का विचार कर सामग्री का संग्रह करता है तब वह संग्रह नय से नारकी है ।] जब कोई मनुष्य हाय में घनुष और बाण लिये मृगों की खोज में भटकता फिरता है तब वह व्यवहार नय से नारकी कहलाता है । जब आखेट-स्थान पर बैठकर पापी, मृगों पर प्राप्तात करता है तब वह ऋचुसूत्र नय से नारकी है । जब जन्तु प्राणों से विमुक्त कर दिया जाय तभी वह प्राप्तात करने वाला, हिसा कर्म से संयुक्त मनुष्य, शब्द नय से नारकी है । जब मनुष्य नारक कर्म का बंधक होकर नारक कर्म से संयुक्त हो जाय तब वह समभिरुद्ध नय से नारकी है । जब वही मनुष्य नारक भृति को पहुँच कर नरक के दुःख मनुभव करने लगता है तब वह एवंभूत नय से नारकी है ।

शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ ॥२०३॥

सूत्रार्थ—शुद्धनिश्चय नय और अशुद्धनिश्चय नय ये दोनों द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं ।

निश्चयनय का समरण—

अभेदानुपचारितया वस्तुनिश्चीयत इति निश्चयः ॥२०४॥

सूत्रार्थ—अभेद और अनुपचारता से जो नय वस्तु का निश्चय करे वह निश्चय नय है ।

विशेषार्थ—गुण-गुणी पर्याय-पर्यायी का भेद अथवा द्रव्य में पर्याय या गुण-भेद निश्चय नय का विषय नहीं है, जैसा कि समयसार गाया ६ व ७ में कहा गया है । मन्य द्रव्य के सम्बन्ध से द्रव्य में उपचरित होने वाले धर्म

भी निश्चय नय का विषय नहीं है। अतः इस निश्चय नय का विषय, भेद और उपचार की अपेक्षा से रहित अखण्ड द्रव्य है। गाया ४ में कहा भी गया है कि निश्चय नय का हेतु द्रव्याधिक नय है।

व्यवहारनय का लक्षण—

भेदोपचारितया वस्तुव्यवहित इति व्यवहारः ॥२०५॥

सूत्रार्थ—जो नय भेद और उपचार से वस्तु का व्यवहार करता है, वह व्यवहारनय है।

विशेषार्थ—गुण-गुणी का भेद करके या पर्याय-पर्यायी का भेद करके जो वस्तु को ग्रहण करता है वह व्यवहारनय है। जैसे—जीव के ज्ञान, दर्शन आदि गुण तथा वर, नारक आदि पर्यायें। पुद्गल के मूर्तिक गुण के जीव में बतलाना और जीव के चेतन गुण को पुद्गल में बतलाना इस प्रकार उपचार करके वस्तु को ग्रहण करता व्यवहारनय का विषय है। गाया ४ में कहा गया है कि व्यवहारनय का हेतु पर्यायाधिक नय है।

यह भेद सर्वथा असत्य भी नहीं है। यदि इसको सर्वथा असत्य मान लिया जाय तो आकाश के लोकाकाश और अलोकाकाश ऐसे भेद सम्भव नहीं हैं तथा प्रत्यक्ष के विषयभूत जीव में मनुष्य, तिर्यच आदि पर्यायों की अपेक्षा भेद भी सम्भव नहीं होगा तथा गुण-गुणी आदि में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा भेद सिद्ध नहीं होगा।

यदि उपचार को सर्वथा असत्य मान लिया जाय तो सिद्ध भगवान के सर्वज्ञता का लोप हो जायगा, जीव में मूर्त्त्व के अभाव में संसार का लोप हो जायगा। ऐसा सूत्र १४३ व १४४ में कहा गया है।

अतः व्यवहार का विषय भी यथार्थ है।

सद्भूत व्यवहारनय का लक्षण—

गुणगुणिनोः संशुदिभेदात् भेदकः सद्भूतव्यवहारः

॥२०६॥

सूत्रार्थ— संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन के भेद से जो नव गुण-गुणी में भेद करता है वह सद्भूत व्यवहारनय है।

विशेषार्थ— सूत्र ४४ के विशेषार्थ में इसका विशेष कथन है और भेदों का कथन सूत्र ८१-८२-८३ में है।

असद्भूत व्यवहारनय का लक्षण—

अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणमसद्भूतव्यवहारः ॥२०७॥

सूत्रार्थ— अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म (सत्त्वाद) अन्यत्र व्याप्तेप (निक्षेप) करने वाला असद्भूत व्यवहारनय है।

विशेषार्थ— इसका विशेष कथन सूत्र ४४ के विशेषार्थ में है और इसके भेदों का कथन सूत्र ८४ से ८७ तक है।

उपचरितासद्भूत व्यवहारनय का लक्षण—

असद्भूतव्यवहार एवोपचारः, उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः ॥२०८॥

सूत्रार्थ— असद्भूत व्यवहार ही उपचार है, जो नव उपचार से भी उपचार करता है वह उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय है।

विशेषार्थ— उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय का विशेष कथन सूत्र ४४ के विशेषार्थ में है और इसके भेदों का कथन सूत्र ८८ से ९१ तक है।

सद्भूत व्यवहारनय का विषय—

गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः स्वभावस्वभाविनोः कारक-कारकिणोर्भेदः सद्भूतव्यवहारस्यार्थः ॥२०९॥

सूत्रार्थ— गुण-गुणी में, पर्याय-पर्यायी में, स्वभाव-स्वभावी में, कारक-कारकी में भेद करना सद्भूत व्यवहारनय का विषय है।

विशेषार्थ—इसका विशेष कथन सूत्र ४४ के विशेषार्थ में है तथा भेदों का कथन सूत्र ८१—८२—८३ में है ।

असद्भूत व्यवहारनय का विषय—

१. द्रव्ये द्रव्योपचारः, २. पर्याये पर्यायोपचारः, ३. गुणे गुणोपचारः, ४. द्रव्ये गुणोपचारः, ५. द्रव्ये पर्यायोपचारः, ६. गुणे द्रव्योपचारः, ७. गुणे पर्यायोपचारः, ८. पर्याये द्रव्योपचार इति नवविधोपचारः असद्भूतव्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः ॥२१०॥

सूत्रार्थ—१. द्रव्य में द्रव्य का उपचार, २. पर्याय में पर्याय का उपचार, ३. गुण में गुण का उपचार, ४. द्रव्य में गुण का उपचार, ५. द्रव्य में पर्याय का उपचार, ६. गुण में द्रव्य का उपचार, ७. गुण में पर्याय का उपचार, ८. पर्याय में द्रव्य का उपचार, ९. पर्याय में गुण का उपचार, ऐसे नौ प्रकार का उपचार असद्भूत व्यवहारनय का विषय है ।

विशेषार्थ—यद्यपि सूत्र ४४ के विशेषार्थ में इन नौ प्रकार के उपचारों का विशेष कथन है तथापि संस्कृत नम्बचक्र के पृ० ४५ के अनुसार कथन किया जाता है—

शरीरमधि यो जीवं प्राणिनो वदति स्फुटं ।

असद्भूतो विजातीयो ज्ञातव्यो मुनिवाक्यतः ॥१॥

अर्थ—प्राणी के शरीर को ही जीव कहना—यहाँ विजाति पुदगल द्रव्य में विजाति जीव द्रव्य का उपचार किया गया है । यह असद्भूतव्यवहार नय का विषय है ।

मूर्तमेवमिति ज्ञानं कर्मणा जनितं यतः ।

यदि नैव भवेन्मूर्तं मूर्तेन स्तुलितं कुतः ॥२॥

अर्थ—मतिज्ञान मूर्तिक है क्योंकि कर्मजनित है । यदि ज्ञान मूर्त न होता

तो मूर्तं पर्वार्थं से स्खलित क्यों होता । यह विजातीय गुण में विजातीय गुण का उपचार है जो असद्भूत व्यवहारनय का विषय है ।

प्रतिबिंबं समालोक्य यस्य चित्रादिषु स्थितं ।

तदेव तच्च यो अ॒था॒दसद्भूतो हु॒वाहतः ॥३॥

अर्थ—किसी के प्रतिबिंब को देखकर, जिसका वह चित्र हो उसको उस चित्ररूप बतलाना असद्भूतव्यवहार नय का उदाहरण है । यहाँ पर्याय में पर्याय का उपचार है ।

जीवाजीवमपि ज्ञेयं ज्ञानज्ञानस्य गोचरात् ।

उच्यते येन लोकेस्मिन् सोऽसद्भूतो निर्गच्छते ॥४॥

अर्थ—ज्ञान का विषय होने से जीव-अजीव-ज्ञेय ज्ञान है, लोक में ऐसा कहा जाता है । यह असद्भूतव्यवहार नय है । द्रव्य में गुण का उपचार किया गया है ।

असुरे॒कप्रदेशोपि ये॒नानेकप्रदेशकः ।

वाच्यो भवेदसद्भूतो व्यवहारः स भव्यते ॥५॥

अर्थ—जो नय एकप्रदेशी परमाणु को भी बहुप्रदेशी कहता है वह असद्भूत व्यवहारनय है । यहाँ द्रव्य में पर्याय का उपचार किया गया है ।

स्वजातीयगुणे द्रव्यं स्वजातेरुपचारतः ।

रूपं च द्रव्यमाख्याति इवेतः प्रसादको यथा ॥६॥

अर्थ—स्वजाति गुण में स्वजाति द्रव्य का उपचार । जैसे—सफेद महल । यहाँ पर रूप गुण में महल द्रव्य का उपचार किया गया है ।

ज्ञानमेव हि पर्यायं पर्याये परिणामिवत् ।

गुणोपचारपर्यायो व्यवहारो बदत्यसौ ॥७ ।

अर्थ—पर्याय में परिणामन करने वाले की तरह ज्ञान ही पर्याय है । यह गुण में पर्याय का उपचार है । यह असद्भूत व्यवहार नय का विषय है ।

उपचारो हि पर्याये येन द्रव्यस्य सूचयते ।

असद्भूतः समाख्यातः स्कंधेषि द्रव्यता यथा ॥८॥

अर्थ—पर्याय में द्रव्य का उपचार । जैसे—स्कंध भी द्रव्य है । यह भी असद्भूतव्यवहार नय है ।

यो हृष्ट्वा देहसंस्थानमाचष्टे रूपसुक्तम् ।

व्यवहारो हसद्भूतः स्वजातीयसंक्षकः ॥९॥

अर्थ—पर्याय में गुण का आरोप करना भी असद्भूत व्यवहार है । जैसे—
वेह के संस्थान को देखकर यह कहा जाता है कि यह उत्तम रूप है ।

इस प्रकार उपर्युक्त तीन प्रकार का उपचार भी असद्भूत व्यवहार नय
का विषय है ।

उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का कथन—

उपचारः पृथग् नयो नास्तीति न पृथक् कृतः ॥२११॥

सूत्रार्थ—उपचार पृथक् नय नहीं है अतः उसको पृथक् रूप से नय नहीं
कहा है ।

विशेषार्थ—व्यवहार नय के तीन भेद कहे हैं १. सद्भूत व्यवहार,
२. असद्भूत व्यवहार, ३ उपचरित असद्भूत व्यवहार । इस तीसरे भेद में
उपचार नय का अन्तर्भाव हो जाता है ।

मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते

॥२१२॥

अर्थ—मुख्य के अभाव में प्रयोजनवश या निमित्तवश उपचार की
प्रवृत्ति होती है ।

विशेषार्थ—बिलाव को सिंह कहना । यहाँ पर बिलाव और सिंह में
साहस्र सम्बन्ध है अतः सिंहरूप मुख्य के अभाव में सिंह को समझाने के लिये
बिलाव को सिंह कहा गया है । चूहे और सिंह में साहस्र सम्बन्ध नहीं है अतः

चुहे में सिंह का उपचार नहीं किया जाता है।

टिप्पणि अनुसार—यदि यहाँ कोई प्रश्न करे कि उपचार नय पृथक् वर्थों कहा गया, यह तो व्यवहारनय का ही भेद है इसलिये व्यवहारनय का ही कथन करना चाहिये था—तो इसका उत्तर दिया जाता है कि उपचार के कथन बिना, किसी भी एक कार्य की सिद्धि नहीं होती। जहाँ पर मुख्य वस्तु का अभाव हो, वहाँ पर प्रयोजन या निमित्त के उपलब्ध होने पर उपचार की प्रवृत्ति की जाती है। वह उपचार भी सम्बन्ध के बिना नहीं होता। इस प्रकार उपचरित असद्भूत व्यवहार नय की प्रवृत्ति होती है। इसलिये उपचरित नय भिन्न रूप से कही गई है। सूत्र ४४ के विशेषार्थ में भी इस नय का कथन है। इसके भेदों का कथन सूत्र ८८ से ६१ तक है।

सम्बन्ध का कथन—

सोऽपि सम्बन्धोऽविनाभावः, संश्लेषः सम्बन्धः, परिणाम-परिणामिसम्बन्धः, श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्धः, ज्ञानज्ञेयसम्बन्धः, चारित्रचर्यसम्बन्धश्चेत्यादि, सत्यार्थः असत्यार्थः सत्यासत्यार्थ-श्चेत्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयस्यार्थः ॥२१३॥

सूत्रार्थ—वह सम्बन्ध भी सत्यार्थ अर्थात् स्वजाति पदार्थों में, असत्यार्थ अर्थात् विजाति पदार्थों में तथा सत्यासत्यार्थ अर्थात् स्वजाति-विजाति, उभय पदार्थों में निम्न प्रकार का होता है—१. अविनाभावसम्बन्ध, २. संश्लेष सम्बन्ध, ३. परिणामपरिणामिसम्बन्ध, ४. श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्ध, ५. ज्ञानज्ञेय-सम्बन्ध, ६. चारित्रचर्या सम्बन्ध इत्यादि।

विशेषार्थ—इस नय का कथन सूत्र ८८ में भी है। इत्यादि से निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध, स्वस्वामी सम्बन्ध, वाच्य-वाचक सम्बन्ध, प्रमाण-प्रमेय सम्बन्ध, बंध्य-बंधक सम्बन्ध, बद्ध-धातक सम्बन्ध आदि को भी ग्रहण कर लेना चाहिये। ये सम्बन्ध यथार्थ हैं। यदि इनको यथार्थ न माना जाये तो संसार का, मोक्ष का, मोक्ष-मार्ग का, ज्ञान का और ज्ञेयों का, प्रमाण और प्रमेयों अर्थात् द्रव्यों का भी अभाव हो जायगा। सर्वज्ञ का भी अभाव हो

जायगा । तत्त्वार्थं सूत्र में कहा गया है—

‘तत्त्वार्थेरुद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥१/२॥ असदभिदानमनुतम् ॥७/१४॥ अदत्तादानं स्तेषम् ॥७/१५॥ मैथुनमब्रह्मा ॥७/१६॥

जीव, अजीव, आत्मव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्त्वों का अद्धान सम्यग्दर्शन है जो मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है । यदि इन सात तत्त्वों के साथ अद्धान-अद्धेय सम्बन्ध यथार्थं न माना जाय तो सम्यग्दर्शन के लक्षण का अभाव हो जायगा और लक्षण के अभाव में लक्ष्य रूप सम्यग्दर्शन का अभाव हो जायगा । सम्यग्दर्शन के अभाव में मोक्षमार्ग का भी अभाव हो जायगा ।

यदि बंध्य बंचक सम्बन्ध को यथार्थं न माना जाय तो बंध तत्त्व का अभाव हो जायगा । बंध के अभाव में संसार व निर्जरा तत्त्व और मोक्ष तत्त्व का भी अभाव हो जायगा, क्योंकि बंध अवस्था का नाम संसार है, बंधे हुए कर्मों का एक देश भड़ना निर्जरा है, तथा बंध से मुक्त होने का नाम मोक्ष है । वृहद्ब्रह्मसंग्रह गाया ५७ की टीका में कहा भी है—

मुक्तश्चेत् प्राकूभवेद् बन्धो नो बन्धो मोक्षनं कथम् ।

अबंधे मोक्षनं नैव मुक्त्वेर्थो निरर्थकः ॥

अर्थ—यदि जीव मुक्त है तो पहले इस जीव के बंध अवश्य होना चाहिये, यदि बंध न हो तो मोक्ष कैसे हो सकता है ?

यदि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध यथार्थं न हो तो ‘सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य’ यह सूत्र निरर्थक हो जायगा और इस सूत्र के निरर्थक हो जाने पर सर्वज्ञ का अभाव हो जायगा । ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के अभाव में पदार्थों का ज्ञान नहीं हो सकेगा और द्रव्यों में से ‘प्रमेयत्व’ गुण का अभाव हो जायगा । ज्ञेय व प्रमेय के अभाव में ज्ञान व प्रमाण का भी अभाव हो जायगा ।

यदि व्रात्य वाचक सम्बन्ध को यथार्थं न माना जावे तो ‘असदभिदानमनुतम्’ सूत्र निरर्थक हो जायगा । अथवा मोक्षमार्ग के उपदेश तथा

मोक्षमार्ग का ही अभाव हो जायगा । धवल पु० १ पृ० १० पर कहा है—

शब्दात्पदप्रसिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति ।

अर्थात् तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः ॥

अर्थ—शब्द से पद की सिद्धि होती है, पद की सिद्धि से उसके अर्थ का निर्णय होता है, अर्थ-निर्णय से तत्त्वज्ञान होता है और तत्त्वज्ञान से परम कल्याण होता है ।

यदि स्वस्वाभी-सम्बन्ध यथार्थं न माना जाय तो ‘अदत्तादानं स्तेयम्’ यह सूत्र निरर्थक हो जायगा, क्योंकि जब कोई स्वाभी ही नहीं तो आहारादिक दान देने का किसी को अधिकार भी नहीं रहेगा । अत दान, दातार, देय और पात्र सभी का लोप हो जायगा । इससे मोक्षमार्ग का भी अभाव हो जायगा ।

पति-पत्नी सम्बन्ध यथार्थं न माना जाय तो स्वदारासन्तोष व्रत तथा परस्त्री-त्याग व्रत का अभाव हो जायगा ।

इस प्रकार उपचरित असद्भूत-व्यवहारनय का विषय यथार्थ है, सर्वथा अयथार्थ नहीं है । यदि सर्वथा, एकान्त से अनुपचरित को यथार्थ माना जाय और उपचरित को अयथार्थ मानकर छोड़ दिया जाय तो परज्ञता का विरोध हो जायगा, ऐसा सूत्र १४६ में कहा है ।

॥ इस प्रकार आगम नय का निरूपण हुआ ॥

अध्यात्म भाषा से नयों का कथन

पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते ॥२१४॥

सूत्रार्थ—फिर भी अध्यात्म-भाषा से नयों का कथन करते हैं ।

तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च ॥२१५॥

सूत्रार्थ—नयों के मूल भेद दो हैं—एक निश्चय नय और दूसरा व्यवहार नय ।

तत्र निष्कृतयोऽस्तेऽक्षिण्यो, चरहारो भेदविषयः ॥२१६॥

सूत्रार्थ—निश्चयं नय का विषय अभेद है। व्यवहार नय का विषय भेद है।

विशेषार्थ—गुण और गुणी में तथा पर्याय-पर्यायी आदि में भेद न करके, जो नय वस्तु को ग्रहण करता है वह निश्चय नय है। गुण-गुणी के भेद द्वारा अथवा पर्याय-पर्यायी के भेद द्वारा, जो नय वस्तु को ग्रहण करता है वह व्यवहार नय है। गाथा ४ में कहा गया है कि निश्चय नय का हेतु द्रव्याधिक नय है और व्यवहार नय का हेतु पर्यायाधिक नय है।

तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोऽशुद्ध निश्चयश्च

112891

सूत्रार्थ—उनमें से निश्चय नय दो प्रकार का है—१. सुद्धनिश्चय,
२. असुद्धनिश्चय।

विशेषार्थ—शुद्धनिश्चय नय का विषय शुद्धप्रब्ल्य है। अशुद्धनिश्चय नय का विषय अशुद्ध प्रब्ल्य है।

तत्र निरूपाधिकगुणगुण्यभेद विषयकः शुद्धनिश्चयो यथा
केवलज्ञानादयो जीव इति ॥२१८॥

सूत्रार्थ—उनमें से जो नय कर्मजनित विकार से रहित गुण और गुणी को अभेद रूप से प्रहरण करता है, वह शुद्धनिश्चय नय है। जैसे—केवलज्ञान आदि स्वरूप जीव है। अर्थात् जीव केवलज्ञानमधी है, क्योंकि ज्ञान जीव-स्वरूप है।

विशेषार्थ—इस शुद्धनिश्चय तथा की अपेक्षा जीव के न बंध है, न मोक्ष है और न गुहास्थान आदि है।

‘बंधश्च शुद्धनिश्चयनयेन नास्ति तथा बंधपूर्वको मोक्षोऽपि ।
यदि पुनः शुद्धनिश्चयेन बंधो भवति तदा सर्वदैव बंध एव, मोक्षो
नास्ति ।’ [वृहद्ब्रह्मसंग्रह गाथा ५७ टीका]

अर्थ—शुद्धनिश्चय नय की अपेक्षा बंध है ही नहीं। इसी प्रकार शुद्धनिश्चय नय की अपेक्षा बंधपूर्वक मोक्ष भी नहीं है। यदि शुद्धनिश्चय नय की अपेक्षा बंध होते तो सदा ही बंध होता रहे, मोक्ष ही न हो।

एवं इति अप्यमन्तो ण पमत्तो जाणामो दु जो भावो ।

एवं भणाति सुद्धं णामो जो सो उ सो चेव ॥६॥

बवहारेणुवदिससइ णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणां ।

एवं णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥७॥

| समयसार]

अर्थत्—शुद्धनिश्चय नय की अपेक्षा जीव प्रभत्त (मिद्याद्विष्ट गुणस्थान से जपत्तसंयत गुणस्थान प्रद्विष्ट प्रकार अह गुणस्थान रूप) भी नहीं और अप्रभत्त (सातवें से चौदहवें गुणस्थान तक इन आठ गुणस्थान रूप) भी नहीं है। सद्गूरुत्व्यवहार नय से जीव के चारिक, दर्शन और ज्ञान कहे गये हैं। शुद्धनिश्चय नय से जीव के न ज्ञान है, न चारित्र है और न दर्शन है।

इस प्रकार का अभेद शुद्धनिश्चय नय का विषय है।

सोपाधिकविषयोऽशुद्धनिश्चयो यथा मतिज्ञानादयो जीव इति ॥२१६॥

सूत्रार्थ—जो नय कर्मजनित विकार सहित गुण और गुणी को अभेदरूप से ग्रहण करता है वह अशुद्धनिश्चय नय है। जैसे—मतिज्ञानादि स्वरूप जीव।

विशेषार्थ—अशुद्धनिश्चय नय संसारी जीव को गुण और गुणी में अभेद द्विष्ट से अहरण करता है, क्योंकि संसारी जीव कर्मजनित विकार सहित होता है। संसारी जीव में 'मतिज्ञान' ज्ञान गुण की विकारी अवस्था है। अतः निश्चयनय मतिज्ञान और संसारी जीव को अभेद रूप से ग्रहण करता है। जैसे—मतिज्ञानमयी जीव। क्योंकि, ज्ञान जीवस्वरूप है।

शुद्धनिश्चय नय की अपेक्षा अशुद्धनिश्चय नय भी व्यवहार है, ऐसा समयसार गायत्र ५७ टीका में कहा गया है—

'ननु वर्णादयो बहिरंगास्तत्र व्यवहारेण त्रीरनीरवत्संश्लेषसंबंधो

भवतु न चाभ्यंतराणां रागादीनां तप्राशुद्धनिश्चयेन भवितव्यमिति ? तैवं, द्रव्यकर्मबंधापेक्षया योसौ असद्भूतव्यवहारस्तदपेक्षया तारतम्य-शापनार्थं रागादीनामशुद्धनिश्चयो भवते । वस्तुतस्तु शुद्धनिश्चया-पेक्षया पुनरशुद्धनिश्चयोपि व्यवहार एवेति भावार्थः ॥५७॥'

अर्थात्—यह शंका की यही कि बण्डिदि तो अहिरंग हैं, इनकी साथ आत्मा का क्षीर-नीरवत् संश्लेष संबंध होते हैं किन्तु अभ्यन्तर में उत्पत्ति होने वाले रागादि का आत्मा के साथ व्यवहारनय से संश्लेष सम्बन्ध नहीं हो सकता, वयोंकि रागादि का सम्बन्ध अशुद्ध निश्चयनय से है ? आचार्य समाधान करते हैं कि ऐसा नहीं है, द्रव्यकर्म-लेव की अपेक्षा यह जो द्वादशूल व्यवहारनय है, उस व्यवहारनय की अपेक्षा तरतमता दिखलाने के लिये रागादि का सम्बन्ध अशुद्ध निश्चयनय से कह दिया गया । वास्तव में शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चयनय भी व्यवहार है ।

‘यद्यप्यशुद्धनिश्चयेन चेतनानि तथापि शुद्धनिश्चयेन नित्यं सर्व-कालमचेतनानि । अशुद्धनिश्चयस्तु वस्तुतो यद्यपि द्रव्यकर्मपेक्षया-भ्यंतररागादयश्चेतना इति मत्वा निश्चयसंज्ञां लभते तथापि शुद्ध-निश्चयापेक्षया व्यवहार एव । इति व्याख्यानं निश्चयव्यवहारनय विचारकाले सर्वत्र ज्ञातव्यं ।’ [समयसार गाथा ६८ टीका]

अर्थात्—रागादि यद्यपि अशुद्ध निश्चयनय से चेतन हैं तथापि शुद्ध निश्चयनय से तित्य सर्वकाल अचेतन हैं : यद्यपि द्रव्यकर्म की अपेक्षा आभ्यन्तर रागादि चेतन हैं ऐसा माना गया है और निश्चय संज्ञा को प्राप्त है तथापि शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा वस्तुतः अशुद्ध निश्चयनय व्यवहार ही है । निश्चयनय और व्यवहारनय के विचार काल में यह व्याख्यान सर्वत्र जान लेना चाहिये ।

‘द्रव्यकर्मादयचेतनानि भावकर्माणि च चेतनानि तथापि शुद्ध-निश्चयापेक्षया अचेतनान्येव । यतः कारणादशुद्धनिश्चयोपि शुद्ध-

निश्चयापेक्षया व्यवहार एव । अयमत्र भावार्थः । द्रव्यकर्मणां कर्तृत्वं भोक्तृत्वं चानुपचरितासदभूतव्यवहारेण रागादिभावकर्मणां चाशुद्धनिश्चयेन । स च शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहारेवेति ।'

[समयसार गाथा ११५ टीका]

अर्थ——द्रव्यकर्म अचेतन हैं, भावकर्म चेतन हैं तथापि शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा भावकर्म अचेतन हैं । इसलिये शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चयनय व्यवहार ही है । आत्मा द्रव्यकर्मों का कर्ता व भोक्ता है, यह अनुपचरित असदभूतव्यवहारनय का विषय है और रागादि का भोक्ता और कर्ता है, यह अशुद्धनिश्चय नय का विषय है । वह अशुद्धनिश्चय नय भी शुद्धनिश्चय नय की अपेक्षा व्यवहार ही है ।

अतः समयसार आदि ग्रन्थों में निश्चय और व्यवहार का यथार्थ अभिप्राय आनकर अर्थं करता चाहिये क्योंकि, कहीं-कहीं पर असदभूत व्यवहारनय की अपेक्षा सदभूतव्यवहार को भी निश्चय कह दिया गया है । जैसे, व्यवहार-षट्कारक असदभूतव्यवहार नय की अपेक्षा है और निश्चयषट्कारक सदभूत-व्यवहार नय की अपेक्षा है क्योंकि निश्चयनय में षट्कारक का भेद नहीं है ।

व्यवहारो द्विविधः सदभूतव्यवहारोऽसदभूतव्यवहारश्च

॥२२०॥

सूत्रार्थ——सदभूतव्यवहार नय और असदभूतव्यवहार नय के भेद से व्यवहारनय दो प्रकार का है ।

विशेषार्थ——एक सत्ता वाले पदार्थों को जो विषय करे वह सदभूत-व्यवहार नय है और भिन्न सत्ता वाले पदार्थों को जो विषय करे वह असदभूत-व्यवहार नय है ।

तत्रैकवस्तुविषयः सदभूतव्यवहारः ॥२२१॥

सूत्रार्थ——उनमें से एक वस्तु को विषय करने वाली सदभूतव्यवहार नय है ।

विशेषार्थ——जैसे वृक्ष एक है, उसमें लगी हुई शाखायें यद्यपि भिन्न हैं

तथापि वृक्ष ही हैं। उसी प्रकार सद्भूतव्यवहार नय गुण, गुणी का भेद कथन करती है। गुण-गुणी का संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद है किन्तु प्रदेशसत्ता भिन्न नहीं है इसलिये एक वस्तु है। उस एक वस्तु में गुण-गुणी का संज्ञादि की अपेक्षा भेद करना सद्भूतव्यवहार नय का विषय है। जैसे—जीव के ज्ञान, दर्शनादि।

भिन्नवस्तुविषयोऽसद्भूतव्यवहारः ॥२२२॥

सूत्रार्थ—भिन्न वस्तुओं को विषय करने वाला असद्भूतव्यवहार नय है।

विशेषार्थ—जैसे एक स्थान पर भेड़ें तिष्ठती हैं परन्तु पृथक् पृथक् हैं, इसी प्रकार भिन्न-भिन्न संसार वाले पदार्थों के सम्बन्ध को विषय करने वाला असद्भूतव्यवहार है। जैसे—ज्ञान ज्ञेय पदार्थों को जातता है। अर्थात् ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध, वाच्य-वाचक सम्बन्ध आदि सब सम्बन्ध असद्भूतव्यवहार नय के विषय हैं।

तत्र सद्भूतव्यवहारो द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात्

॥२२३॥

सूत्रार्थ—उपचरित और अनुपचरित के भेद से सद्भूतव्यवहार नय दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—सद्भूतव्यवहार नय के दो भेद हैं—उपचरित-सद्भूत-व्यवहार नय और अनुपचरित-सद्भूतव्यवहार नय। सूत्र २२४ व २२५ में कथा: इनका स्वरूप कहा जायगा।

तत्र सोपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयः उपचरितसद्भूतव्यवहारो, यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः ॥२२४॥

सूत्रार्थ—उनमें से, कर्मजनित विकार सहित गुण और गुणी के भेद को विषय करने वाला उपचरित-सद्भूतव्यवहारनय है। जैसे—जीव के मति-ज्ञानादिक गुण।

विशेषार्थ—अशुद्धव्य में गुण-गुणी का भेद कथन करने वाला उपचरित-

असद्भूतव्यवहार नय है। शुद्धद्रष्टव्य में गुण-गुणी का, प्रदेशत्व की अपेक्षा, अभेद कथन करना अशुद्धनिश्चय नय का विषय है, किन्तु संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद कथन करना उपचरित सद्भूतव्यवहार नय का विषय है। दोनों ही कथन अपनी अपनी अपेक्षा से वास्तविक हैं। इनमें से किसी का भी एकात्म ग्रहण करने से वस्तुस्वरूप का अभाव हो जायगा, क्योंकि वस्तु भेदाभेदात्मक, अनेकान्तमयी है।

निरूपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयोऽनुपचरितसद्भूतव्यवहारो,
यथा जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः ॥२२५॥

सूत्रार्थ—उपाधिरहित अर्थात् कर्मजनित विकार रहित जीव में गुण और गुणी के भेदरूप विषय को ग्रहण करने वाला अनुपचरित-सद्भूतव्यवहार है। जैसे जीव के केवलज्ञानादि गुण।

विशेषार्थ—शुद्ध गुण-गुणी में भेद कथन करना अनुपचरित-सद्भूतव्यवहार नय है। प्रदेशत्व की अपेक्षा शुद्ध गुण-गुणी में अभेद कथन करना शुद्धनिश्चय नय का विषय है किन्तु संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद कथन करना अनुपचरित-असद्भूतव्यवहार नय का विषय है। अपनी अपनी अपेक्षा दोनों ही कथन यथार्थ हैं। इनमें से किसी एक का भी एकात्म ग्रहण करने से वस्तुस्वरूप का लोप हो जायगा क्योंकि वस्तु भेदाभेदात्मक, अनेकान्तमयी है।

असद्भूतव्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात्

॥२२६॥

सूत्रार्थ—उपचरित और अनुपचरित के भेद से असद्भूतव्यवहार नय भी दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—असद्भूतव्यवहार नय के दो भेद हैं—(१) उपचरितासद्भूतव्यवहार नय, (२) अनुपचरितासद्भूतव्यवहार नय। इनका स्वरूप क्रमशः सूत्र २२७ व २२८ में कहा जायगा।

तत्र संश्लेषरहितवस्तुसम्बन्धविषय उपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देवदत्तस्य धनमिति ॥२२७॥

धूमार्थ—उनमें से संश्लेष सम्बन्ध रहेत, ऐसी भिन्न वस्तुओं का परस्पर में सम्बन्ध ग्रहण करना उपचरितासद्भूतव्यवहार नय का विषय है। जैसे— देवदत्त का धन ।

विशेषार्थ—देवदत्त भिन्न सत्ता वाला द्रव्य है और धन भिन्न सत्ता वाला द्रव्य है। इन दोनों का संश्लेष सम्बन्ध भी नहीं है। किन्तु, स्व-स्वामी सम्बन्ध है। देवदत्त धन का स्वामी है और धन उसका स्व है। देवदत्त को अधिकार है कि वह अपने धन को तीर्थ वन्दना, जिनभन्दिर-निर्माण तथा दान आदिक घर्म-कार्यों में व्यय करे या अपने भोगेषभोग में व्यय करे। देवदत्त के धन को व्यय करने का देवदत्त के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष को अधिकार नहीं है। देवदत्त के दिये बिना यदि देवदत्त के धन को कोई अन्य पुरुष ग्रहण करता है तो वह चोर है, क्योंकि 'अदत्तादानं स्तेयम्' ऐसा आर्थ-वाक्य है। इसी प्रकार ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध भी इस उपचरितासद्भूतव्यवहार नय का विषय है, क्योंकि ज्ञान का स्वचतुष्टय भिन्न है और ज्ञेय-द्रव्यों का स्वचतुष्टय भिन्न है। ज्ञान और ज्ञेय में संश्लेष सम्बन्ध भी नहीं है तथापि ज्ञान ज्ञेयों को जानता है और ज्ञेय ज्ञान के द्वारा जाने जाते हैं। अतः ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध यथार्थ है जो कि उपचरितासद्भूतव्यवहार नय का विषय है। यदि ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध यथार्थ न हो तो सर्वज्ञता का अभाव हो जायगा। इसी प्रकार अन्य सम्बन्धों के विषय में भी जानना चाहिये।

संश्लेषसहितवस्तुसम्बन्धविषयोऽनुपचरितासद्भूतव्यवहारो, यथा जीवस्य शारीरमिति ॥२२८॥

सूक्ष्मार्थ—संश्लेष सहित वस्तु के सम्बन्ध को विषय करने वाला अनुप-

चरितासदभूतव्यवहार नय है, जैसे जीव का शरीर इत्यादि ।

विशेषार्थ—यद्यपि जीव का स्वचतुष्टय भिन्न है और शरीर का स्वचतुष्टय भिन्न है, तथापि जीव और शरीर का संश्लेष सम्बन्ध है । जिस संश्लेष सम्बन्ध को धारणा करे है, संकोच या विस्तार होकर आत्मप्रदेश उस शरीर-शरीर को धारणा करे है, संकोच या विस्तार होकर आत्मप्रदेश उस शरीर-प्रमाण व आकाररूप हो जाय है । कहा भी है—

‘अगुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।’ [वृहद्ब्रह्मसंग्रह]

अर्थात्—संकोच तथा विस्तार से यह जीव अपने छोटे और बड़े शरीर के प्रमाण रहता है ।

आत्मा और शरीरादिकरूप पुद्गल के एक क्षेत्रावगाहरूप बंधान है, तहीं आत्मा हलन, चलन आदि क्रिया करना चाहे और शरीर तिस शक्तिकर रहित है तो हलन, चलन क्रिया न होय सके । इसी प्रकार शरीर में हलन, चलन शक्ति पाइये है और आत्मा की इच्छा हलन, चलन की न होय तो भी हलन, चलन न होय सके । यदि शरीर बलवान होय हालौं चालौं तो उसके साथ बिना इच्छा भी आत्मा हालौं, चालौं । जैसे कर्मपनी वायु की वरण अवस्था में बिना इच्छा भी आत्मा हालौं चालौं है । और अधरंग रोग में इच्छा होते हुए भी हलन, चलन क्रिया नहीं होती है ।

शरीर, वचन, मन और प्राणापान—यह पुद्गलों का उपकार है । ‘शरीर-वाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥५/१६॥’ [तत्त्वार्थ सूत्र] द्वारा ऐसा कहा भी गया है । शरीर, वचन और मन की क्रिया योग है और वही आत्मव है । कहा भी है—

कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥६/१॥ स आस्त्वः ॥६/२॥’ [त०स०]

इस प्रकार भिन्न, भिन्न चतुष्टय वाले जीव और शरीर का संश्लेष संबंध है । यदि यह संश्लेष सम्बन्ध न माना जाय अथवा जीव का शरीर न माना जाय तो शरीर के वश से हिसाँ के प्रभाव का प्रसंग आ जायगा । कहा भी है—

आत्मशरीरविभेदं वदन्ति ये सर्वथा गतविवेकाः ।
कायच्च ए हृत कथं तेषां संजायते हिसा ॥६/२१॥

[अमित्तगति श्रावकाचार]

अर्थ—जो विवेक रहित आत्मा का अंतर शरीर का सर्वथा भेद कहे हैं, तिन के मत में शरीर के बद्ध होते संते हिसा कैसे होय ? यह बड़े आश्चर्य की बात है ।

यदि इस असद्भूतव्यवहार नय को यथार्थ न माना जाय और परमार्थनय (शुद्धनिश्चय नय) को सर्वथा यथार्थ माना जाये तो निम्न दोष आयेगे—

१. परमार्थनय जीव को जरीर से भिन्न कहता है, यदि उसका ही एकान्त किया जाय तो निःशंकपने से त्रस, स्थावर जीवों का घात करना सिद्ध हो सकता है । जैसे भस्म के मर्दन करने में हिसा का अभाव है उसी तरह जीवों के शरीर को मारने में भी हिसा सिद्ध नहीं होगी किन्तु हिसा का अभाव ठहरेगा—तब उनके घात होने से बंध होने का भी अभाव ठहरेगा ।

[समयसार गाथा ४६ टीका]

२. उसी तरह रागी, होषी, मोही जीव कर्म से बंधता है और उसको छुड़ाना है—ऐसा कहा गया है । परमार्थ (निश्चय नय) से राग, होष, मोह से जीव को भिन्न बतलाने से मोक्ष के उपाय का (मोक्षमार्ग का) उपदेश व्यर्थ हो जायगा—तब मोक्ष का भी अभाव ठहरेगा । [समयसार गाथा ४६ टीका]

अतः व्यवहारनय से भी बस्तुस्वरूप का कथन किया गया है ।

श्री अमृतचन्द्राचार्य ने उपर्युक्त कथन को समयसार गाथा ४६ की टीका में निम्न शब्दों द्वारा कहा है—

‘तमंतरेण तु शरीराज्जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनात् त्रसस्यावराणां
भेत्तन इव निःशंकमुपमद्देनैन हिसाऽभावाद् भवत्येव बंधस्याभावः ।
तथा रक्तो द्विष्टो विमूढो जीवो बद्धमानो मोचनीय इति रागद्वेष-

मोहेभ्यो जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनेन मोक्षोपायपरिप्रहण। भावात्
भवत्येव मोक्षस्याभावः ।'

अतः ग्रसदभूतव्यवहार नय का विषय 'जीव का शरीर कहना' यथार्थ है ।

॥ इस प्रकार पदार्थ के सरल बोध के लिये श्रीमद्वेषसेनाचार्य विरचित
आलापपद्धति समाप्त हुई ॥

तेतीस व्यंजनाए सत्तादीसं स्वरा तहा भणिया ।

चत्तारिय योगवाहा चतुसट्टी मूल ब्रणाड ॥

गाथार्थ—३२ व्यंजन अक्षर हैं, २७ स्वर हैं और ४ योगवाह हैं । इस
प्रकार ६४ मूल वरण हैं ।



परिशिष्ट १

अनेकान्त व स्यादुत्ताद

**भावः स्यादस्तिनास्तीति कुर्यान्निर्दोषमेव तं ।
फलेन चास्य संबन्धो नित्यानित्यादिकं तथा ॥**

पर्यं—इव्य कर्त्तचित् प्रस्ति है, कर्त्तचित् नास्ति है, इस प्रकार की पात्यता निर्दोष है। फलितार्थ से उसी प्रकार कर्त्तचित्-मित्य कर्त्तचित्-ग्रनित्य इत्यादिक से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये।

**स्यादस्ति । स्यात् केनचिदभिप्रायेण । कोसावभिप्रायः ?
स्वस्वरूपेणास्तित्वमिति । तर्हि स्याच्छब्देन किं । यथा स्वस्वरूपेणा-
स्तित्वं तथा पररूपेणात्यस्तित्वं माभूदिति स्याच्छब्दः । स्याज्ञास्तीति
पररूपेणैव कुर्यात् स्यादस्तित्वाददोषतास्य फलं चास्यानेकस्वभावा-
धारत्वं नास्तित्वभावस्य तु संकरादिदोषरहितस्त्वं ।**

**स्यान्नित्य । स्यात्केनचिदभिप्रायेण । कोसावभिप्रायो ? इव्य-
रूपेण नित्य इति । तर्हि स्याच्छब्देन किं ? यथा इव्यरूपेण नित्यस्त्वं
तथा पर्यायरूपेण नित्यस्त्वं माभूदिति स्याच्छब्दः । स्यादनित्य इति
पर्यायरूपेणैव कुर्यात् । स्यान्नित्यस्त्वाददोषता सफलं चास्य चिर-
कालावस्यायित्वं । अनित्यस्वभावस्य तु कर्मादानविमोचनादिकं
स्वहेतुभिः ।**

**स्यादेकः । स्यात्केनचिदभिप्रायेण । कोसावभिप्रायः ? सामान्य-
रूपेणैकस्त्वमिति । तर्हि स्याच्छब्देन किं यथा सामान्यरूपेणैकस्त्वं तथा
विशेषरूपेणाप्येकस्त्वं माभूदिति स्याच्छब्दः । स्यादनेक इति विशेष-
रूपेणैव कुर्यात् । स्यादेकस्त्वाददोषतास्य फलं चास्य सामान्यस्त्वसमर्थः ।
अनेकस्वभावस्य त्वनेकस्वभावदर्शकस्त्वं ।**

स्याद्भेदः । स्यात्केनचिदभिप्रायेण । कोसावभिप्रायः ?
सद्भूतव्यवहारेण भेद इति । तर्हि स्याच्छब्देन कि ? यथा सद्भूत-
व्यवहारेण भेदस्तथा द्रव्यार्थिकेनापि माभूदिति स्याच्छब्दः ।
स्याद्भेद इति द्रव्यार्थिकेनैव कुर्यात् । स्याद्भेदत्वाददोषतास्य फलं
चास्य व्यवहारसिद्धिः । अभेदस्वभावस्य तु परमाथसिद्धिः ।

स्याद्भव्यः । स्यात्केनचिदभिप्रायेण । कोसावभिप्रायः ? स्वकीय
स्वरूपेण भवनादिनि । तर्हि स्याच्छब्देन कि ? यथा स्वकायरूपेण
भवनं तथा पररूपेण भवनं माभूदिति स्याच्छब्दः । स्याद्भव्य इति
पररूपेणैव कुर्यात् । स्याद्भव्यत्वाददोषतास्य फलं चास्य स्वपर्याय-
परिणामित्वं । अभव्यस्य तु परपर्यायत्वागित्वं ।

स्यात्परमः । स्यात्केनचिदभिप्रायेण । कोसावभिप्रायः ? परि
णामिकस्वभावत्वेनेति । तर्हि स्याच्छब्देन कि ? यथा परिणामिक-
स्वभावं प्रघानत्वेन परस्वभावत्वं तथा कर्मजस्वभावप्रघानत्वेन
माभूदिति स्याच्छब्दः । स्यादुविभाव इति कर्मजरूपेणैव कुर्यात् ।
स्यात्परमत्वाददोषतास्य फलं चास्य स्वभावादचलिता वृत्तिः ।
विभावस्य तु स्वभावे चिङ्गतिः ।

स्याच्चेतनः । स्यात्केनचिदपि । कोसावभिप्रायः ? चेतनस्व-
भावप्रधानत्वेनेति । तर्हि स्याच्छब्देन कि ? यथा स्वभावप्रधानत्वेन
चेतनत्वं तथाऽचेतनस्वभावेनापि चेतनत्वं माभूदिति स्याच्छब्दः ।
स्यादचेतन इति व्यवहारेणैव कुर्यात् । स्याच्चेतनत्वाददोषतास्य फलं
चास्य कर्मादानं हानिर्वा । अचेतनस्वभावस्य तु कर्मादानमेव ।

स्यान्मूर्तः । स्यात्केनचिदभिप्रायेण । कोसावभिप्रायः ?
असद्भूतव्यवहारेण मूर्त इति । तर्हि स्याच्छब्देन कि ? यथाऽसद्-
भूतव्यवहारेण मूर्त्तत्वं तथा परमभावेन मूर्त्तत्वं माभूदिति स्याच्छब्दः ।

स्यादमूर्ते इति परमभावेनैव कुर्यात् । स्यान्मूर्त्तत्वाददोषतास्य फलं
चास्य कर्मबन्धः । अमूर्त्तत्वं तु स्वभावापरित्यागित्वं ।

स्यादेकप्रदेशः । स्यात्केनचिदभिप्रायेण । कोसादभिप्रायो ?
भेदकल्पना निरपेक्षेणोति । तर्हि स्याच्छब्देन किं ? यथा भेदकल्पना
निरपेक्षेणैकप्रदेशत्वं तथा व्यवहारणाप्येकप्रदेशत्वं माभूदिति स्याच्छ-
ब्दः । स्यादनेकप्रदेश इति व्यवहारेणैव कुर्यात् । स्यादेकप्रदेशत्वाद-
दोषतास्य फलं चास्य निश्चयादेकत्वसमर्थनं । अनेक प्रदेशस्य तु
अनेककार्यकारित्वं ।

स्याच्छुद्धः । स्यात्केनचिदभिप्रायेण । कोसावभिप्रायः ?
केवलस्वभावप्रधानत्वेनेति । तर्हि स्याच्छुद्धेन किं ? यथा केवलस्व-
भाव प्रधानत्वेन शुद्धस्वभावत्वं तथा मिश्रस्वभावप्रधानत्वेन शुद्धत्वं
माभूदिति स्याच्छुद्धः । स्यादशुद्ध इति मिश्रभावेनैव कुर्यात् ।
शुद्धत्वाददोषता तस्य फलं चास्य स्वभावावाप्तिः । अशुद्धस्वभा-
वस्य तु तद्विपरीता ।

स्यादुपचरितः । स्यात्केनचिदभिप्रायेण । कोसावभिप्रायः ?
स्वभावस्यात्यन्यत्रोपचारादिति । तर्हि स्याच्छब्देन किं ? यथा
स्वभावस्यात्यन्यत्रोपचारादुपचरितस्वभावत्वं तथानुपचारेणात्युपचा-
रत्वं माभूदिति स्याच्छब्दः । स्यादनुपचरित इति निश्चयादेव कुर्यात् ।
स्यादुपचरिताददोषता तस्य फलं चास्य परम्परादयः । अनुपचरित-
स्वभावस्य तथापि विपरीतं ।

[श्री याचार्य देवसेन कृत नयवक्र—सोलापुर से प्रकाशित]

अर्थ—स्यात्—किसी अभिप्राय से—द्रव्य अस्तिरूप है, सदूगावरूप है ।
वह अभिप्राय क्या है ? स्वस्वरूप से वह है, यह अभिप्राय है । फिर स्यात् शब्द
से क्या प्रयोजन है ? जिस प्रकार स्वस्वरूप से है उसी प्रकार परस्वरूप से भी
है, इस प्रकार की आपत्ति का निवारण करना स्यात् शब्द का प्रयोजन है ।

कथंचित् परस्वरूप से नहीं है, इस प्रकार से प्रयोग करना चाहिए। कथंचित् स्वस्तिस्त्व होने से दोष नहीं है। इसका फल प्रतेक स्वभाव-आधारत्वपना है। इतना विशेष है कि नास्तिस्वभाव के संकरादि दोष रहितपना है।

स्यात् अर्थात् किसी अभिप्राय से द्रव्य नित्य है। वह अभिप्राय क्या है? द्रव्यरूप से नित्य है, यह अभिप्राय है। फिर स्यात् शब्द से क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार द्रव्य रूप से नित्य है उसी प्रकार पर्याय रूप से भी नित्य है, इस प्रकार की आपत्ति का निवारण करना स्यात् शब्द का प्रयोजन है। कथंचित् पर्यायरूप से अनित्य है, इस प्रकार से प्रयोग करना चाहिए। स्यात् या कथंचित् का प्रयोग होने से नित्यता के निर्दोषता है। इसका फल चिरकाल तक स्वाधीपना है। किन्तु, अनित्यस्वभाव से तो कर्म-ग्रहण व भोक्तन निज हेतुओं के द्वारा होते हैं।

स्यात् द्रव्य के एकपना है। स्यात् अर्थात् किसी अभिप्राय से। वह अभिप्राय क्या है? सामान्य रूप से द्रव्य के एकपना है, यह अभिप्राय है। फिर स्यात् शब्द से क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार सामान्यरूप से द्रव्य के एकपना है, उसी प्रकार विशेषरूप से द्रव्य के अनेकपना है, इस प्रकार की आपत्ति का निवारण करना स्यात् शब्द का प्रयोजन है। कथंचित् विशेषरूप से अनेकपना है, इस प्रकार से प्रयोग करना चाहिए। स्यात् या कथंचित् का प्रयोग होने से एकत्व के निर्दोषता है। इसका फल सामान्यपने में समर्थ है। अनेकस्वभाव से तो अनेकपना है, ऐसा दिलाना है।

कथंचित् भेद है। किसी अभिप्राय से अर्थात् सद्भूतव्यवहार से, भेद है। स्यात् शब्द से यहां क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार सद्भूतव्यवहार नय से भेद है, उसी प्रकार द्रव्याधिक नय (निश्चय नय) से भेद न हो, यह स्यात् पद का प्रयोजन है। कथंचित् अभेद है, यह प्रयोग द्रव्याधिक नय से करना चाहिए। कथंचित् का प्रयोग होने से भेदपना के निर्दोषता है और इसका फल अवहार को सिद्धि है, किन्तु अभेद स्वभाव से परमार्थ की सिद्धि होती है।

कथंचित् भव्य है। किसी अभिप्राय से अर्थात् स्वकीय स्वरूप से परिणामन हो सकने से भव्यस्वरूप है। स्यात् शब्द से क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार स्वकीयस्वरूप से परिणामन हो सकता है वैसे परकीय रूप से परिणामन

न हो सके यह यहां पर स्यात् शब्द से प्रयोजन है। कथंचित् अभव्य है, यह कथन 'पररूप से परिणमन नहीं होने से' ही करना चाहिए। कथंचित् अभव्यता मानने से इसमें दोष नहीं है और इसका फल स्वकीयरूप से परिणत होना है किन्तु अभव्यता का फल परपर्याय रूप से परिणमन का त्याग-पना है।

कथंचित् परमस्वभावरूप है। किसी अभिप्राय से अर्थात् पारिणामिक भाव से परमस्वभावरूप है। स्यात् शब्द से यहां क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार पारिणामिक भाव से परमस्वरूप है उसी प्रकार कर्मजनित भाव से परमस्वभाव न हो। कथंचित् विभावरूप है, यह कर्मजभाव से होता है। कथंचित् परमस्वभाव होने से दोष नहीं है, इसका फल स्वभाव से अचलित् रूप वृत्ति है। किन्तु विभाव का फल स्वभाव में विकृति है।

कथंचित् चेतन है। किसी अभिप्राय से अर्थात् चेतनस्वभाव की प्रधानता से चेतन है। यहां स्यात् शब्द से क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार चेतन-स्वभाव की प्रधानता से चेतनत्व है, वैसे अचेतनत्व की अपेक्षा न हो, यह स्यात् शब्द का प्रयोजन है। कथंचित् अचेतन है, यह व्यवहार से कहना चाहिये। कथंचित् चेतनपना होने से इसके दोष नहीं है, इसका फल कर्म की हानि है। किन्तु अचेतनस्वभाव के मानने का फल कर्म का भरण ही है।

कथंचित् मूर्त है। किसी अभिप्राय से अर्थात् असद्भूत व्यवहारनव से मूर्त है। यहां स्यात् शब्द से क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार असद्भूत-व्यवहार नव से मूर्त है, वैसे परमभाव से मूर्त न हो, यह स्यात् शब्द का प्रयोजन है। कथंचित् अमूर्त है, ऐसा परमभाव से कहना चाहिये। कथंचित् मूर्त होने से इसके दोष नहीं है, इसका फल कर्मवृच्छ है। किन्तु अमूर्त मानने का फल स्वभाव का अपरित्याग है।

कथंचित् एकप्रदेशी है। किसी अभिप्राय से अर्थात् 'मेदकल्पना-निरपेक्ष अभिप्राय से एकप्रदेशी है। यहां स्यात् शब्द से क्या प्रयोजन है? जैसे मेद-कल्पना-निरपेक्षता से एक प्रदेशपना है उसी प्रकार व्यवहार से एक प्रदेशपना न हो, यह स्यात् शब्द का प्रयोजन है। कथंचित् अनेकप्रदेशी है, ऐसा

व्यवहारनय से ही भानना चाहिये । कथंचित् एकप्रदेशापना होने से दोष नहीं है । और इसका फल निश्चय से एकपने का समर्थन है । किन्तु अनेकप्रदेशात्म का फल अनेकलयंकारित्व है ।

कथंचित् शुद्ध है । किसी अभिशाय से अर्थात् केवलस्वभाव की प्रधानता से शुद्धस्वभाव है । स्यात् शब्द से यहीं क्या प्रयोजन है ? जैसे केवलस्त्वभाव-पने से शुद्धता है वैसे मिश्रस्वभावपने से शुद्धता न हो इसलिये स्यात् शब्द है । कथंचित् अशुद्ध है, ऐसा प्रथोग मिश्रस्वभाव से ही करना चाहिये । कथंचित् शुद्धपना होने से इसके निर्दोषता है और इसका फल स्वभाव की प्राप्ति है, किन्तु अशुद्ध स्वभाव का फल स्वभाव की प्राप्ति नहीं है ।

कथंचित् उपचरित है । किसी अभिशाय से अर्थात् स्वभाव के भी अन्यत्र उपचार से उपचरितस्वभाव है । यहीं पर स्यात् शब्द से क्या प्रयोजन है ? जैसे उपचरित लय से अन्यत्रस्वभाव का उपचार होने से उपचरितपना है, वैसे अनुउपचरितस्वभाव से उपचारपना न हो, यह स्यात् शब्द का प्रयोजन है । कथंचित् अनुउपचरित है, यह निश्चय से समझना चाहिये । कथंचित् उपचरितपन होने से दोष नहीं है, और उसका फल परज्ञता और सर्वज्ञता है । अनुउपचरित का फल उससे विपरीत आत्मज्ञता है ।

स्याद्वादो हि समस्तवस्तुतत्त्वसाधकमेवमेकस्त्वलितं शासनमहं-
त्सर्वज्ञस्य । स तु सर्वमनेकात्मकमित्यनुशास्ति, सर्वस्यापि वस्तुनोऽ-
मेकमंतस्त्वभावत्वात् ।

यदेव तत् तदेवातत् यदेवैकं तदेवानेकं, यदेव सत्तदेवासत, यदेव
नित्यं तदेवानित्यमित्येकवस्तुवस्तुत्व-निष्पादकंपरस्परविरुद्ध शक्तिश्छ्रय-
प्रकाशनमनेकातः ।

(समयसार आत्मस्थाति, स्याद्वादाधिकार ।

अर्थ—स्याद्वाद है कह सब वस्तुस्वरूप के साधने वाला एक निर्बाध अहंतस्वर्ण का शासन है । वह स्याद्वाद सब वस्तुओं को 'अनेकात्मक' ऐसा कहता है— वर्तीनि सभी वदानाँ वा अनेक अर्थस्वरूप स्वभाव है । अनेकात्म का ऐसा स्वरूप है कि जो वस्तु तत् रूप है वही अतत् स्वरूप है, जो सत्त्वरूप है

वही वस्तु असत्स्वरूप है, जो वस्तु नित्यरूप है वही वस्तु अनित्यरूप है। इस तरह एक वस्तु में वस्तुपने की उपजाने वाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाश देता है।

इससे उस मत का स्पष्टन हो जाता है जो ग्रनेकान्त व स्याद्वाद का स्वरूप ऐसा मानते हैं कि वस्तु नित्य है, अनित्य नहीं है; एक है, ग्रनेक नहीं है, अभेद है, भेद नहीं है इत्यादि, क्योंकि इससे तो सर्वथा एक चमं की सिद्धि होती है।

परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु द्वोदि सञ्चाहा वयणा ।

लङ्घणाणं पुण वयणं सम्म सु कहंचि वयणादो ॥

अर्थ—परसमयों (ग्रनेनों) का वचन 'सर्वथा' कहा जाने से वास्तव में पिच्छा है और जैनों का वचन 'कर्यंचित्' कहा जाने से वास्तव में सम्यक् है।



परिक्रिया-कृ

अर्थक्रियाकारित्व

‘अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात्पूर्वोत्तराकारपरिहारा वाप्तिस्थिति-
लक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ।’

वस्तु अनुवृत्त (सामान्य अथवा गुण) और व्यावृत्त (पर्याय) रूप से दिखाई देती है तथा पूर्व पर्याय का परिहार (नाश) और स्थिति (धौष्य) रूप परिणामन से अर्थक्रिया की उत्पत्ति होती है ।

अर्थक्रियाविरोधादिति=कार्यकर्तृत्वायोगात्

सामान्य-विशेषात्मक वस्तु में उत्पाद, व्यय, धौष्य रूप अर्थक्रिया होती है ।

‘त्रिलक्षणाभावतः अवस्तुनि परिच्छेदलक्षणार्थं क्रियाभावात् ।’

उत्पाद, व्यय और धौष्य रूप लक्षणश्वय का अभाव होने के कारण अवस्तु स्वरूप जो ज्ञान उसमें परिच्छिति रूप अर्थक्रिया का अभाव है । जैसे-जैसे ज्ञेयों में उत्पाद, व्यय, धौष्य रूप परिणामन होता है उस ही के अनुसार ज्ञान में भी जानने की अपेक्षा उत्पाद, व्यय, धौष्य होता रहता है । जो पर्याय प्रतिशरण उत्पन्न होती है उस पर्याय को ज्ञान सद्भाव रूप से जानता है । जो उत्पन्न होकर विनष्ट हो चुकी हैं या अनुत्पन्न हैं उनको अभाव रूप से जानता है, अन्यथा ज्ञेयों के अनुकूल ज्ञान में परिणामन नहीं बन सकता ।*

स्वामिकातिकेयानुप्रेक्षा में भी कहा है—

जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेदि शियमेण ।

अहूधम्मजुदं अत्थं कज्जकर्दीसदे लोए ॥ २२५ ॥

एयंतं पुणु दब्वं कज्जं ण करेदि लेसमेत्तं पि ।

जे पुणु ण करदि कज्जं तं तुच्चदि केरिसं दब्वं ॥ २२६ ॥

१. श्लोकवातिक भाग ६ पृ० ३४६ । २. प्रमेयरत्नमाला पृ० २६४ ।
३. धबल पृ० ६ पृ० १४२ । ४. धबल पृ० १ पृ० १६८ ।

वीका—कार्यं न करोति, सुच्छ्रमाये प्रयोजनं न विद्वाति ।

धर्म—जो वस्तु भनेकान्त रूप है वही नियम से कार्यकारी है, क्योंकि लोक में बहुत धर्मयुक्त पदार्थ हो कार्यकारी देखा जाता है। एकान्त रूप द्रव्य लेशभाव भी कार्य नहीं करता। और जो कार्य नहीं करता उसको द्रव्य कैसे कहा जाय?

कार्यं नहीं करता अधात् किंचित् भी प्रयोजनवान् नहीं है ।

'अर्थस्य कार्यस्य क्रिया करणं निष्पत्तिर्युज्येत् ।'

[सधीयस्त्रय पृ० २३]

प्रयोजन निष्पासे को अर्थ-क्रिया कहते हैं। जैसे, ज्ञान का प्रयोजन ज्ञानना है, अतः ज्ञान का परिच्छिति रूप जो परिणामन है वही ज्ञान की अर्थक्रिया है। अपने स्वरूप को न छोड़कर पारिणामन करना द्रव्य का प्रयोजन है, क्योंकि उत्पाद, व्यय, धोष्य से ही द्रव्य को सत्ता है। अतः द्रव्य में जो परिणामन रूप क्रिया होती है वह द्रव्य को अर्थ-क्रिया है।

श्री प० पञ्चालाल जी राहेत्याचार्य, सागर लिखते हैं—'अर्थक्रियाकारित्व का अर्थ है—जिस पदार्थ को जिस रूप से जाना है, उस रूप से उसका कार्य नहीं होना। जैसे जल का जल रूप जाना, यहीं जल में स्नान, अवगाहन आदि क्रिया होती है वह जल का अर्थ-क्रिया-कारित्व है। अर्थ-क्रिया-कारित्व से अपने द्वारा जात पदार्थ का यथार्थ निर्णय हो जाता है। और जहाँ अर्थ-क्रिया-कारित्व नहीं होता, वहाँ वस्तु की यथार्थता का निर्णय नहीं होता।'

श्री प० जीवंशर जी, इन्दौर लिखते हैं—'प्रत्यक्ष सद्भूत पदार्थ जो भी कार्य करता है या पारिणामिति करता है वही उसको अर्थक्रिया है।'

परिविष्ट - ३

अनेक-क्रिया-कारित्व

अनेक-क्रिया-कारित्व :— एक पढ़ाये महाकारी कारणों के वैविध्य से अनेक कार्यों का संपादन करता है, अतः वह अनेक-क्रिया-कारित्व कहा जाता है। जैसे — एक ही दीपक एक ही समय में अन्वकार का नाश करता है, प्रकाश फैलाता है, वर्ती का मुख जलाता है, तेल का शोधण करता है, घूम रूपी कालिमा को उत्पन्न करता है। इम अनेक कार्यों का निर्माण होने से वह अनेक-क्रिया-कारित्व माना जाता है।

[श्री पं० बीबंधु जी, इन्डौर]



परिशिष्ट-४

संकर आदि आठ दोष

सूत्र (२३ व उसके उपर्युक्त में संकर आदि आठ दोषों का वर्णन है। उन आठ दोषों का विशेष कथन 'प्रमेयरत्नमाला' के अनुसार निम्न प्रकार है—

'भेदाभेदयोर्विधिनिषेधयोरेकत्राभिन्ने वस्तुन्यसम्भवः शीतोष्ण-
स्पर्शयोर्वेति १। भेदस्यावदधिकरणमभेदस्य चान्यदिति वैयचि-
करण्यम् २। यमात्मानं पुरोधाय भेदो यं च समाभित्याभेदः, तावा-
त्मनौ भिन्नौ चाभिन्नौ च । तत्रापि तथापरिकल्पनादनवस्था ३।
येन रूपेण भेदस्तेन भेदश्चाभेदश्चेति सङ्करः ४। येन भेदस्तेनाभेदो
येनाभेदस्तेन भेद इति व्यतिकरः ५। भेदाभेदात्मकत्वे च वस्तुनो-
इसाधारणाकारेण निरचेतुमशक्तेः संशयः ६। ततश्चाप्रतिपत्तिः ७।
ततोऽभावः ८।'

अर्थ—भेद और अभेद ये दोनों विषि और निषेध स्वरूप हैं, इसलिये उनका एक अभिन्न वस्तु में रहना असम्भव है, जैसे कि शीत और उष्ण स्पर्शों का एक साथ वस्तु में रहना असम्भव है। इस प्रकार जीवादि पदार्थों को सामान्य-विशेषात्मक मानने पर विरोध दोष आता है ॥१॥ भेद का आधार अन्य है और अभेद का आधार अन्य है, इसलिये इन दोनों का एक आधार मानने से वैयक्तिकरण्य दोष भी आता है ॥२॥ जिस स्वरूप को मुख्य करके भेद कहा जाता है और जिस स्वरूप का आश्रय लेकर, अभेद कहा जाता है, वे दोनों स्वरूप भिन्न भी हैं और अभिन्न भी हैं। पुनः उनमें भी भेद, अभेद की कल्पना से अनवस्था दोष प्राप्त होता है ॥३॥ जिस रूप से भेद है, उस रूप से भेद भी है, अभेद भी है; अतः संकर दोष प्राप्त होता है ॥४॥ जिस अपेक्षा से भेद है, उसी अपेक्षा से अभेद है और जिस अपेक्षा से अभेद है उसी अपेक्षा से भेद है, इस प्रकार व्यतिकर दोष आता है ॥५॥ वस्तु को भेदा-

मेदात्मक मानने पर उसका अक्षांशारण आकार से निश्चय नहीं किया जा सकता, अतः संशय दोष आता है ॥६॥ संशय होने से उसका ठीक ज्ञान नहीं हो पाता, अतः अप्रतिपत्ति नामक दोष आता है ॥७॥ ठीक प्रतिपत्ति के न होने से अभाव नाम का दोष भी आता है ॥८॥

निरपेक्ष, एकान्त हृष्टि में ये आठों दोष सम्भव हैं। सापेक्ष, अनेकान्त हृष्टि में इन आठ दोषों में से एक दोष भी सम्भव नहीं है।

जो गुण और गुणी (द्रव्य) में सर्वेया भेद मानते हैं, उनके मत में उपर्युक्त आठों दोष सम्भव हैं, जो गुण और गुणी का सर्वेया अभेद मानते हैं, उनके मत में उपर्युक्त आठों दोष सम्भव हैं तथा जो भेद और अभेद को परस्पर सापेक्ष नहीं मानते हैं उनके मत में भी उपर्युक्त आठों दोष सम्भव हैं। किन्तु, भेद और अभेद को सापेक्ष मानने वाले स्थाद्वादियों के मत में उक्त आठ दोष सम्भव नहीं हैं क्योंकि, वस्तुस्वरूप अनेकान्तात्मक है।

